॥ श्रीश्रीगौरांगविधुर्जयति ॥
॥ श्रीवृन्दारण्य-विहारिणे नमः॥

श्रीश्रीउत्कलिकावल्लरि

प्रपदय वृन्दावनमध्यमेकः क्रोशन्नसावुत्कलिकाकुलात्मा।
उद्घाटयामि ज्वलतः कढारां वाष्पस्य मुद्रां हृदि मुद्रितस्य॥

अन्वयः एकः असो (अह्म) उत्कलिकाकुलसत्मा (उत्कण्ठा-व्याप्त-चित्त सन्) वृन्दावनघ्यम प्रपद क्रोशन (उचैरार्त्तरावम् कुवर्वन्) हृदि मूद्रितस्य ज्वलतः वाष्पस्य कढोराम् (प्रिडिभूताम) मुद्राम उदघाटयामि

अनुवादः हा नाथ श्रीकृष्ण! हा देवी श्रीराधिके! यह दीनजन श्रीवृन्दावन धाम का आश्रय कर तुम्हारे दर्शनों की आशा में आर्त्त स्वर से रोदर करते हुए, अपने विरह सुतंप्त हृदय में अवरुद्ध आति कढिन ज्वलंत वाष्प राशि की मुद्रा उद्घाटित कर रहा है (तुम्हारो विशाल विरह-संतान निज मुख सें व्यक्त कर रहर है।

मरकन्दकणा व्याख्या

विरह वाष्प : वैष्णव गवेषकों (अन्वेषकों) के मत के अनुसार यह उत्कलिकावल्लरी स्वत श्रीपादरूपगोस्वामी-चरण की अन्तिम रचना है। रूपकथा में वर्णित है- राजहंस मृत्यु से पुर्व करुण स्वर से गायन करता है। यह उत्कलिकावल्लरि श्रीपाद का वैसा ही अन्तिम करुण गान है हृदय में दूर्वार उत्कंठा है परमाभीष्ट श्रीश्रीयुगल किशोर के दर्शनों से प्राण शीतल करेंगे। एक और विपुल लालसा है, दूरी और प्रबल दैन्य के उदय होने से स्वयं की अयोग्यता की स्फूर्ति से चित्त अतिशय अधीर हो जाता है। यह क्रन्दन की पुरुषार्थ है- अभीष्ट के दर्शन एवं माधुर्य आस्वादन का परम उपाय है। पिपासाहीन व्यक्ति के समक्ष अमृत का सिन्धु विद्यमान होते हुए भी जैसे हुए भी जैसे उसे कुछ भी आस्वादन नहीं होता, उसी प्रकार उत्कण्ठा अथवा व्याकुलता विहीन प्रेम भी माधुर्य वारिधि श्रीश्रीराधामाधव के माधुर्य आस्वादन में सक्षम नहीं होता है। इसी कारण यह समझा जाता हे। कि

नवनीत–कोमल–चित्त परम करुण श्री युगल–किशोरी स्वमं भक्त की विरह–व्यथा सहन करके भी भक्त को अपनी विरह वेदना का भोग करता है। नित्यसिद परिकर श्रीपाद रूप गोस्वामी चरण साधन–जगत में आकर साधक के समान साधना का रसास्वादन करते हैं। स्वयं भगवान् श्रीमन्महाप्रभु भी साधना के रस में डूबते हैं। अजातरति साधक के समान कहते हैं "नाहि कृष्ण प्रेमधन, दरिद्र मोर जीवन, देहेन्द्रिय वृथा मोर सव" (चै: च:) भक्ति साधना बाहय–आवेश को यहाँ तक की मोक्ष के आवेश को भी कवलित कर अभीष्ट देव में प्रबल आवेश को उत्पन्न कराती है। श्रीपाद मे राधादास्य का निविड आवेश है। युगल के सेवासुख–साधन के अतिरिक्त चित्त में अन्य कामना का कोई स्थान नहीें होता जडीय स्त्री–पुरुष के अभिमान को लेकर राधादास को समझने का प्रयास करना विडम्बना तात्र ही है। एकांतिक सेवानिष्ठ मंजरी के भाव से ही राधादास्य कों समझना सम्भव है। वे अनन्य शाखा है युगल चरणों के अतिरिक्त जिनके प्राणों को शीतल करने का कोई अन्य स्थान नहीं हैं। श्रीपाद स्वरूप सें ब्रज काी श्रीरूप मंजरी है। श्रीश्रीराधा–माधव के साक्षात् दर्शन एवं सेवा के अभाव से हृदय को विर्दीण कर देने वाला रूदर कर रहे है। यह रूदर अंदस की सुतीव्र विरह वेदना का व्यंजक है। तुम्हारे इस ब्रजधाम का आश्रस लेकर उत्कंठित चित्त से अंतस की पूंजीभूत विरह– वाष्प को उद्घटित कर दिखा रही हूँ– देखो, तुम्हाश्रीरूप की हृदय में कितनी ज्वाला है। अस निदारूप विरह की बात किसी भजन–सम्पत्ति शुन्य जीव के पक्ष में कलपना करना भी असम्भव है। लालसा की नई तरंगें विरह–विधुर हृदय–सिन्धु को उदेलित कर रहीं हैं। धैर्य का बांध टुट गया है। यद्यपि स्फूर्ति में दर्शन पाये जाते हैं। किन्तु तब भी स्वस्थ नहीं होते। वह तो क्षणिकि है! घनघोर घटाओं से आच्छन तामसी निशा में विघुत विकाश की तरह विरह अंधकार का वर्णन ही करती है। चक्षु–कर्ण आदि से अभीष्ठ के रूप रस आदि विषयों का आस्वादन तृष्णा–सिन्धु का वर्धन ही करता है। श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण इस श्लोक की टीका में लिखते हैं– "इयमवस्था खलु भक्तजनस्य पुरुषार्थदात्री"। यह अवस्था ही भक्तों के लिये परम पुरुषार्थदात्री हैं। बस सदन में ही लाभ है यी हाहाकार की पुरुषार्थ है। अनुभवी के अजिरिक्त अन्य कोई यह समझ नहीं पायेगा। "एई प्रेम यार मने,

तार विक्रम सेई जाने, येन विषामृते एकत्र मिलन "(चै: च:)। इसी भाव के आस्वादन से ही श्रीमन्महाप्रभु का अस्थि-सन्धि वियोग हुआ, इसी रस की उन्मादना से ही वे कूर्माकृति हुए। आस्वादन की चरम परिणति मे इस पूंजीभूत विरह वेदना के श्रवण-कीर्तन से साधक के अंतस मे भी थोड़ी बहुत प्रेम तृष्णा का संचार होता है जो ब्रज रस-साधक की श्रेष्ठ सम्पदा है। श्रील ठाकुर महाशय कहते हैं "परम नागर कृष्ण ताते हउ अति तृष्ण भज ताँरे ब्रजभाव लैया। रसिक-भक्त संगे,रहिव पिरिति रंगे, व्रज पूरे वसति करिया॥" (प्रे: म: च:) रागानुगा मार्ग का सारा उपदेश है! साधक सर्वदा रसिक-भक्तों के संग में स्वाभीष्ट की लीलाकथाओं में रत रहते हुए श्री वृन्दावन में वास करें। सजातीयाशह भक्तों के संग मे ही भाव की पुष्टि होती है। श्रीमन्महाप्रभु ने विद्यासागर में श्रील राम राय के निकट विद्या ग्रहण के समय कहा था- "तूमि आमि नीलाचले रहिव एक संगे। सुखे काटाइव काज कृष्ण कथा रंगे।।" विप्रलम्भ रस मूर्ति श्रीमन्महाप्रभु ने मुख्य रूप से माथुर विरह रस का आस्वादन किया था। श्रीराधा के विरह रस की वैचित्री दर्शन कर उद्धव के समान महाभागवत भी विस्मित एवं स्तब्ध त ब्रज मे अवस्था कर विरह हस का गुणगान किया था। ब्रजबालाओं के विरह रस सिन्धु में अवगाहन कर स्वंय को धन्य मान कर रहा था- "विरहेन महाभगाा महान् मेहनूग्रह कृत:" हे महाभाग्यवतीगण! आापको कभी श्रीकृष्ण एतादृश प्रेमवती आपको छोड कर दूर रहने मे समर्थ ही नहीं। और आपमें जो विरह प्रकाश पा रहा है, यह केवल वाह्य है, केवल मुझ जैसे लोगो को आपके प्रेम की महिमा दिखा कर कृतार्थ करने के लिए।यदि आपका यह विरह ना होता तो श्री कृष्ण मुझे ब्रज मे ना भेजते और मे भी यह आश्र्चमय प्रेम महिमा दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर पाता। अत: मंझे यह मेरे सौभाग्य की परावधि अनुभव को रही है। श्रीपाद कहते है- "हृदयेर ज्वलित कढोर वाष्प उद्घाटन करछि" श्रीयुगल किशोर की विरह जनित कितनी पूंजीभूत वेदना श्रीपाद के अन्तर में संचित थी-इस श्लोक से उसका किंचित् आभास प्राप्त होता है। अंतर की उत्कट विरह-वाष्प की ज्वाला श्लोक के ताध्यम से युगल चरणों में ज्ञापन कर रहे हैं। इस विरह वाष्प का दृष्टांत विश्व जगत मे खोजने पर भी प्राप्त नहीं हागा। श्रीराधारानी के निज प्रियतन के द्वारा भक्त के विरहनल की सामर्थय साधक

जगत मे दिखाइ गयी है। रनबडी के सिद्ध श्रील कृष्ण दास बाबा के अन्तर ही विरह नाल ने बाबा की देह को शुष्क काष्ठ के समान जला कर भष्म मे परिणत कर दिया था। श्रीमत् रूप स्वामी पाद का हृदय समुद्र के समान गंभीर है! भक्ति रत्नाकर गंथ मे लिख है- "एकादिन राधाकृष्ण विच्छेद कथाते। काँदये वैष्णव मूर्छागत वृथ्वीते॥ अग्निशिखा प्राय ज्वले रूपेर हृदय। तथापि वाहिरे किछू प्रकाश ना हय॥ कारू देहे श्रीरूपेर नि:श्वास स्पर्शिल। अग्निशिखा प्राय मेई देहे व्रण हैल॥ देखिया सवार मने हैल चमत्कार। एछे श्रीरूपेर क्रिया कहिते वि आर।। "हृदि मूद्रितस्य ज्वलत: वाष्वस्य" इस वाक्य का अर्थ यह है कि जो अवरुद वाष्प की शक्ति से विशाल शक्तिशाली यंत्र आदि चलाए जाते हैं, उसी प्रकार प्रेम के वेग को हृदय मे अवरुद्ध रख पाने पर शक्तिशली प्रेम इस देह यंत्र को जोर से चला कर शीघ्र अभीष्ट के पाद् पाद्मों के समीप पहुचा देगा। इसी कारण से भक्तवृन्द प्रेम को हृदय सम्पुट मे गुप्त रखने की इच्छा करते है। महाजनों का भी यही उपदेश है। "राख प्रेम हृदय भारिया" (प्रे: भ: च:)। कोई-कोई मन का साधक या अभ्यास परायण प्रतिष्ठाकामी व्यक्ति संकीर्तन आदि के स्थल पर उच्च स्वरे रोदन करने लगते है। बीच-बीच मे भैखनाद करने लगते है। धरती पर लोट पोट होकर तुलसी दलन करने लगते हैं, हाथ पेरो से श्री खोल,करताल एवं वहाँ उपस्थित साधु सज्जनों के श्रीअंग पर पदाघात इत्यादि द्वारा सहृदय श्रोता-वृन्द के आस्वादन में बाधा की सृष्टि कर अनराध का ही संचय करते हैं। साधरण मनुष्य यह सब देखकर बहुत चकित होते हैं। किन्तु साधु सज्जनों को खीज होती है। वे यदि इस तरह न कर केवल इन सब ग्रथों का पाठ अथवा श्रवण करें तो वे भी लाभन्वित होगें इसमे कोई संदेह नहीं। श्रीपाद गोस्वामी चरण ने इतने समय तक विशाल विरह-वाष्प की ज्वाला को हृदय में अवरुद्ध कर रखा था किन्तु अब इस अन्तिम समय में विपुल सान्द्र विरह वाािष्प को हउय मे वाधें रख पाना सम्भव नहीं है । श्रीपाद की यह पंजीभूत विरह वाािष्प ही "उत्कलिकावल्लरी" हैं। आसीद्स्मादूत्कलिका-वल्लरिषेणा, कर्कशचित्तग्रावनितान्तद्रूतिहेतू: (श्रीबलदेव) अर्थात् प्रचण्ड अग्नि के ताप से जैसे धातु विगलित हो जाता है, उसी प्रकार इस उत्कलिकावल्लरी के श्रवण-कीर्तन से विषय-वासनाओं से वासितअवि कढिन चित्त भी प्रेम के

संचार से द्रवित हो जायेगा इसमे कोई संदेह नहीं। तादृश चित्ता को विगलित करने की श्रेष्ठतम साधना है श्रीरूप की उत्कलिकावल्लरी का आस्वादन। जो मंजरी स्वरूप का अभिमान ले कर श्रीमती राधारानी की प्रिय किंकरी श्रीरूप के ह्दय को भाव ग्रहण करेगें,उनके चित्त-मन मे भी इस विरह ताप का संक्रमण होगा एवं वे भी अन्य आवेश भूलकर श्रीयुगलचरण दर्शन और अभीप्सित सेवा लाभ के लिए उत्कण्ठा से अधीर हो जाएंगे,यह संनिश्चित है। "वृन्दारण्य विहारिणी वृन्दावनेश्वरी। जय श्री गोविन्द वृन्दावन-वनचारी॥ परम आनन्द कन्द राधकृष्णा नाम। युगल-चरणरविन्दे अनन्त प्रणामी॥ हे नाथ श्री गिरिधारी! हे राधिके मदीश्वरि! प्राण मोर युगल किशोर। दोहाँर करूणा भिन्न मोर गति नाहि अन्य शुन दौँहे निवकदन मोर।। एद वृन्दावन धामे निभृत निकुन्ज वने वृक्षतले रजेते पडिया । कृपाकणा लालसाय रात्रिदिन उत्कण्ठाय काँदितेछि व्याकुल हइया।। ना मिलिल दशन यूगलेर श्री चरण।। ह्दयेर द्वार उद्घाटने । अन्तरेते ये अनल करिव तसरे वाहिर निरंन्तर करिया क्रन्दते।। यूगल- विरहानले दग्ध हैया तिले तिले कुन्जमाझे श्रीरूप गोस्वामी। उत्कलिकावल्लरी लिखिया उद्गार करि शिला गले येइ कथा शुनि।। अये वृन्दारण्य त्वरितहिम ते सेवनपरा: परमापू: के वा ना किल परमानन्दपदवीम्? अतो नीचैर्याचे स्वयमधिपयोरीक्षाणविधेर्वरेण्यम मे चेतसूयपदिश दिश हा कुरू कृपाम्।। अन्वय: अये (अति विषोदे) अये क्रोध विषादयोरति हैम:) वृन्दारण्य !दह (संसारे) ते (तव) सेवनपरा: के वा (जना:)पराम् परमानन्द-पदवीम-त्वरितम किल (निश्चितमेव) न आपू:? (अपितु सवर्वे तेहवापूरेव) अतो (हेतो) नीचै: (अति नम्र:सन्नेहम् त्वाम्) याचे स्वयं (त्वमेव) मे चमतसि अधिपयो: (श्री राध माधवेयो:) इखणविधे: वरेन्याम् (श्रेण्ठाम्) दिशम्उपदिश।। हा! (मयि) कृपाम् कुरु। अनुवाद- हे वुन्दारण्य! इस विश्व में तुम्हारी सेवा कर कौन एसा व्यक्ति अथवा श्रेष्ठ है जो परमानन्द लाभ नहीं करता? अतएव मैं प्रणत होकर अति विनम्र वचनों से तुम्हारे निकट प्रार्थना करता हूँ- मैं जिस उपाय से तुम्हारे अधीश्वर श्रीश्रीराधमाधव को दर्शन लाभ कर सकू-अनुग्रह पूर्वक मुझे उसका सदुपदेश प्रदान करो। सदुपदेश प्रार्थना: श्रीपाद का उत्कण्ठा-सिन्धु उत्छिलित है। अभीष्ठ के साक्षात् दर्शन एवं सेवा के अभाव में अब और प्रााण धारण नहीं कर पा रहे।

लालसा का आवेग दैत्य शिन्दू को तरंगयित कर रहा है । सोचते है कि– मुझ जैसे अयोग्य अधम में क्या एसी दुर्लभ वस्तु को प्राप्त करने की योग्यता है? किन्तु फिर भी लालसा के वेग का दमन नहीं कर पाते। उपाय चिंतन करते करते श्रीवृन्दावन की करूणा की बात मन मे आई। आशा–प्रदीप के आलोक से नैराश्य–अंधकार दूर कर देता है। श्री वृन्दावन के निकट प्रार्थना करते हैं– इा विश्व मे तुम्हारी सेवा कर (वृन्दावन आगमन, दर्शन, निवासादि कर) ऐसा कौन व्यक्ति है, जो परमानन्द लभा कर ध्सन्य नहीं। होता है, श्री वृन्दाननमहिमामृत में श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती लिखते है कि– "श्रीकृष्णै–कान्तभावम् कन्नू सकलजनोहवश्यमाप्नोत्यत्नात कृष्णसयाश्चर्यीमा परमभागवतः कूत्र ललिसर्थमूर्तिः। कूत्रत्या कृष्णपाम्बमजभजनतहानन्द साम्राज्यकाण्ठा भातर्वक्षये रहस्यम् श्रृणु सकलमिदम् श्रील वृन्दावने हत्र।।" "श्री वृन्दारमण्यम्–भक्तिरसदम् गाोविन्द पदाम्बुज द्वन्दवे मन्दधियो विदन्ति न हि तद्वासष्ण ध्रुवम् नो मज्जन्ति कुबूणयो वत समुद्रविग्नोः सूदूः खैरपि।। अर्थात् "श्रीकृष्ण में एकान्त भाव जीव को अनायास होगा? स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण का परम आश्चर्सजनक केवल पाद पादमो के भजन से उत्पन्न महानन्द की पराकाष्ठा दृष्ट होगी? हे भ्रातः। रहस्यमय बाात कहता हूँ सुनो– एकमात्र श्रीकृष्ण में ही यह सब वस्तुऐं प्राप्त होगी।। "श्रीगोविन्द–पदारविन्द–युगल में अनन्य भाक्ति रस दान करता है श्री वृन्दावन। मन्दबुद्धि व्यक्तिों के यह अवगत नहीं है। वे वृन्दावन मे वास करने की इच्छा ही नहीं करता असीम गाढ़ आनन्द सिन्धु जहाँ निश्चित रूप से आविभूर्त रहता है, हाय! कुबुद्धि व्यक्ति सतत नाना दुखों से समुदविन्म चित्त होता है इस रससिन्धु में अवगााहन करनें की अच्छा नहीं करते " श्रीपाद दैन्य के आवेग को कारत प्राणों से प्रार्थना ज्ञापन करते हैं– हे श्री वृन्दावन! तुम्हारी कृपा से सभी का अभीष्ट पूर्ण वेया मे पड़े रहना ही उनकी कृपा है तभी कातर प्राणों से प्रार्थना करते हैं जिन उपाय द्वारा तुम्हारा अधीश्वर श्रीश्रीराधामाधव के दर्शन लाभ कर पाऊँ तुम वही सुपदेश प्रदान करे। तुम्हारे अधीश्वर के दर्शनों का उपाय तुम्हारे अतिरिक्त और कौन कहेगा? श्रीपाद की उत्कण्ठा की चरमता है वृन्दावन उत्कण्ठा का ही स्थान है। भावुक साधक यहाँ स्थिर नहीं रह सकता। यहाँ की लीला भूमि युगल की मनोरम स्मृति की छवि भावुक के

चित्तपट पर इंकित कर यहाँ के साक्षात् दर्शन और सेवा की तीव्र कामना जगा देगी है। इसी लिए तो श्री वृन्दावन मे आगमन है "सूखमय वृन्दावन, कवे-हवे दरशन, से धूलि माखिव कवे गाय। प्रेमे गद्‌गद् हैया, राध कृष्ण नााम लैया, कांदिया वेड़ाव उभराय।। निभृत निकंजे जाइया, इष्टों प्रणत हैया डडाकिव उहा राधनाम वालि।" (प्रार्थना) मुझ जैसे जीव को उत्ककण्ठा के राज्य श्री ब्रजधाम मै वास करके भी कोई अनुभव नहीं। खाना, पहनना, आमोद, प्रमोद सभी कुछ है और यन्त्र की तरह भजन भी चल रहा है । लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा, का अभाव तो प्रतिक्षण अंतस में जागता है। किन्तु अभीष्ट के लिए किसी अभाव का अनुभव नहीं होता, तभी तो परिकर हैं। मिलन भूमि पर नित्य अवस्थित होते हुए भी व्याकुलता का रसास्वादन कर रहे हैं। षड् गोस्वामी अष्टक में श्रील श्रीनिवास आचार्य प्रभु लिखते हैं- "राधाकुण्डतटे कलिन्दतनयातीरे च वंशीवटे, प्रेमोन्मादवशदशेदशया-ग्रस्ते प्रमत्तो सदा गायन्तो च कदा हरेर्गुणवरम् भीवाभिभुतो मूदा वन्दे रूप सनातनो रघुयुगों श्रीगोपाल को ।। हे राधे गत्रव्रजदेविके च ललिते हे नन्दसूनो कुत: श्री गोवर्धन कल्पपादप तले कालिन्दिवन्ये कुत: धोषन्तावति सवर्वतो व्रजपुरे खेदरर्महाविहवलो वन्दे रूप सनातनों रघुयुगों श्री जीव गोपाल को" अर्थात् जो प्रेमोन्माद वश रोदन, भुलुण्ठ आदि अशेष भावदशाओ से ग्रस्त होकर प्रेम में मत्त होकर श्रीराधाकुण्ड तट श्रीयमुना तीर, वंशीवट आदि लीला स्थानों पर व्याकुल प्राणे से सतत भ्रमण करते है और कभी स्फूर्ति में अभीष्ट का साक्षात्कार प्राप्त कर भावा विभूर दशा में नरमानन्द से श्रीहरि का गुणनवाद कीर्तन करते है- उन्हीं श्रीरूप, सनातन गोपाल भट ,रघुनाथ दास ,श्री जीव गोस्वामी के श्रीचरणों की वन्दना करता हूँ " "हे वृन्दावनेश्वरी श्री राधे! हे ललिते! हा श्री नन्दनन्दन! तुम कहाँ हो गिरिराज तट पर कल्पवृक्ष के तले अथवा यमुना के सन्निहित निकुँज वन में, कहाँ तुम्हारे दशन कर पाऊँगा कह दो।। जो इस प्रकार व्याकुल प्राणों से महाविहल दशा मे आति से भर कर उच्च स्वर से रूदन करते-करते ब्रज धाम में अपने अभीष्ट का अन्वेषण करते है उन्हीं षड़ गोस्वामी चरणों की श्री चरण्र वन्दना करता है । सिद्ध के लिए जो स्वाभविक है, साधक की वही साधना है। अत: ब्रजरस के साधकों में भी इस ब्रज धाम में थोड़ी बहुत व्याकुलता जगनी ही चाहिए। यदि मात्र भी व्याकुलता न जगी,

तो क्या भजन किया। ब्रजमाधुरी, क्या भगवान् और क्या भक्त दोनों को ही व्याकुल कर देती है। श्रीश्रीरामकृष्ण के गोकुल वासियों के संग गोकुल से वृन्दावन प्रसंग में श्रीशुकमुनि कहते है– "वृन्दावनम् गोवर्धनम् यमुना पुलिनानि च। वीक्ष्यासीदूत्तम प्रीती राममाधवययोर्नृप।।" हे महाराज परीक्षित! श्रीवृन्दावन की, यमुना पुलिन की शोभा दर्यान से श्रीराधाकृष्ण की उत्तमा प्रीती संजाती हुई थी किन्तु तब भी गोपियो ने कुरुक्षेत्र में श्री कृष्ण के दर्शन किए किन्तु तब भी गोपियों में श्री कृष्ण को ब्रज में जाने की दर्शन कर उसी भाव में कहा था "अन्येर हृदय मन, मोर मन वृन्दावन मने वने उक करि जानि। ताँहा तोमार पदद्वय कराउ यादि उरय पवे तोमार पूर्ण कृपा मानि।। प्राणनाथ सुन मोर सत्य निवेदन। ब्रज आमार सदन ताँहा तोमार संगम ना पादले ना रहे जीवन।। वृन्दावन गोवर्धन यमुना पुलिन वन सेइ कुंजे रासरादि लीला। सेइ व्रज व्रजजन माता पिता वन्धुगण वउ चित्र केमने पासलिला तोमार ये इप्य वेष इन्य संग अन्य देश व्रजजने कभू नाहि भाय।। व्रजभूमि छाडिते नार तोमा ना दमखिल मरे व्रजजनेर कि हवै उपाय? उत्कण्ठित श्रीपाद श्रीवृन्दावन से यही प्रश्न करते हैं– स्वाभीष्ट पूर्ति अथवा श्रीयुगलकिशोर के दर्शनों का क्या उपाय है? हे वृन्दावन! कृपा कर वह वता दो।" उहे वृन्दारण्य भूमि युगल विलासे धनि कुन्जे कुन्जे रसेर पाथार। तोमाके भजिले परे दान कर जूमि तारे परम आनन्द सूखसार।। ये तोमार शरण लय तनोवाच्छा पूर्ण होई उ प्रार्थना कर तूया पाय तोमार येक अधीश्वर यूगल किशोर वर पादवारे वल गो दपाय।। युगलेर इदर्शने प्राण कान्दे रात्रि दिने वृन्दाटवि! कृपा कर तूमि वल कौन कुन्छे रसमथी रसराजे निवेदये श्रीरूप गोसवामी तवारण्ये देवि ध्रुवमिह मुरारिर्विहरते सदा प्रेयस्येति श्रुतिरपि विरौति स्र्मतिरपि। इति ज्ञावा वृन्दे चरणमभिवन्दे तव कृपां कुरंष्वमत क्षिप्रं मे फलतु नितरां तर्षविछपी।। अन्वयः (हे) देवि वृन्दे! इत तवारण्ये मेरारिः प्रेयस्या (श्रीराधाया सपरिकरया) सह सदा विहरते इति श्रुतिः अपि स्मृतिः अपि विरैति (वदति), इति ज्ञात्वा (निश्चित) तव चरणाम् अभिवन्दे। (त्वम्) कृपाम कूरुष्व (त्वत् कृपया) मे (मम) तर्षविटपी (तृष्णातारु) नितराम् क्षिप्रम फलतू (शीघ्रम् फलवान भवतु)। अनुवाद : हे देवि वृन्दे! श्रुति, स्मृति प्रभृति शास्त्रसमूह कीर्तन करते हैं कि तुम्हारे आरण्य मे अर्थात् श्री वृन्दावन में श्रीकृष्ण श्रीराधा के संग

नित्य विहार करती है। यह बात जानकर तुम्हारे श्रीपाद पादमों की वन्दना करता हूँ तुम कृपा करो जिससे मेरा आशत: शीघ्र ही सफलित हो (अर्थात् शीघ्र श्रीराधाकृष्ण की प्राप्ति होगी) मकरन्द व्याख्या आशाता: लालसा के आवेग से उत्कण्ठित श्रीपाद का चित्त व्याकुल है। इस व्याकुलता की तंलना विश्व जगत में कहीं नहीं। श्रीपाद तो ब्रज की नित्यसिद्धा राधाकिंकरी है अत: वे महाभाव राज्य मे है जातप्रेम भक्तों की इष्ट प्राप्ति के अभाव में कितनी उत्कण्ठा है माधुर्य-कादिम्बिनी ग्रथं की आठवीं वृष्टि में जामप्रेम भक्त की उत्कण्ठा के संबध में जा लिखा है उसका मर्म इस प्रकार है कि चतुर्विद्य परम सुस्वादन अन्नादि, अपरिमित भाव से दिवानिश पुनः-पुन: भोजन करने पर भी क्षुधा की शान्ति न हो, दस प्रकार की कोई दुद्रमनीय खुदा यदि सम्भव हो तभी प्रेमिक भक्त की प्रेम-तृष्णा के संग उसका किंचित् दृष्टांत दिया जा सकता है। स्फूर्ति प्राप्त श्रीभगवान् के रूप, गुण, माधुर्य आदि का प्रचुर आस्वादन प्राप्त होते हुए भी प्रतिक्षण भगवत् साक्षात्कार आकांक्षी भक्त की उत्कण्ठा प्राबल्य के हेतु तृप्ति नहीं होती। तब उसके निकट आत्मीय स्वजनगण जल शून्य कूप के समान, ग्रह कंठकाकीर्ण आरण्य के समान, आहार प्रहार के समान, प्रतिदिन के कर्तव्य मृत्यु के समान अंग-प्रत्येक महाभार के समान सुहतगणे की सान्त्वना वाणी विष दृष्टि के तुल्य, जीवन धारण करना भगवन्निग्रह के तुल्य लगता है (ध्याप भी पुन: पुन: भुने हुए धान की तरह), यहाँ तक कि जो पूर्व मे जो सर्वदा वांछनीय था वह अब महा उपद्रव के समान लगता है एवं भगवद् चिंतन भी आत्मा चिन्तन के तुल्य बोध होता है एसं उत्कंण्ठित भक्त को जब भगवद्-दर्शन लाभ होता है तब ग्रीष्म काल मे सूर्य की किरणों से तप्त मरु पथिका को अति निविउ शाखा-प्रशाखा से सन्निविष्ट प्रकाण्ड वट वृक्ष की सुशीलता छाया में अवस्थित विशाल जलाशय के सुशीतल जल द्वारा प्रक्षलित तट प्रवेश के आाश्रय के जैसा आनन्द लाभ होता है, अथवा दीर्घकाल तक दावानल से पीड़ित वन के हाथी को जलधर की अपरिमित जलधारा मे अभिक्षित होकर जैसा आनन्द होता है। बथवा माहारोग ग्रस्त स्वाद के लोलुप व्यक्ति को अति मधुर अमृत का पान पर जैसा आनन्द लाभ होता है उत्कण्ठित भक्त के भगवत् दर्शन जनित आनन्द ससंग इस आपप्द की तुलना नहीं हो सकती। कारण विषयानन्द

माया शक्ति की वृत्ति है और भक्त का आनन्द स्वरूप शक्ति की वृत्ति है अत: दोनों सम्पूर्ण रूप स भिन्न वस्तुऐं है ऐसे ही किसी अनिर्वचनीय आनन्द दान के अभिप्राय से ही परम करुणा श्री भगवान् भक्त को अपनी विरह ज्वाला भोग करवाते हैं। श्रीपाद श्रीश्रीराधामाधव के चरणों मे उत्सर्गीकृत प्राण है। विरह-व्यथा को और एक क्षण के लिए भी सहन करने की क्षमता नहीं है। और फिर प्रबल दैत्य के उदय होने से अपनी अयोग्यता की स्फूर्ति होने से निराशा रूपी ताप से हृदय दग्ध हो रहा है सहसा अंतस में जाग्रत हुई ब्रजवन की अधिष्ठात्री श्रीवृन्दा देवी की कृपा की स्मृति। प्रार्थना करते हैं हे देवि वृन्दे, तुम्हारे आरण्य मे प्रिया जी के संग मरारत नित्यविहार करते हैं मुरारी का अर्थ मुर नामक दैत्य का अन्त नहीं यह सव तो ऐश्वर्य की बात है यहाँ मूरा कुत्सा तदरिस्तदंहित परमसून्दरस्येत्यार्थ: (सारंग रंगदा) मुरपा शब्द का अर्थ है कुत्सा, उस कुत्सा के आरि अर्थात् परमसुन्दार श्रीराधा के संग परम सौन्दर्य के ब्रजजन को दजालित कर जो विहार करते हैं जिनकी स्वभाव सुन्दर श्री अंग माधुरी प्रिया जी के सान्निध्य में, रूप से, रस से माधुर्य से, असीम सुष्माण्डित हो प्रकाशित होती है जैसे श्याम वैसे स्वामिनी! हे वन्दे! तुम्हारे वन में युगल माधुर्य रूप सुधा तरंकगणी वह रही है और फिर तुम्हारे वृन्दावन में उनके नित्यविहार की कथा तो श्रुति-स्मृति भी वर्णन करते हैं। परिशिष्ट में वर्णन है राधया माणवो देवो माधवेनैव राधिका जनेष्वाविभ्रजन्ते अर्थात्- ब्रजधाम मे श्रीराधा के संग माधव एवं माधव के संग श्रीराधा नित्य ही ब्रजवासी जन के मध्य विहार करती हैं गसेपालतापनी श्रुति में अथ गोकुलाख्ये माथुरमण्डले वृन्दावन मध्ये इत्यादि श्लोक में ब्रज में श्रीश्रीराधाकृष्ण का नित्यविहार वर्णित है और फिर स्मृति में इस वृन्दावन में मेरी सेवा परायणा जो सब गोप कन्याएँ वास करती है, वे पित्य योगिनी है मुझसे उनका किसी भी समय वियोग नहीं होता। यहाँ मेरा विग्रह कर हर समय द्विभुज ही रहता है कभी भी चतुर्भुजत्व प्रकाशित नहीं करता। यहाँ गोपी शिरोमणि श्रीराधा के संग मेरा नित्यविहार होता है। श्रीवृन्दा देवी विचित्र शोभा सम्पद् से स्वीभाविक रूप से सुन्दर श्री वृन्दावन को विभूषित कर स्वयं वन विहार के लिए उत्सुक श्रीराधामाधव को वन शोभा का दर्शन कराती है। हे श्रीराधमाधव! देखो, देखो यह वृन्दातटी आनन्दित हो अपनी सम्पदा, द्वारा सखी की तरह विविध

पल्लव और पुष्प और फल आदि वैभव के सुशोभित कर यह देखो यह वृन्दाटवी तुम्हें अपने घर आया देख कर आनन्दित हो कुसुम पराग रूपी परिधेय वस्त्र के ऊपर की और उड़ा कर वासु संचालित वृक्ष और लताओं के छल से परमानन्द में क्या मधुर नृत्य कर रही है अति सम्माननीय व्यक्ति के आने पर जैसे उत्तम वस्त्र द्वारा आगमन पथ को अच्छगतिक करके लाया जाता है उसी प्रकार वृन्दा देवी वृन्दावन के से श्रीश्रीराधामाधव की सेवा वर्धन की छल से उन्हें बस शोभा का दर्शन कराती हैं। श्रीपाद प्रार्थना करते हैं कि हे वन देवी! दस प्रकार विविध सेवाओं के माध्यम से विलाशी–मिथुन श्रीराधमाधव तुम्हें आत्मदान करते हैं। श्रीयुगल चरण तुम्हारी ही सम्पत्ति है तुम इच्छा करने मात्र से दे सकती हो। यही कृपा करो कि मेरा यही अंशाता: सफल हो! अर्थात् श्रीश्रीराधमाधव के दर्शन लाभ कर मे धन्य हो सकूं। "फलतु पितराम तर्षविटती" इस वााक्य का अर्थ यह है कि हे वन्दे युगल सेवा के निम्मित तुम्हारे अससदेश से वृन्दावन के वृक्ष लताऐं आदि जैसे अकाल ते रितू के ना होने पर भी पुष्पित एवं फलित हो जाती है, उसी प्रकार मेरे इस अकाल में अर्थात् युगल चरण में दर्शनों के उपयोगी कोई साधन या वैसे कोई भाग्य के ना रहते हुए भी तुम कृपा करो आशात: सफलित करो शुन शुन वृन्दादेवी गुण गाये श्रुति स्मृति चारि वेद पुराण सकल। तोमार ए वृन्दावने लीलामृत विषरणे पित्य विहारिछे श्री युगल।। एइ कथा सुनि आमि प्रथमेते वृन्दाराणी तव पदे लइनु शरण। लिवके कि आशात: मिलिवक कि श्रीराधिका मदनमोहन? एइ पिवेदन घर विशषं करुणा कर वल मोरे युगल सन्धान। उच्चस्वरे आर्तनादे श्रीरूप गोस्वामी कान्दे काँहा गेले जूडाइव प्राण"।। हृदि चिरवसदाशामण्डलालम्विपादौ। गुणवति तव नाथो नाथिंतु जन्तुरेष:।। सनदि भगद्नुज्ञां याचते देवि वृन्दे मयि करि करुणार्द्रां दृष्टिमत्र प्रसीद।। अन्वय:– (हे) गुणवती (करुण्यादिगुणशालिनी) देवि वृन्दे। एष: जन्तु: (इति दैक्योक्ति) तव नाथो नथितुम सनदि (शीघ्रम) तवदनुज्ञाम् याचते । अत्र (तत् प्रार्थके) मायि करुणार्द्रम् द्रष्टिम किर (अपर्य) प्रसीद। (कीदृशे तव नाथौ इत्याह) हृदि चिरवस–दाशामण्डलालम्वपौद (मम अभिलाष वृन्दस्य आश्रयो: पादा: ययौस्तो यच्चरमणेम्यो ममाशा: फलिष्यन्तित भाव:)।

अनुवादः- हे करुण्य गुणशालिनी देवि वृन्दे! जिनके श्रीचरण दर्शनों की आशा इस दीन के हृदय में चिरकाल से विद्यमान हैं वे श्रीराधाकृष्ण तुम्हारे ही नाथ है। मैं तुम्हारे अनुगत हूँ उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करता हूँ तुम प्रसन्न होकर अति शीघ्र इस दीन जन के प्रति सकरुणा दृष्टिपात करो।
मकरंदकणा व्याख्या। श्रीचरणदर्शनआशाः- एक और विपुल निरतिशय दैन्य और दूसरी ओर प्राप्ति की आशा ने श्रीपाद के चित्त मन में विफुल आडोलन जगा दिया है। शत् अयोग्यताओं की स्मृति में भी आशा की त्याग नहीं कर पा रहे हैं। आशा रूपी पक्षी हृदय में है श्रीश्रीराधामाधव के श्रीचरणों में भी समर्पित श्री चरण है वे विश्व में कही भी आश्वास (आराम) नहीं पा सकते बाण से विद्ध हिरण के जैसे अवस्था हक जाती है श्रीपाद के हृदय में सतत विराजमान हैं श्रीश्रीराधामाधव। उनके रूप गुण लीला माधुर्य पर चित्त मुग्ध है। उनके साक्षात् श्रीचरण दर्शन के बिना अब एक क्षणकाल भी बिताना कठिन हो रहा है। जिस मुहूर्त अपनी योग्यता की स्फूर्ति से हृदयकाश में निराशा का अधंकार छा जाता है, तभी अभीष्ट की करुणा की स्मृति चित्त को आशा के आलोक से उद्दीप्त कर देती है। इस प्रकार आशा और निराशा के तरंगघात से श्रीपाद की चित्त तरी सतत अंदोलन होती रहती है। अंत में मन में आता है कि अभीष्ट की करुणा शत्-शत् अयोग्यताओं की निरसकारी है। वे चरणों के दर्शन पायेंगे ही। दर्शन के बिना जैसे देह मे प्राण नहीं रहेंगे। दर्शन से पूर्व श्रीवृन्दा के आनुगत्य की प्रार्थना करते हैं। "हे देवी वृन्दे! तुम्हारे नाथ श्रीश्रीराधामाधव के दर्शनों की आशा चिरकाल से इस दीन के हृदय में विद्यमान हैं भक्ति साधन का पथ अति मधुमय है। अनन्त मधुर श्री भगवान् के दर्शन और सेवन की आशा से भक्त का जीवन भरा है। इस आशा को लेकर ही शुद्ध भक्ति की साधन भूमि पर प्रथम पदक्षेप होता है। जो भगवद् चरणों के अतिरिक्त अन्य कुछ कामना करते हैं उनकी भक्ति समाना है। श्रीमद्‌भागवत में श्रीकपिलदेव कहते हैं- मेरी अनन्त मधुर गुणावली श्रवण मात्र से ही गंगा की धारा की तरह ही मेरी और साधक की जो अविछिन्न मनोगति है, वही शुद्धा या निर्गुणा भक्ति है, यह अहैतुकी एवं अव्ययहिता है। "मद्‌गुणश्रतिमात्रेण मयि सवर्वगुहाशये। मनोगतिरविच्छिना यथा गंगाम्भ-सोहम्बूधो।। लक्षणम् भक्तियोगास्य निर्गुणस्य ह्यदाहृतम्। अहैतुक्यच्श्वहिता

या भक्तिः पंरुषौत्तम।। अर्थात्ः- अर्थात् जिस अवस्था में भक्ति अन्य उद्देश्यों से शून्य होकर मेरे गुण-माधुर्य के प्रति लुब्ध चित्त भक्त की मेरम प्रति अवच्छित हे मनोगति उत्पन्न करती है वही शुद्धा या निर्गुणा भक्ति है। अनेक विषयों के द्वारा भी भगवद् विषयणी मनोवृत्ति विच्छिन्न रहती है अतः यह अहैतुकी या फलरभिसन्धान शून्य है।" इस प्रकरण के आरम्भ में "भक्ति योगों बहूबिधो" इत्यादि श्लोक की श्रीपाददेव कृत मुक्ताफल ग्रन्थ की हेमादिकृत टीका में लिखते हैं अयस्यै भक्तियोग इत्याख्या इन्वर्थेन भक्तियोगास्यत्रैवा मूरव्यात्ला इतरेषू फल एवानुरागे न तू विष्णो फलालभेन भक्तित्यागादि-त्येषाबर्थात् इस निष्काम भक्ति में ही भक्तियोग शब्द की सार्थकता है एवं यही भक्तियोग मुख्य भी है गुणमय अथवा सकाम भक्ति में फल लाभ भी में अनुराग रहता है, श्री भगवान् में अनुराग नहीं रहता। इसी कारण सकाम भक्ति को यदि फल लाभ नहीं होता तो फिर वह भक्ति भी नहीं कर सकता। श्री गोपाल श्रुति मे देखा जाता हे कि " भक्तिरस्य भजनम मनकल्पनमेतदेव नैष्कर्म्यम " अर्थात् श्री कृष्ण का भजन ही भक्ति है इस भजन मे भी दह- जोल- परलोक कह की सभी सुखभोग की लालसाओं से शून्य हो कर श्री कृष्ण मे ही मन का आवेश यही यथार्थ नैकम्य है श्रीपाद नित्य परिकम्य है श्री राधमाधव के दर्शन एवं सेवा मे ही उनके मनद का अखण्ड आवेश है साधक जगज मे आकर शिक्षा देता हे - साधक की समग्र आशा आकांक्षा केवल श्री गोविन्द चरणो मे ही केंद्रित है । अन्य आवेश के रहने से भक्ति का इस्तित्व प्रमाणित नहीं होता । अर्थ सम्पदा अदि काी आकांक्षा , मुक्ति की आकांक्षा के हृदय त्याग करपे पर भी यह अजि कढिन है प्रयत्नशील साधक दैन्य की साधना से इन सभी इनर्थो की जय कर कमशः दष्ठ के चरणो मे चिज्ज के समब्र आशय को लगाने की चेष्ठा करे । श्री गुरू - वैष्णव की करूणा से इभीष्ट के नाम ,गुण, लीला आदि के यत् किंचित माधुर्य इस्वादन होने से चित्त वृत्ति पुनः इतर वस्तुओ के प्रति प्रलुब्ध नहीं होता । । चिरकाल से श्रीपाद कामना की सम्पद है श्री श्रीराधामाधाव के चरण । कहते है हे देवि वृन्दे ! श्रीराधामाधव तुम्हारे ही नाथ है । तुम्हारी अध्यक्षता मे मधुर ब्रज निकुंज मे नित्य विहार परायण है तुम्हारी कृपा के अतिरिक्त एनके दर्यान लाभ को कोई अन्य उपाय नहीं है । हे गुणवती । तुम

अशेष बुण सम्पन्न हो , तुम्हारे करूणा गुण भी असीम है । तुम केवज एक बार करूणाद्र दृष्टि से मेरी ओर देखो ं तुम्हारी कृपादृष्टि श्री युगल के दर्शन लाभ का सोभाग्य दान करेगी । मेरा आशातरू सफलित हो । तुमरी करूणा से वह अनन्त मधुर, विरह प्राप्त मन प्राण को शीतल करने वाला युगल रूप मेरे नयनो के सम्मुख तैर उठेगा । तुम्हारी आज्ञा से मे दनकी सेवा प्राप्त कर धन्य हसक गया । हाय! क्या मेरा ऐसा सोभाग्य होगा ? " हे देवी वृनदारानी कारूण्य गुण शालिनी पाद पादमे करि निवेदन। यॉंरा मोर प्राणपति, जीवन मरणे गति (सेइ) राधाकृष्ण तव प्राधणन।। सेइ वस्तु लाभ पूर्वे तोमार वरण अग्रे, अनुमति प्रार्थना तोमार। सुप्रसन्न हैजो तुमि तवेत देखिव आम वृन्दावने युगल विहार।। उत्कलिकावल्लरी के वर्णित से माधुरी, हृदयेर करूणा उच्छवास। श्रीरूप गोस्वामी पादे दान केला ए सम्पन्ने, युगल चरण करि आश।। दधतम वपुरंशुकनतली दलादिन्दीवरवृन्दबन्धुराम। कृतकान्चन-कान्तिवच्नैम स्फुतिराम चारूमरीचिसंचै।। अन्वय: दलदिन्दीवरवृन्दबन्धूराम् (दलन्दि विकाशनति यानि इन्दीवर वृन्दानि तेभ्योहपि बन्धूराम मनोज्ञान) वपू: अंशुककंदलीम (कान्तिसंहिता) दधतम् (कृष्णम्) कृतकांचनकान्ति वच्नेन: (कृत कांच कांचीनाम वंचनम् येस्थाभुते:) अनुवाद :- हे कृष्ण! तुम अपनी देह मे प्रफुल्लित इन्दीवर समुह के अपेक्षा अधिक मनोज्ञ कान्ति घारण करते हो, हे राधे! तुम कांचन-निन्दि मनोहर दीप्तिमालाओ से देदीन्यमान हो।। मकरंद कणा व्याख्या मनोज्ञ: कान्ति प्रार्थना अभीष्ट की करूणा की अर्गला खेल देती है। ब्रजवनाधि देवी श्री वृन्दा की कृपा से श्रीपाद के चित्त मे स्फूर्ति हुइ युगल की निरतिसय माधुरी। आगामी दस श्लोके मे उसी का वर्णन कर रहे हैं। श्रीराधा की किंकरित्व के अभिमान से युगज माधुरी का आस्वादन वैशिष्ट्य सर्वोपरि है साधन जीवन मे यह वहुत महत्वपुर्ण वस्तु है श्रीपाद साक्षात् पार्षद होते हुए भी एक साधक की भुमिका मे नीचक उतर कर युगल माधुरी का असवदन करते हैं साधनाकर लिखते है श्रीमन्महाप्रभु के आश्रित साधको का भजन-आदर्श। श्रीमन्महाप्रभु के प्रकट काल से पूर्व भी युगल उपासना थी किन्तु तब ऐसी नहीं थी महाप्रभु के आगमन ने सभी दिशाओ के अन्त तक को युगल माधुर्य को शत शत प्रवाहों से लभान्वित कर दिया है "श्रीकृष्णलालामृत सार तार शत शत धार दशदिगे वहे याहा हैते। सें

चैतनय लीला हय सरोवर अखय मन हंश चराह तहाते।। श्रीचैतन्य देव एवं उनके पीर्षद गणो से उत्साहित होता हे युगल माधुर्य रस का आनन्द श्री मद् रघुनाथ दास लिखते है कि पुर्व गुणो के भक्ति निपुण जिसकी धारणा रह नहीं कर पाते श्रुति मे भी जो अति रहस्यम रूप मे निहित रहता है एसा उज्जवल या मधुर प्रेमरस जिसका फल है वही भक्ति कल्पता जाने अति करूना परिवत हो गौड देश में भी जो वही श्री शचीनन्द क्या मेरे पयन के पथिक होगे श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती पाद कहते है कि ब्रलमाधुरी एवं उज्जवल रस की परमाश्रय श्रीराधा श्री माप महाप्रभु की ही करूणा का अविष्कार है "प्रेमा नामाद्भूतार्य: रवणपथगत: कस्य नाम्नाम माहिम्न : को वेत्ता कस्य वृन्दावन-विपिनमहामाधुरीष्य प्रवेश:। को वा जानाति राधाम् नरमसचमत्कारमाधुर्य-सीमा। मेकश्यैतप्यचद्र: परमकरुणा सवर्वमसविश्चकार।। अर्थात् :- प्रेम नामक अद्भुद पुरूषार्थ की बात ही किसने सुनी थी? श्री नाम की उेसी महिमा है यह कौन जानता था? श्री वृन्दावन के रहसयमय महामाधुर्य मे किसे प्रवेश लाभ प्रपनत हुआ था श्रीराधारानी को कौन जानता था केवल श्री कृष्ण चैतन्य ही करूणा से भरकर यह सब अविष्कार किया यह सग माधुरी स्वयं आस्वादन कर विश्व जगत मे स्थापना किया सुमेरू शिखर की तरह महान आस्वादन का आदर्श। आचार्य-पादगणों के अंतर मे शक्ति संचार कर उनक द्वारा माधुर्य वर्णनायाम नाना ग्रन्थ राज्य प्रणयन करे कलिहत जीव के लिए परम रहस्यमय ब्रज माधुरी आस्वादन का पथ सुगम कर दिया। यह जैसे उनकी स्वंय की ही आवश्यकता थी। श्रील सनातन गोस्वामी परद ने निर्वेद मे श्री जगन्नाथ के रथ चक्र के नीचे प्राणत्याग करने की इच्छा की हा उन्हें कहा था "तोमार शरीर आमार प्रधान साधन, ए- शरीरे साधिव आमि बहु प्रयोजन।। कृष्ण भक्ति प्रेमसेवा प्रवर्तन लुप्त तीर्थ उद्धार आर वैरागय-शिक्षण।। निज प्रिय स्थान मोर मथुरा वृन्दावन। ताहाँ एत णर्म्म चाहि करिते प्रचारण।। आचार्यपादगणो ने स्वंय ब्रज माधुरी आस्वादन कर उसके श्रवण कीर्तन से उसी आधर मृत का आस्वादन कर उसके अवशेष अपने रचित ग्रंथों मे रख छाड़े है। उनके ग्रन्थों के श्रवण-कीर्तन का आस्वादन मिलता है इसी लिए ही यह आलोचना है हत यह अमृत आलोचना का प्रेरणा भी दे रहे हैं श्री वुन्दावन की कृपा से श्रीपाद के चित्त मे युगल माधुर्य का स्तुर हुआ है उस

विश्व भुवन को आलोकित करने वाली गौर कान्तिमाला से उज्ज्वल युगल माधुर्य से अन्तर बाहर सब पूर्ण हो गाया है उन्होंने देखा प्रेमसरोवर मे दो सुविकसित कमल है एक इन्दीवर और दूसरा हेमारविन्द एकक नवजलधर कान्ति युक्त है कोटि कामारभिराम (मनमोहक) है, शारदीय चन्द्रमा की श्याम कान्जि से सभी दिशाओ को इन्दीवर कान्तिमाला एवं री मुखमण्डल की शोभा से विश्व की मण्डलमय किए दे रहा है दूसरा :- जैसे कान्ति का कुल देवता है मूतिमती माधुरी सम्पद है श्री अंग की स्वर्ण कान्ति छटा से श्यामलिमामयवृन्दावन को स्वर्णिम वृन्दावन मे रूपायित कर रहा है श्रीपाद कहते है - दानदीवर-कान्ति की अपेक्षा अधिक मनोहरी है एवं उज्जल स्वर्ण कान्ति को भी तिरस्कृत करती है यह श्री युगल की कान्ति माला दस श्यााम गौर के निकट इन्दीवर दवं स्वर्ण की क्या गिसाता यह प्रकृति के तेजस पदार्थो की आलोक किरणो के समान नहीं है। प्रापंचिक ज्योजि अथवा कान्ति के संग इस अप्रापंचिक कान्ति की तुलना क्याा संभव है इस ज्योति से चक्षुओ को शीतलता प्राप्त होती है वक झुजस नहीं जाते प्रपंपचिक कृति से देख नहीं पाते किन्तु यह कान्ति स्वयं चक्षुओं के दर्शन कराती है और अपने दर्शन कराती भी है किन्तु यह कान्ति प्रतिनियत आकांक्षा वह आनन्द धन कान्ति नित्य नवोल्लासमयी है। श्री मद्भागवत मे शुकमुनी कहते हैं- यह कान्ति नहीं- लावण्य एक सार है कान्ति के तार का भी श्रेष्ठांश विद्यमान है अथवा लावण्य के प्राचुर्यवश यी रूप स्वंय लावण्य सिन्धु है। अत: नीलोत्पल इन्द्रनीलमणि नवजलधर गलित कंचन विद्युतमाला दत्यादि सभी दृष्टांत वहाँ व्यर्थ है । और फिर परस्पर के सानिध्य में दोनों ही की कान्ति निरतिशय भाव से वर्धित हो जाती है "यद्यपि निर्म्मल राधार सत्प्रेम दर्पण।। तथापि सच्छता तार वादे क्षणे क्षणे। आमार माधुर्ये नाहि वादिते अवकाशे । ए दर्णणेर आँग नव नव रूपे भासे।। मन्माधूर्ये राधाप्रेमे दोहे होय करि।। क्षएे क्षणे वादे दोहे केह नाहि हरी। प्रतिक्षण वर्धनशील नव नव कान्ति माला की तरंगो मे श्रीपाद क नयन-मन निग्मन है। अनुवाद:- हे श्रीकृष्णा! निविड विद्युतमाला की कान्ति के कमान उज्ज्वल पीतांबर से तुम सुशोभित हो, श्री राधिके कस्तूरी के समान मोहन कृष्ण वर्ण नम्बर से तुम सुशोभित हो।। मकरंदकणा व्याख्याा:- श्री युगल की अंगछटा के माधुर्य स्वादन से उपरांत उनकी वसन शोभा पर श्री

परद की दृष्टि पउती है उन अमृत –स्रावी अंगों का स्पर्श पाकर सभी वसन अलंकार अमृतत्त्व हो गया महाकवि श्रील कर्णपुर लिखते हैं "माधुर्य-सिन्धुमधि यस्य भवमनपरदस्तत केवलम् कुद माधुर्यय हो जाता ने यी वसन नहीं है पारस्परिक (अंतरण्रा) प्रेम सौन्दर्य ही बाहर वसन के रूप मे श्रीगोपालचम्पू ग्रथ में लिखता है "हैमा गौरीश्यमो मपसि विनरीतो वहिरनिप।। दधन्मूर्तिभ्साम नृथमपृथगत्या विरूद्धभूत" श्री गोलोक में रात्रि सभा मे आसन पर उनविष्ट श्रीराधाश्याम के दर्शन कर श्री मधंकण्ठ ने कहा मेरे सम्मुख आसन पर उनविष्ट यह गौरी उवं श्याम मन मे विपरीत है अर्थात्- बाहर से जो श्याम है उपके भीनर गौरी है एवं बाहर से जो गौरी है उनके भीतर श्याम है अर्थात् श्री कृष्ण के भीतर राधा हे और राधा के भीतर श्री श्याम है प्रश्न यह हो सकता है कि गौरी एवं श्यााम भीतर एक वस्तु रख कर बाहर अन्य वस्तु प्रकाशित कर क्या कपट आचारण करते है? इस संसय की निवृति के लिए कहते है बाहर श्रीराधा नील वसनकेपि धान परह कर घौषित करतीं है कि मेरे भीतर श्यााम ही है एवं श्री कृष्ण भी बाहर पीत वसन पहनकर घौषित करते है कि मेर भीतर गौरंगी श्रीराधा ही है यहाँ भी एक वितर्क हो सकता है कि यदि गौरी के भीतर श्यााम है एवं श्याम के भीतर गौरी है तब वे दो जन पृथक भाव के कैसे रह सकते है दस पर गंभीर मनन-चिन्तन कर कहते है कोई अनिर्वचनीय प्रेम मूर्ति भाव घारण कर विशय रूप से कृष्ण एवं आश्रय रूप से श्रीराधा है और फिर वही प्रेम श्रीराधा के हृदय मे श्री कृष्ण के हृदय मे श्रीराधा को स्फूर्ति कीए रखना है इस प्रकार प्रेम एवं मुर्ति के भेद-अभेद तत्व प्रकाशित करते हुए वे अभिभूर्त होते है। तात्पर्य यह है कि एक अखण्ड प्रेम की ही आश्रय मूर्ति ही श्रीराधा है एवं विशाष मूर्ति श्री कृष्ण है एवं अखिल भावमूर्ति या महाभाव की मूर्ति श्रीराधा है पृथक् और अपृथक् इसलिए कहा जाता है कि मूर्ति एवं प्रेम रूप से अभेदत्व है एवं प्रेम के अश्रय और विषय रूप से भेद है श्री कृष्ण के प्रति श्रीराधा का जो प्रेम है उस प्रेम के विशय श्री कृष्ण है एवं आश्रय श्रीराधा है और फिर श्रीराधा के प्रति श्री कृष्ण जो प्रेम है। दोनों देह विषय प्रेम के आधार है एवं प्रेम अध्येय है प्रेम प्रेम के विषय को सतत निकट पाना चाहता है किन्तु श्रीराधाकृष्ण के परकीय भाव में वह समीव नहीं है। तभी दोनों परस्पर के ध्यान मे सतत हृदय मे रखते

हैं। किन्तु उससे तो पूर्ण सन्तुष्टि होती नहीं वे बाहर भी सतत परस्पर को हृदय को ऊपर रखनं की इच्छा करते है । तभी दोनो पीत एवं नील वर्ण के वसत्र पहनते है बहुत वाधा और विपत्तियों के मध्य जब अनुराग भरा मिलन होता है तब श्रीमती कहती है- जुया अनुरागे हाम परिनील शाडी।। श्यााम कहते है – "तंया अपुरागे हाम पीताम्बर धारी।।" उन्हीं अनुरागमय वसनो की दयुति श्रीपाद के नयनो मे बस गयी है। निविड विद्युतमय श्रैणी के संग श्रीराधा के मोहन नीलपट वसन का दृष्ट रहे है। मोहनताअनुभावनतरमाच्छिदय आकर्षिता।।" वसनो की छटा से इतर वस्तु का अनुभव दूरींाुत होता है असैर दर्शक के मन मे एक अपुर्ण तनमयता जाग्रत हो जाती है "सौदामिनी द्युतिहर श्याम अंगे पीताम्बर, झलमल करें निरन्तर। अनरागे विनोदनी अंगेते परिला धानि कस्पूरी वहन पटाम्बर" माधूरी प्रकटयन्तमुज्जवलां श्री पतेरपि वरिष्ठसौशठावाम्। इन्दिरामधुरगोष्ठसुनदरी वृन्दविस्यमयकरप्रभोन्नताम्।। अन्वय:- श्री पते: अपि (साक्षात्) वरिष्ठ सौष्ठवयम् प्रशंसा यस्यास्ताम्) उज्ज्वलाम माणूरीयाम प्रकटयन्ति (कृष्णयम्) इन्दिराया: श्रियोहपि साक्षात् मधुरस्य गौष्ठ-सुन्दरीवृन्दस्य विस्मयम करोति या मथाभुता प्रभातयतोन्नताम् त्वाम् राधाम्)।। अनुवाद:- हे श्री कृष्ण! श्री नानरायण के अंग सौष्ठव की अपेक्षा तुम्हारे श्री अंग में उज्ज्वल माधुरी प्रकाश पा रही है। हे श्री राधिके। कमला की अपेक्षा मधंरा श्री ब्रजसुन्दरीगुण की भी विस्मयकर है तुम्हारी उज्ज्वला श्री अंग माधुरी।। युगलमाधुरी:- इस श्लोक में श्रीपाद का स्फूर्ति प्राप्त युगल माधुरी का आस्वादन वर्णित है।। जितना आस्वादन उतनी पिपासा , जितना आस्वादन, इसी प्रकार से यह कम चलता है। प्रापंचिक ब्रह्मांड से प्रपंचतीय वैकुण्ठ पर्यन्त, स्थावर-जंगम, नरनारी से आरम्भ कर लक्ष्मी-नारायण पर्यन्त सभी का चित्त आकर्षित करता है उनका नाम कृष्ण अपने रूप-गुण आदि की सर्वानिरंजिनी शक्ति द्वारा सभी के चित्त मन को अनंरंजित कर अपनी ओर आकर्षित करना ही उनका सवभाव है।। "वृन्दावने अप्राकृत नवीन मदन। कामगायत्री कामगीजे याँर उपासना।। पुरुष योषित किवा स्थावर जंगम।। सर्वचित्ताकर्शण साक्षात् मत्मथमदन। श्री कृष्ण का रूप असमोर्ध्व है।। "असमोर्ण्वमनन्यसिद्धम्" (भागवत) श्री कृष्ण माधुरी अतुलनीय है। वे अपने श्री अंग माधुर्य से कमलापपि श्री नारायण से माधुर्य

को भी पराभूत कर देते है। श्रीमन्महाप्रभु राधामाधव ने प्रियसखी ज्ञान से श्री सनातन गसेस्वामीपाद का हाथ पकड़ कर रखते है– "सखी हे! कसेप तप कैल गोनागणे। कृष्ण–रूप–सुधामरी, पिवि निवि नेत्रभरी श्लाध्य करे जन्म–मने।। ये माधुरी उर्ध्व आन नाहि यार समान परत्योमे स्वरूपेर गणे। यहाँ सब अवतारी नाव्योमे अधिकारी ए माधुर्य नपाहि नारायणे। ताते साक्षी सेइ रमा नारायणे प्रियतमा पतिव्रतागणेर उपास्या। तेहाँ ये मसधुर्यलोभे छाडि सब कामभोगे व्रत करि तरल तपस्या।। श्री कृष्ण के रूप माधुर्य पर लुब्ध हो उनके माधुय आस्वदन की लालसा से वैकुण्ठेश्वरी लक्ष्मीदेवी लो व्रतधारा कर श्री वृन्दावन में सुचिरकाल तपसया कारते है महर्षि वेदव्यास ने श्रीमद् भागवत में उसका सादर वर्णनद किया है– "यदवान्छा श्री लार्लानाचरोति हवीाय कामना संचिरह घृतवाता इत्यादि। इस विषय मे परम भी एक असख्यालिका देखी जाती है । एक बार कमला देवी श्री कृष्ण माधुर्य पर लुब्ध होकर उन्हे प्राप्त करने के लिए श्री वृन्दावन मे अग्र तपस्या में निरत हुई। उनकी पतस्या से संतुष्ट होकर एक दिन श्री भगवान् ने उन्हे दर्शन दिया एवं तपस्या का कारण पूछा। तब देवी ने कहा :– "श्री वृन्दावन में गोपियों ने जिा भाव से तुम्हें प्राप्त किया है। मैं उसी भाव से तुम्हे पाना चाहती हूँ । श्री कृष्ण ने कहा– वह तो सर्वथा असंभव है। कारण तुम्हारा भाव ऐश्वयै प्रधान है गोपिहाऔं का शुद्ध भाव है ऐश्वयै है ज्ञानंगंध शून्य है। शुद्ध माध्सुर्य को बिनपा ब्रज मे मेरी सेवा सम्भव नहीं है।। यह बववत सुनकर रेवी किंचित् अमना हो गई। फिर कीने जली– "हे नाथ! मै कम से मक स्वण। रेखा के समान तुम्हारे पक्ष पर रहने ही इच्छा करती हूँ। तब श्री भगवान् ने कहा– अच्छा ऐसा ही होगा। तब से कमला देवी स्वर्ण् रेख के रूप मे श्री कृष्ण के वक्ष के वााम मे वास करने लगी। श्री गोस्वामी पाद क मतो के अनुसार श्रीमद् भागवत की लक्ष्मी एवं पदम पुराण की लक्ष्मी श्री वैकेठेश्वरी के दो प्रकाश है। इस त्रसंग से यह सिद्ध होता है कि श्री पति नारायण की तुलना मे श्री कृष्ण की तुलना मे अधिक .चमकप्रद एवं रसप्रद है। दूसरी और यह देखा जाता है कि श्री कृष्ण्र प्रिया ब्रजदेवियो के श्री नारायण के चतुर्भुज रूप के दर्शन करने पर भी वह यप माधुर्य के हृदय मे किसी प्रकार का कोई भावन्तर उत्पन्न नहीं कर पाया। यहाँ तक कि श्री कृष्ण गोपियों संग परिहास

को के लिए स्वंय चतुर्भुज नारायण के रूप मे प्रकट हुए तो भी उस यप मे उन्हे कोई अनंराग नहीं हुआ।। "स्वयं भगवन्ते कृष्ण हरे लक्ष्मीर मन। गोपिकार मने हरिते नारे नारायण।। नारायणेर का कथा-श्री कृष्ण आपने। गोपिकारे हास्य कहरते।। चतुर्भुज मूर्ति देखरि गोपिगण आने। सेइ कृष्णे गोपिकार नहे अनुराग।। बल्कि वे उस चतुर्भुज मुर्ति के निकट प्रार्थना करती है जिससे शीघ्र उन्हें ब्रजनन्दन री कृष्ण के दर्शन एवं संग लाभ हो।।" नमो नारायणा देव! करह प्रसाद! कृष्ण संग देह आमार धुचाउ विशाद।। इसके द्वारा प्रतिपादित होता है कि श्री कृष्ण के सौन्धर्य माधुर्य की तुलना मे श्री कृष्ण के सौन्दर्य माधुर्य कम है त्रैलौक्य संनदर श्री कृष्ण माधुरी स्थार जंगम की मोहन कारी है" त्रैलौक्य सौभगविन्द निरीक्षक रूपम् यदुगा द्विज दुरमृगा: नंजकान्ति विभ्रवना (भागवत)। ब्रजगोपिया कहती है हे प्रभु त्रभुवन सुन्दर मुम्हारी यह रूपमाणुरी देखकर निर्निमेष नेत्रौ से धेनुगुण तुम्हारे मुख की और निहारती है। शुक-सारी प्रभृति विहंगकुज नेत्र मुंद कर वृक्ष शाखाओं का बैठ तुम्हारे रूप का ध्यान करते हैं। अंकुर रूप पुजकोदमा एवं पुष्पमध रूप अश्रुधारा वर्षण कर फल भार से अवनतज शाखाओ द्वारा तुम्हाते पद पदम स्पर्श कर स्वयं को धन्य मानते हैं ब्रज के यह ब्रज वल्ली समुहि। पशु-पक्षीयों, वृक्ष-लताओं की सब ऐसी अवस्था है तब नर-नारी भी इस माधुर्य प्रवाह मे बह जाऐगें असमे संदेह कैसा।। सौन्दर्य माधुर्य की वेशभूषा की, भाव भगिमाओ की परिपाटी में धीर ललित नायक एक एवं अद्वितीय है। उनकी माधुरी परव्योम अधिपति श्री नारायण आदि अनन्त भगवत् स्वरूपों से आरम्भ का प्राकत अप्राकत समस्त नायकों का अतिक्रम कर विद्यमान है श्री नारायण आदि अननत भागवत।। तभी विश्व के प्राय: सभी महाकवि रूप-माधुरी का वर्णन करते हुए श्री वृन्दावन विहारी को ही विशय रूप में ग्रहण करते है।। कारण एसा अधर बिम्बो से मधुर, मन्द हास्य से मंजुल, अमृत नाद मे शिशिर, दृष्टि नात मे शीतल, अयण नेत्रों में विपुल, वेणु नाद मे विख्यात नायक एवं ब्रजनन्दन के अतिरिक्त और कोई नहीं। विशेषत: मधुर भावाश्रयी भक्त के अनुराग रंजित नयनो में अनुराग । श्री कृष्ण कें रूप का क्या अद्भुत वैशिष्ट है। आचार्यपादगण ब्रज की राधा किंकरील है श्रीराधा के सानिध्य में उच्छलित मदन मोहन माधुरी उनके महाीाव के नयनो

मे सर्वाधिक मधुर है।। श्रील रघुनाथ दास गौस्वामी लिखते हे "विधिकृत विधूर्सष्टिव्यर्थतारीवत्तू। द्यसुतिलि–हत–राधा–स्थूल–मनामन्धकार:।। सिमरति मधुलयौनमादीतैतद्धषीणक:। स्फूर्ति मदनपूर्वव: कोहपि गोपाल त्रष:।। अर्थात् "विधि द्वारा चन्द्र की शोभा को व्यर्थ सिद्ध कर देने वाली मुखमण्डल के कान्तिलेश द्वारा जो श्रीराधा के दुर्जय मन अंधकार का हरण करते हैं। हास्य मधुर आलाप मकरंद द्वारा जो श्रीराधा की इन्द्रियकुल को उनमादित करते है एसे कोई–अनिर्वचनीय मदनगोपाल ब्रज में निवास करते है "जो शारदीय प्रफुलिलत कमल कुल को भी भयभीत कर देते हैमन्दन गिरी द्वारा श्रीराधा के हृदय रूप दुग्ध सिन्धु का मन्थन कर देते हैं" "माधुरी एवं माधुर्य ऐ ही शब्द है माधुर्यम् नाम चेष्टायाम् सवर्वावस्याहू चारूत: चेष्टा समूहो ही सभी अवस्थऔ मे चारूता का नाम माधुर्य है वह माधुर्य प्रेमवती ब्रजसुन्दरी के नसनो के लिए अत्यन्त विषय है।। "सखि! के नागर रसेर सागर दाँडाये अशोकमूले। से रूप लहरी, लावण्य माधुरी, हेरिया नयान भूले।। नील उत्पल, दल सुकोमल, जिजिया वरण शोभा, दलित कांचन, जिनिया वान, कूलवती तनोलोभा, चंचल नयन, कामेर सन्धान, मारमे हानये यार, कुलेर धरम, भरम सरम, सव दूरे यात तार, त्रिभंग हैया, करे वैणू लैया, मधुर मधुर वाय लोख्न वचन, भुवन माकीन, सेइ श्यामचाँदराय।। जैसे श्याम वेसी ही स्वामिनी। श्रीपाद कहते हैं "इन्दिरामधुरगोष्ठसुन्दरीवृन्द–विस्मयकर–कमला की अपेक्षा अधिक मधुर ब्रतसुन्दरीगण की भी विस्मयकारी जिसकी श्री अंग माधुरी है ब्रजसंन्दरीयों का रूप, गाुण, प्रेम का माधुर्य कतला की अपेक्षा अधिक मधुर है । श्रीपाद लिखते हैं– "आरूण्या अपि माधुरी परिमल–व्यक्षिप्त–लक्ष्मीश्रिय:" वनवासी होते हुए भी जो रूप गुण आदि ही माधुरी कमल से परमिल से कमला के रूप, गाुण आदि सम्पदा को तिरस्कृत करती है उन ब्रजवासियों के लिय श्रीराधा का यपोत्सव चमत्कृति प्रदायी हैं श्रीपाद प्रबोधाननद लिखते हैं कि:– "सुभगशिखरलक्ष्मीकोटि काम्यैक पादा। घृतनखमणिचन्द्रज्योजिरामोदमात्रसा। अति मधुरचरित्रानंगलीला विलासा।। मम् हृदि रसमूर्ति स्फूर्तिमायातू राधा।। नवरसमदधुर्णन्माधव प्राणकोटि। प्रियनखमणिशभा सवर्वसौभाग्यभुमि:। स्फुरतु हृद सदा में कापि काश्मीररोचि। ब्रजनगर–किशोरवृन्द–सीमन्त भूषा" कमला की अपेक्षा अधिक

सौभग्यवती कोटि कोटि ब्रजसुन्दरिया काम्य है जिनके श्री चरण, जे अपनी नख मणि रूप चन्द्र किरण द्वारा साक्षत आनन्द को भी घारण करती है जिनका चरित्र इति मधुर है लीला विलास अंगमय है वही साक्षात् प्रेमरस की मूर्ति श्रीराधा मेरे चित्त मे अभिभूत है जिनकी श्री चरण र-नखमणियों की शोभा नवरस मद से सर्वदा घूर्णित चित्त माधव को कोटि प्राणों की अपेक्षा अधिकतर प्रिय है जो पिखिल सौभाग्य भूमि है वही कोई अनिर्वचनीय कुमकुम तुल्य है गौर कान्ति विशिष्टा ब्रज नगरस्त किशोरि कुज की शिरोमणि श्री राधिका मेरे चित्त मे निरन्तर स्फुरित है श्रीराधा ही वृन्दावन की साक्षात् माधुरी है प्रेमसुधा-तरंगिणी मे जैसे माधुर्य रस की प्लावना (बाढ़) आ गयी। प्रेम साधना के बिना यह माधुरी अनुभव हो गयी विशुद्ध भाव से सक्त हृदय लेकर जो इस माधुर्य का आस्वादन करते है स्वप्रकाश का यह माधुरी सिन्धु के एक बिन्दु का स्पर्श पाते है यह जी जगप धनय हो जाता है नयन मन और चित्त को चमत्कृत करता है यह माधुरी बिन्दु। जिसने देखा है (अनुभव किया है) वह जनता है कि भाव भाषा और छंदों से अतीत यह माधुरी चित्त को चमत्कृत कर देती है। भाव भाषा सब कुछ यहाँ नीद है तभी श्रीपाद कहते हैं ब्रजसुन्दरियों की चित्त चमत्कारकारी है यह श्रीराधा की मधुरिमा है।। "श्रीपति हइते, उज्ज्वल मधुर भाति ब्रजेन्द्रनन्दन परकाश लक्ष्मी जिनी मनोरमा शतकोटि व्रजांगना (याँदेर) राइरूपे परम उल्लास।। अततनसुदुर्घटोदस्य, स्थिरगुणरत्नचयस्प रोहणाद्रिम।। अखिलगुणवती कदम्बचेत:-व्रचुर-चमत्कृतिकारिसदुणाढयाम् अन्वय:- इतरजनसुर्घटांदस्य (इतरेषु पार्षदाभिन्नेषु जनेविनर्दा दिष्वपि दूर्घट उदयस्य तथाभूतस्य) स्थिरगुणरत्नचयस्य (सावर्वज्ञ-सौहाद-करूण्यादि गुणमणिवृनदस्य) रोहणाद्रिम (रोहण नामा) रत्नागिरी त्वाम् श्री कृष्ण) अखिलगुणती-कदम्बचेत: (अखिलनामा गुणवती कदाम्बानाम) अनुवाद:- हे श्री कृष्ण! तुम इतरजनो के दुष्प्राप्त हो, सर्वज्ञ करूणदायी हौ गुण रत्नों के मोहन आदि हे श्री राधिके! तुम निखिल गुणवती रमणी वृन्द की चित्त चित्तकारी हौ स्पेह सौन्दर्यादि गुणगणों सुशोभित हौ मकरंद व्याख्या:- श्रीयुगल-गुणमाधुरी श्रीपाद ने श्रीयुगल के रूप माधुरी का आस्वादन किया है अब इस श्लोक मे गुण धर्म की स्फूर्ति हो रही है। अखिल गुण रत्नों की श्लोक की खान है श्री श्रीराधामाधव उनके गुण समुह

स्वरूप से उत्पन्न है प्राकृत विश्वजीत के सौहाद्र, करूणा आदि गुणों की तरह नहीं रहे हैं चिदन्मय एवं प्रेममय गुणावली है। इन गुणों के अनुभव भजन सापेक्ष है इन गुणों के अनुभव से प्रेमिका का चित्त गुण माधुर्य में ही मग्न हो जाता है रूप लालि और झुरे गुणे मन भोर रूप अदि की अपेक्षा गुणावली समधिक चित्ताकर्ण होती है "गुण करे मन पागल" श्री कृष्ण अनन्त है उनकी गुणावली भी अनन्त है किस एक गुण के अनुभव से ही विश्व जीव धन्य हो जाती है और ब्रह्मा के सतुति प्रसंग में कहते है– "गुणात्मनस्तेहपि गुणान् विमातूम हितावीर्नस्य क ईशिरेहस्य कालेन यैवर्वा विमिता: सूकल्पैभूपांशव: खे मिहिका दूयभास: अर्थात् हे भगवान् महाशक्ति सम्पन्न शेष सनक आादि योगेश्वर गण कान क्रम में पृथ्वी के घूल कणोकी आकाश के हिम कणोकि और सूर्य आादि अनन्त कल्याणकाश्रीरूप मे अवतीर्ण तुम्हारे अनन्त गुणवली की गणना का प्रयास न कर निजकृत कर्मफल को भोग करते है सुख मे सर्वदा तुम्हारे करूणा गुण की भावना करते है एवं काय मनो बाक्य से परम कृपालू तुम्हारे श्री चरणो मे प्राप्ति के अत्तराधिकारी नहीं है (श्री जीव गोस्वाती पाद की टीका का मर्म) कृष्ण के गुण प्रेमिका के चित्त मे दुर्वार आकर्षण करते है श्री कृष्ण के गुण प्रेमिक की तो बात ही दूर जिनके चित्त मे दुर्वार ओकर्षण जगाते है। प्रेमिक करजे है श्री कृष्ण के गुण । गुणो के आकार से अथवा गुणमाधुर्य पर लुब्ध होकर वे आत्माराम त्याग के कर श्री कृष्ण का भजन करने लगते है "आत्मारामस्य मूनयो निर्ग्रन्था अप्यूस्क्रमे कूवर्वन्त्यहैतु कीम् भक्ति मिथिम्भुतगुणो हरि : श्री मन्महाप्रभु श्रील सनातन गोस्वामीपाद के निकट इस श्लोक की विस्तृत व्याख्या वर्णन प्रसंग मे कहते है" ावर्वरकर्षक सवर्वाहलादक महा रसायन आपनार वले करे सवर्व विस्मारण श्री मान महाप्रभु श्री मद्‌भागवत से सब आाकर्षणो का दृष्टांत दे रहे है। यह सब गुण अतरजन को अर्थात् इन्द्र आदि देव गणो को भी दुष्प्राय है कृष्णभक्ते आंशिक भावे कृष्णेर गुण सकल संचारे।। इस प्रमाण से पार्षद भक्तो मे विशेष–विशेष गुणों का समारोह देखा जाता है जभी इतर जनो के दुष्प्राप्त कहा है। प्रेमी की जाति एवं परिभाषा के अनुरूप श्री कृष्ण की गुणावली का स्फुरण होता ही है श्रीराधा का किंकरी है अत: मधुर रस विषयरस गुणावली ही उनके लिए समधिक आस्वाद्‌य है। श्रीपाद उज्ज्वल नीलमणि ग्रन्थ में

नायक गुण निरूपण के प्रथम मे ही लिखते हैं "पदद्यूति-विनिर्धूत-स्मरपरार्घ रूपोघति दृगंचल-कला-नटीपटीमभिर्मनोहारिणी स्फूरन्व घृनाकृति नरमदायित्व लीला निधि : क्रियान्तव जगत्रयीयुवति भाग्यसिद्धिम" पूर्वरागवती श्रीराधा के पौर्णमासी देवी को प्रणाम करने पर देवी उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहती है "हे राधे जिनकी नवजलन के सदृश्य आकृति है जो तरम दिव्य लीला पिधि है जिनकी पद्युयति के दर्शन मात्र से ही निखिल कदम्वो का रूप गरिमा लघुत्व को प्राप्त हो हाती है जो अपनी कटाक्ष पदी की पटुता का से सभी के चित्र विमोहक करते है युवतीगणो के मध्य भाग्यफल स्वरूप कोई अनिर्वचनीय पुरूष तुम्हारा हर्ष विधान करे आके बाद ही श्रीपाद गोसवमी चरण उके उपयागी कुछ गुणरत्न चया कर मधुरश्रयी भक्त वृन्द को उपहार स्वरूप देख रहे हैं।

अथम् सुरम्ये मधुरः सवर्वजक्ष्मणान्वितः।
वलीयान्नवतारूण्यो वावदूक : प्रियमवदः।।
सुधाी सप्रतिभो घीरो विदग्धश्चतुरः सुखी।
कुतज्ञो दक्षिणः प्रेमवश्यो गम्भीरताम्बूधिः।।
वरीयान् कीर्तिमान् नारीमोहनो नित्यनूतनः।
अतुलय-केलि-सौन्दर्य-प्रेष्ठ-वंशीस्वनान्वितः।।

"ये सुरम्य, मधुर, समस्त, सुलखणयुक्त, बलवान, नवयौन-नान्वित, वक्ता, प्रियभासी, बुद्धिमान, सुपडित, प्रतिभानवित, धीर, विदग्ध, चतुर, सुखी, कृतज्ञ, दक्षिण, प्रेमवश्य, गम्भीर, वरीयान, कीर्तिमान, नारीजन-मनोहारी, नित्यनूतन, अतुल्यकेलि सौन्दर्य , परमप्रिय वंशी वादन परायण।। "

श्रीपाद कहते है:- "हे श्री राधिके " तुम निखिल गुणवती रमणी वृंद के चित्त चमत्कारी गुण समूह से विभूषित हो

प्रेमेरे स्वरूप देह प्रेम विभावित। कृष्णरे प्रेयसी श्रेष्ठा जगते विविद।।
प्रेमेरे परम सार महाभाव जानि। सेइ महाभाव रूपा राधा ठाकूराणी।।

(वही)। अतः समस्त गुणावली महाभाव से उत्पन्न है कहाँ महाभाव और कहा शूद्र कीट जीव! अतः श्रीराधा की गुणावली को जिन गुणावली रमणी वृन्द की चमत्कार कहा गया है, वे सब रमणीय मायिक प्रपंच की

गुणवती रमणियाँ नहीं है, यह सभी अप्राकृत राज्य की भगवत कांताए हैं। श्रील कविराज गोस्वामीपाद लिखते हैं।

" याँहार सौभाग्यगुण वान्छे सत्याभामा।
याँर ठाई कला-विलास शिखे ब्रजरामा।
याँर सौन्दर्यादि गुण वान्छे लक्ष्मी - पावर्वती।
याँर पतिव्रता-धर्मा वान्छे अरूणघती।।
याँर सद्‌गुणेर कृष्ण ना पान नार।
ताँर गुण गाणिवे केतने जीव छार?

अखिल गुणों के सिन्धु श्री कृष्ण की अपेक्षा भी अधिक गुणवती है श्रीराधा। यह किसी की कही बात नहीं, श्री कृष्ण का ही निज अनुभव है।

"कृष्णरे विचार एक आछये अंतरे।
पूर्णानन्द वूर्णरस -रूप कहे मोरे।।
आमा हैते आनन्दित हय त्रिभुवन।
आमा के आनन्द दिवे एछे कोन जन ।।
आमा हैते यार हय शत् शत् गूण।
सेइ जन आह्लादिते पारे मोर मन।।
आमा हैते गुणी वड़ जगते असम्भव ।
एकालि राधारे ताहा करि अनुभव ।।
कोटि कात जिनि रूप यद्यपि आमार ।
असमोर्घ्व माधुर्य साम्य नाहि यार ।।
मोर रूपे आप्यायित हय त्रिभूवन ।
राधार स्वर वंशीगीते आकर्षण त्रिभुवन।
यद्यपि आमार गन्धे जगत सुगन्ध।
मोर चित्त प्राण हरे राधा-अंग गंध।।
यद्यपि ंआमार रसे जगत सुरस ।
राधार अधर रसे आमा करे वश।।
यद्यपि आमार स्पर्श कोटिन्दू- शीतल ।
राधिकार रूप गुण आमार हेतु।

कोटि कोटि महाभाववती ब्रजसुन्दरीगण के मध्य श्रीराधा एवं चन्द्रावली श्रेष्ठ हैं। कारण वे महाभाव-स्वरूपिणी है। मैं अति गुरुतर है। नारदप्रचरात्र, गौतमीय तंत्र आदि श्रीराधा का परा-शक्ति के रूप मे वर्णन करते है "लक्ष्मी सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिका परा। भक्तया नमन्ति यत शश्वत त्वम् नताहत नरात्वनरम् (नारदपंचरात्रि) अथात् "लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री एवं पराशक्ति श्रीराधा जिनके पादपद्मों में भक्ति सहित प्रणाम करती है उन्हीं परात्पर श्रीराधा के सम्बन्ध में ही पराशब्द प्रयुक्त हुआ है।" परान्ते श्रेष्ठवाचका" अन्त मे परा शब्द श्रेष्ठता का वाचक है। इस नियम के अनुसार श्रीराधा ही सर्वशक्ति श्रेष्ठता है यह प्रतिपादित होता है कि श्रीराधा के सम्बंध में यह श्रेष्ठतावाचक शब्द "परा शस्त्रों में बार-बार प्रयुक्त होता है।

"राधा देवी परा प्रोक्ता चतुवग प्रसविनी।।
रासिका रसिकानन्दा स्वयं रासेश्वरी परा।"

इत्यादि। श्री गौतमीय तन्त्र में भी श्रीराधा का वर्णन नारशक्ति के रूप में किया गया है। "इेपी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेपता सवर्वलक्ष्मीमयी-सवर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा।।"

परा ठकुरानी श्री मति की अलल्त गुणावली है, उसमे मधुर रस के पच्चीस गुण प्रधान है।

" अनन्त गुण श्री राधिकार, पँचिश प्रधान।
येइ गुणेर वश हय कृष्ण भगवान्।।
" अथ वृन्दावनेश्वरीयाः कीर्तयन्ति प्रवरागुणाः।।
मधुरेयम् नववयाश्चलपांगोज्ज्वलस्मिता।।
चारू- सौभाग्य रेखदया गन्धेन्मादित माधवा।
संगीत प्रसराभिज्ञा रम्यवांग नर्म्म-पंडिता।।
विनीता करूणापूर्णा विदम्धा पाटवन्विता।
लज्जाशील सूमर्यादा धैर्य-गाम्मीर्य-शालिनी।
सुवालासा महाभाव - परमोत्कर्शतार्षिणी।
गोकुलप्रेमवसतिर्जगच्छेणी- लसदयशाः।।
कृष्णप्रियवली मुख्या सन्तताश्रवकेशवा।।
बहुना किम् गणास्तस्या संख्यातीता हरेरिव।।"

यहाँ श्री वृन्दावनेश्वरी की श्रेष्ठ गुणावली वर्णित है श्रीराधा–मधुरा, नववया, चलापांगा (नरल नयना) उज्ज्वल स्तिजा चारु सौभाग्य रेखाढ्या (जिनके करतल एवं पदतल मे सौभाग्य सूचक अति मनोहर रेखा समूह है) गन्धोन्मादितमाधवा (जिसकी अंग गंध से माधव उन्मादित हाते है) संगीतप्रसराभिज्ञाा (संगीत विद्या मे सुनिपगुण), रम्यवाक्, नर्मपंडिता, (परहास पटू) विनीता , करूणापूर्णा , विदम्धा , पाटवान्विता (सुचुरुता) लज्जाशील सूमर्यादा,(स्व मर्यादा मे स्थित) धैर्यशालिनी , गंभीरर्यशालिनी , सुविलासा , महाभावपरमोत्कर्षतर्षिणी (महाभाव का परमोत्कर्ष जिसने प्रकाशित होता है) , जगच्छेणीलसदयशा (सम्पूर्ण विश्व मे ब्रहमांड मे जिनका यश: प्रकाशित है) सखी प्रणयितावशा (सखियो के प्रणय के अधीन कृष्ण-पियागण मुख्या , सतन्ताश्रवकेशवा (केशव तत जिनके आज्ञाधीन हैं)।

" हे ब्रज नील मणि , अखिल गुणेर खानि
दुष्प्राया या इतर जनेन ।
सर्वज्ञ- सौहाद्र- करि , कारूण्य गुणेते हरि ,
रत्नखानि रोहण पर्वते ।।
हे राधे! विनोदनी , सकल सद्गुणे तूमि,
सुसोभिता वरमा सुन्दरी ।
अखिल भूवन मारि , यत गुणावती नारी,।
सवाकार चित्त- चमत्कारी ।।

निस्तुलब्रजकिशोरिमण्डली - मौलिमण्डलनहरिन्मणीयवरम्।।
विश्वविस्फुरितगोकुलोल्लास - न्नव्याकसवतवतम् । ।

अन्वय:- निस्तुल-ब्रजकिशोरि-मण्डली-मौलिमण्डनहरिन्मणिश्वरम् (निस्तुलानाम् निरूपमानाम् ब्रजकिशोरानाम्) श्रीपादासुबलादीनाम् या मण्डलीस्तस्या मौलिमण्डनम् हरिन्मणीश्वर मारकतश्रेष्ठताम् त्वाम् श्री कृष्णम्) विश्वविस्फूरित-गोकुलोल्लासन्नव्ययोवत् वतम् (विश्वस्मिन् विस्फूतिम् यदुगाकुलम् तत्रो' ल्लासदयन्नवम् यौवान्तम् युवतिवृन्दम श्यामला-पलिकादि-तस्यावतंस-मालिकाम् त्वाम् श्रीराधाम्)।

अनुवादः- हे कृष्ण, तुम निखिल ब्रजबालकगणों के शिरोभूषण मरकत-मणि स्वरूप हो, हे श्री राधे! तुम इस विश्व में श्रेष्ठ गोकुल में निखिल युवती-वृन्द की शिरोभूषण-कुसुममाला स्वरूपा हो ।

मकरंद व्याख्या।।

ब्रजवतंस श्री श्रीराधामाधव :

श्रीपाद की चित्त रूपी शफरी (मत्स्य) श्री युगल के माधुर्य सिंधु मे यथेष्ट सन्तरण कर रहे है । चित्त को, कवलित कर अन्य आवेश से रहित करना ही माधुर्य का एक स्वभाव है । महाकवि श्री कर्णपूर ने कहा है - माधुर्य चित्त को विगलित कर उसे रंजित कर देता है। " रंतकत्वम् हिमाधुर्यम् चेतसो द्रुतिकारणम् "

सर्वोपरि है अनन्तमधुर श्री श्रीराधामाधव के रूप- गुण आदि का माधुर्य । प्रेमिक के चित्त मे अपुर्ण रसोन्मादन जगाता है । मन निखधि उसी का मन ही इसका साक्षी देता है रास मे अन्य सभी गोतियो के अलाक्षित भाव से माधव नें श्रीराधा को गुप्त रूप से वेतसी - कुंज मे जाने का इंगित किया तत्कालिक उच्छलित श्री कृष्ण- माधुरी आस्वादन कर लीलाशुक ने कहा -

" माधुर्यवारिधि - मदाम्वूतरंगभंगी ।
श्रृगार- संकुलित -शीतकिशोरि वेशम् ।।
आमान्दहास- ललितानन चन्द्रविभ्वू ।
मरनन्दसम् प्लवमनुप्लवतात् मनो मे ।।

" जिन आनन्द प्रवाह मे माधुर्य सागर की अनन्त तरंग मालाए विद्यमान है, जो उज्ज्वल प्रेम रस स्निग्ध है और किशोर मूर्ति है। मनोही आनन्दचंद्र विम्ब के समान इषत् हास्य मण्डित है, वही सर्वन्लसवक उच्छलित आनन्द प्रवाह मेरे मन को परिप्लावित करें।। ब्रज के श्री दाम सुबल आदि सखगण भी सौन्दर्य गुण, प्रेम आदि मे अतुलनीय है। वे नित्य पार्षद हैं। उनकी देह पंचभुत का विकार नहीं है। वे सब चिदानन्द मूर्ति है

श्रीपाद लिखते है कि:-

" रूपूशगुणाद्यैस्तु समाः सम्यग्यन्त्रिताः ।
विश्रत्भसंभृतात्मानो वयस्यास्तस्य कीर्तिता :।।

अर्थात् :- जो रूप मे गुण मे वेश मे श्री हरि के समान है दासोचित सम्भ्रम, संकोच आदि शून्य है। एवं जो प्रगाढ विश्वासमय है वे ही वयस्य कहलाते है " श्री सुबल के रूप वर्णन मे श्रीपाद लिखते हैं।

" तनुरूचि विजितहरिण्याम् हरिदयितम् हारिणम् हरिद्वसनम् ।
सुबलम कुवलयनयनम् नयन-नन्दित-बांधवम् वन्दे ।।

स्वर्ण-निन्द जिनकी अंग कान्ति है, गले मे मनोहर हार है, नेत्र इन्दीवर के समान है एवं नीति द्वारा बांधवगणों को जो आनन्द दान करते हैं, उन्हीं हरिप्रिया सुबल की वन्दना करता हूँ।। इस प्रकार श्रीपाद ने अन्यान्य सखगणों के रूप-सौन्दर्य का भी वर्णन किया है।। साख्यरसो पयोगि विविध चेष्टाओं मे भी सभी अत्यंत मधुर स्वभाव है।।

" केचिदेषू स्थिरा जात्या मन्त्रीवतमूपासते।।
तम् हास्यन्ति चापला : केचिद्वैहासिकोनमाः।।
भक्ति रसामृत सिन्धु प्रेयोभक्तिरस लहरी देखें !
केचिदावसारेण सरलाः शीलयन्ति तम्।
वामा वक्रिमचक्रेण केचिद्विसमाययन्यममूम्।।
केचित प्रगलभाः कूवर्वन्ति वितंडाममूना समम्।
सौम्याः सुनृत्या वाचा धन्या धन्विन्ति तम् परे।।
एवम् विविधया सवर्वे प्रकृत्या मधुरा अमी ।
पवित्र- मैनी - वैचित्री - चारूतामूतचिन्वते।। "

श्री कृष्ण के सखगण मे कोई कोई स्वाभाव से स्थिर है वह मन्त्री की तरह श्री कृष्ण को तरामर्श देता है। अन्य कोई चपल स्वभाव वश उन्हें हंसाता है। कोई सरल स्वभाव से एवं सरल व्यवहार से श्री कृष्ण को सुखी करता है कोई वाम्य को विस्मित करता है, कोई सौम्य एवं धन्य सखा सुमिष्ट वचनो से उनकी प्रीतिविधान करता है। इस प्रकार विविध मधुर श्री कृष्ण-वयस्यगण विश्व में अतुलनीय हे। इस रस के विषयालम्बन श्री कृष्ण माधुरी का वर्णन श्रीपादः-

"महेन्द्रमणिमंजुलद्युतिरमन्देुन्दस्मितः,
स्फूरत पुरटकेतकीकुसुमरम्यपटाम्बरः।,

स्गुल्लसदूरःस्थलः क्वणिवेणुरत्रावृजन्।
व्रजादघहरो हीत्यहह नः सखीनाम् ममः।।"

"अहो! जिनकी कान्ति इद्रनीलमणि की अपेक्षा अधिक सुन्दर है, अधेरा पर कुन्द कुसुम के समान अति उत्तम शुभ्र हंशी है स्वर्ण केतकी के पुष्प के समान रम्य पीत पटटाम्बर जिसका परिधान है, वनमाला से वक्ष मनोज्ञ है, वही अधनाशन श्री हरि ब्रज से मुरली-वादन करते हुए आ रहे है आकर हम सखगणों का मन हरण कर रहे हैं। और उन्हीं श्याम इन्द्रीनल-मणि का सौन्दर्य श्रीराधा रूप स्वर्ण कान्ता से मिलने पर समधिक उच्छासिक हो उठता है। ब्रजबालगणों के निकट उनके रूप-अतिशय की वर्णन करते है श्रीपाद शुकमुनि -

तत्रतिशुशुभे तामि र्भगवान देवकीसुतः।।
मघ्ये मणीनाम् हेमानाम् महामीकतोयथा।।

"उन सभी स्वर्ण-वर्णा गोप किशोरियों के मध्य भगवान् श्री यशोदानन्दन स्वर्ण मजियो से मण्डित महाभरकत मणि के समान शोभा पाने लगें। श्रीपाद उसी आतिशस का आस्वादन पा रहे हैं।

श्रीराधा विश्व- विख्यात गोकुल के मध्य निखिल ब्रज- युवतिगणो की शिरोभूषण कुसुममाला स्वरूपा है । वैकुण्ठ के शीर्ष पर स्थित श्री ब्रजधाम अथवा गोकुल विश्व जीव के प्रति करूणा कर धरणी पर अवतीर्ण हो विराज रहा है । प्रपांचिक विश्व के संग इसका कोई सम्पर्क नहीं है । जगत बहिरंगा माया शक्ति या प्रकृत का परिणाम है, किन्तु धाम अन्तरंगा या चित्त शक्ति का विकार है । संधिनी शक्ति मे धाम की प्रतिष्ठा है। ।

सवर्वोपरि श्री गोकुल ब्रजलोक धाम।
श्री गोलोक श्वेतद्वीप वृन्दावन नाम।।
सवर्वग अनन्त विभु कृष्ण तनु सम।
उपयर्यधा प्रकाश ताँर कृष्णेर इच्छाय।
ब्रहमाणे प्रकाश ताँर नाहि दुइ काय।।

इसी कारण से ब्रजधाम विश्व का गौरव है या विश्व मे सर्वश्रेष्ठ है । यहाँ की श्री कृष्ण प्रिया रमणियाँ सब महाभाववती है , किन्तु श्रीराधारानी साक्षात महाभाव - स्वरूपिणी है। महाभाव से ही बना उनका श्री विग्रह ।

अन्याय गोप सुन्दरीगण श्रीराधा का कायव्यूह है । " वहु कान्ता बिना नहे रसेर उल्लास । लीलार सहाय लागि बहुत प्रकाश ।।"राधासह लीलार आस्वादन करूणा । आर सब गोपीगण रसोपकार ।।

इत्यादि इसी कारण से ही वे ब्रजगोपी शिरोमणि अथवा शिरोभूषण कुसुममाला – स्वरूपा है ।

" सन्तु भ्राम्यदपांगभांगि खुरलीखेलाभूरः सुभ्रुव :
स्वस्ति स्यान्ममदिरेक्षणे – क्षणमपि त्वामन्तरा मे कुतः
ताराणाम् निकूरम्बकेण वृतया शिलष्टेहपि सोमाभया ।
नाकाशे वृषभानुजाम् श्रियमृते निष्पद्यते स्वच्छता ।। "

श्रीकृष्ण श्रीराधा से कहतें है "हे खंजीरीट नयने! जिनके नयन निरन्तर घूर्णित हो विविध भाव व्यक्त करते है एसी बहुत बहुत सुभ्रओं के ब्रज मे रहते हुए भी तारों से परिवृत चन्द्रमा की रोशनी से समान्वित आकाश ज्येष्ठ मास के भी की किरणों के समान जैसे प्रकाशित नहीं सान्निध्य से भी मेरा चित्त नहीं हाता । ।

ब्रज की महिमा अनुभव करने के लिए ही श्री कृष्ण के अंतस मे इच्छा जगी थी गौर हो कर विश्व को बताया गोपकान्ता शिरोमणि श्रीराधा के प्रेम का गौरव! श्री सरस्वती पाद लिखते है

" पुरन्क्रीनाम् चूडाभरण- नवरत्नम् विजयते "

अर्थात् :- ब्रजपुर-रमणीगण की शिरोभुषण नवरत्न के समान श्रीराधा सवौत्कर्ष के साथ करें ।

"श्री गोविन्द वनमाली , वरज किशोरि मौलि
मकरत मणीन्द्र स्वरूप।
विश्वविख्यात ब्रजपुरी , यूवतीगणेर प्यारी
सीमान्त मालिक अनुरूपं।।
"स्वांतसिन्धुमकरीकृतराधाम्, हृन्निशाकरकंगितकृष्णम्।
प्रेयसीपरिमलोन्मदचित्तम, प्रेष्ठसौरभहृतेद्रियवर्गाम।।

अनवयः – स्वान्तसिप्धुमकरीकृतराधाम् –सिन्धो मकरीकृता राधा येन तम् श्री कृष्णम् हृनिनशाकर कुरंगित कृष्णाम् (हृन्निशाकरे चित्तचन्दे कुरंगितो मृगताम् नीतो श्री कृष्णा यया ताम् श्रीराधाम्) प्रेयासीपरिमलोन्मदचित्तम (

प्रेयस्या परिमलेन उन्तदम् चित्तम यस्य त्वम् कृष्णम) प्रेष्ठासौरमहृ तेन्द्रियवर्गाम् (प्रेष्ठस्य सौरभेन हृत इन्द्रियवर्गो यस्यास्ताम राधाम्

अनुवाद:- हे कृष्ण! तुमने चित्त रूपी सिन्धु मे श्रीराधा को मकरी की तरह रखा है । हे श्री राधे! तुमने भी श्री कृष्ण को हृदय रूप चन्द्र मण्डल मे कुरंग स्वरूप रखा हैे हे श्री कृष्ण ! श्रीराधा की अंग गंध से आनन्दित हो तुम्हारे चित्त उन्मत हो जाता है । हे श्री राधिके ! श्री कृष्ण के अंग सौरभ से तुम्हारा इन्द्रिया वर्ग क्षुब्ध हो जाता है ।।

मकरंदकणा व्याख्या :

पारस्परिक प्रणयरस:-

श्रीराधा किकंरी श्रीरूप का हृदय श्रीराधामाधव के पारस्परिक प्रणय रस से भरपूर है। सखी मन्जरियाँ ही युगल रस का पोषण ,वर्धन एवं आस्वादन करती है । श्रीपाद अपने उज्ज्वल-नीलमणि ग्रंन्थ मे सखी प्रकरण के प्रारम्भ मे लिखते है-"विस्तारोहत्र विख्यापनम् विवर्धनंच। तत्र नायकस्य प्रमा नायिकायाम् नायिकाय्: प्रेमा नायके सख्या विख्यातपतं तत एवं विवर्धते च। लीला चाभिसारादिभिज्ञ: प्राप्तमिलनयोर्नायकयो।: स्वस्थित्यानायिका वाम्यति-श्सोत्थातनेन च।। हासपरिहासादिभिश्च विवर्धते स्थानान्तरे समयान्तरे च। चिसापते च। विहारश्स सम्प्रयोगात्मक गुरूपत्यादि सवर्वसमाधार नांगीकारेन साहसदानाद्विवर्धते समयान्तरे च सम्भुक्तया नायिकया सह रसोद्गारद्विख्यापते चेति विनापि सखीम् तत्त सिद्धेरसम्यकत्वत्यिार्थ: " अर्थात्:- यहाँ विस्तार का अर्थ विख्यापन और विवर्धन है । प्रेम विवर्धन और ख्यापन इस प्रकार है कि सखियो नायक का प्रम नायिका के निकट एवं वर्धन करती है । यह सब नायक नायिका स्वयं करने लगें तो रस पुष्टि होती है उसी प्रकार लीला वर्धन एवं विख्यात अभिसार अदि के द्वारा प्राप्त मिलन नायक नायिका के मध्य सख्यिाँ नायिका का वाम्यातिशय वर्धन कर हास परिहास आदि द्वारा लीला वर्धन करती है एवं भिन्न समय या भिन्न स्थानो पर विख्यात भी करती है विहार वर्धन एवं विस्थापन भी उसी प्रकार होता हैं गुरूजन आदि की बाधा प्रभृति का समाधान कर साहस दे कर वर्धन एवं अन्य के द्वारा रव्यापन करती है उनका प्रेम। प्रश्न हो सकती है। कि श्रीराधामाधव अप्राकृत नायक नायिका है। उनका प्रेम, लीला विहार, आदि स्वत: पूर्ण है , अत: विस्तार के लिए

सखियों की सहयोगिता की क्या आवश्यकता है? इसके उत्तर मे कहते है- सखियों के माध्यम हुए बिना प्रेमलीला आदि का प्रसारण अपूर्ण ही रह जाता है।।

" सखी बिना एई लीलार पुष्टि नाहि हय।
सखी लीला विस्तारिया सखी आस्वादन ।।

परस्पर को परस्पर के अनुराग मे डुबा कर सखी मंजरिया आनन्दित होती है। विशेषत: युगल की परम अन्तरंग मंजरीगण परस्पर के रूप ,गुण , माधुर्य आदि से दोनो ही के अंन्तर मे विपुल लिप्सा जागृत करती है । पारस्परिक प्रेम रस से दोनो को बांध देती है

कुछ स्लोको मे श्रीपाद को श्री युगल के मानस गुणो की स्फूर्ति प्राप्त हुई है। इस श्लोक मे कहते है - श्री कृष्ण के चित्त सागर मे श्रीराधा मकरी की तीह विहार करती है। श्रीपाद शुकमुनि ने कहा -

"रेमे तया स्वात्मरता: आत्मारामोहप्य - खण्डित"

श्री भगवान् आत्माराम और आप्ताकाम हाते हुए भी श्रीराधा के संग अखण्ड विहार करते है ।

" रात्रिदिन कुन्जक्रीडा करे राधा संगे ।
कैशोर वयस सफल कैल क्रीडा रंगे ।।

प्रश्न हो सकता है कि श्रीराधा के संग यदि श्री कृष्णा दिन रात अखण्ड विहार करते थे तो गोपीगण, माता, पिता, और सखा इत्यादि के संग लीला कब करते थे ? इस प्रश्न के उत्तर मे कहते है कि- उनके अन्तर मे श्रीराधा की अखण्ड स्मृति विराजती है, अप्राकृत नवीन मदन अखण्ड मादन रस की मूर्ति श्रीराधा को कभी भूल नहीं पाते। मदनमोहन के ध्यान की मूर्ति है श्रीराधा ,उन्हे भूलने का कोई उपाय नहीं है।।

उत्तर गोष्ठ है, स्वमिनी चन्द्र शालिकी पर है । सखियाँ दिखा रही है

" हे सुन्दरी! पश्य मिलाति वनमाली।

हृदय मे प्रवल पिपासा है। एकबार भुवनमोहन श्याम का मुख दर्शन करना चाहती है किन्तु लज्जा के कारण देख नहीं पा रही है। लज्जाशील स्वामिनी के मुख की क्या शोभा! लज्जा के निकट प्रार्थना कर रही है - बाम नेत्र के कोण को बस क्षण भर के लिए छोड़ देना। नयनो के कोण के संक्षिप्त

दर्शन! अपांग मोक्षण! क्या सुशोभन दृष्टि है। एक क्षण के दृष्टि विलासा ने न जाने कितने कुछ कह दिया था। श्यामसुन्दर की कितनी अपूर्ण सेवा है। श्रीपाद शुकमुकनि कहते हैं–

तत् सत्कृतिम समाधिगम्य विशेष गोष्ठम् (भागवत)। सारी रात इस सेवा का ही ध्यान। सम्पूर्ण विश्व के जो नित्यता है उन्हे नियंत्रित करता हे यह क्षाणिक दृष्टि विलासा है! श्री कृष्ण के पूर्वराग मे महीजन कितने ही भाव से श्यामसुन्दर की चित्त सिन्धु मकरी की कथा का वर्णन करते है

" नयान पुतलि राधा मोर। मन माझे राधिका उजारे।।
क्षितितले देखि राधामय। गगनेह राधिका उदय।।
राधामय भेल त्रिभुवन।। तवे आमि करिव केमन।।
कोथा सेई राधिका सुन्दरी। ना देखि धैरय हैतू नारि।।
ए यदुनन्दन मने जागे। कि नर करे नव अनुरागे।।
" कि हेरिलूँ अपरूप गौरी।
पैठल हिया माहाँ मोरि।।
" अहर्निशिने शयने, स्वपने आन ना हेरिये ,
अनूखन सोई धेयान।
ताकर पिरिति, कि रीति नाहि समूझिये ,
आकुल अथिर पराण।।

श्रीराधा भी उसी प्रकार श्री कृष्ण को हृदय रूप चन्द्र मण्डल के मध्य कुरंग के समान धारण करती है।" कृष्ण मयी कृष्ण जार अन्तरे बाहरे । जिनके अन्तर मे बाहर मे श्री कृष्ण सतत् लीला करते है । लीला करने के लिए या खेलने के लिए एसा सरस ,एसा मधुर चित्त–मन क्या वे अन्यत्र कर पायेगें ? अप्राकृत नवीन मदन मादन रस के सरोवर मे अविरत सुख – सुतरण करते है।

"भक्तरे हृदय कृष्णरे सतत् एवं भक्त भी उन्हें हृदय से जाने देना नहीं चाहते।"

" विसृजति हृदयम न यस्य साक्षाधरिरवशाभिहितोह प्यधौधनाशः।।
प्रणयरसनया घृतगिघ्रपद्मः स भवति भागवत प्रधान उक्तः।।

अर्थात् अनजाने मे भी जिसका नााम कीर्तन करने से अखिल पाप–राशि नष्ट हो जाती है, वे श्री हरि स्वंय जिसका हृदय त्याग नहीं करते एवं वे

(भक्त) भी प्रणय-रज्जू द्वारा उनके श्री चरण-युगल हृदय मे बांध कर रखते है, उन्हें ही उत्तम-भगवत् नााम दिया है किन्तु श्रीराधा के ह्रदय मे अवस्थान इस प्रकार है , यह अवस्थान विशेष है कहा गया है "हन्निशाकरकुरंगितकृष्णम्"

तात्पर्य यह है कि चन्द्र यदि निष्कलंकित होने क चेष्टा करे तो भी उसमे कलंक त्याग करने की सामर्थ्य नहीं है , उसी प्रकार श्रीमती भी श्री कृष्ण - कुरंग को हृदय चन्द्र से बाहर करने की चेष्टा करने पर विफल काम हो जाती हैं । श्रीपाद विदग्ध माधव नाटक मे श्रीराधा के पूर्वराग का वर्णन करते हुए लिखते हे । -

" प्रत्याहृत्य मुनिः क्षणम् विषयतो यस्मिनमनोधित्सते।।
वालासौ विषयेषु धित्सति ततः प्रत्याहरन्ति मनः।
यस्या स्फूर्ति लवाय हन्त हृदये योगी समुत्कण्ठते।
मुग्धेयम् किल पश्य तस्य हृदयान्निष्क्रन्तिमाकांक्षति।।

श्री पौर्णमासी नान्दीमुखी के प्रति कहती है:- हे नन्दीमुखी ! क्या आश्चर्य है- देखो, मुनिगण अपने मन को विर्ष्यो निवृत करकन के लिए क्षणकाल के लिए जिन श्री कृष्ण को प्रवेश कराने की इच्छा करते है, यह बाला (श्रीराधा) श्री कृष्ण से मन की इच्छा रही है। योगीगण हृदय मे जिसकी लेशमात्र स्फूर्ति के लिए न जाने कितने प्रयत्न करते है यह मुग्धा उन्हे ही ह्रदय से निष्क्रान्ता की अभिलाषा कर रही है। श्रीमती सखी के निकट कहती है-

" निशि दिशि सोमारी , सोमारि चित्त आकुल
उ गति आध आध पाय।
हठ करि मरमे , मरमे मझू पैठल
कह सखि कोन उपाय।।

और फिर श्रीराधा की अंग गंध से श्री कृष्ण का चित्त उन्मत हो जाता है । स्वयं अनुभव कर कहते है - " यद्यपि आमार गन्धे जगत सुगन्ध । मोर चित्त प्राण हरे राधा का यह एक विशेष गुण है । श्रीपाद उज्जवल नीलमणि ग्रन्थ मे दृष्टांत देते है :-

" वल्लीमण्डलपल्लवीलिभिरितः संगोपनायात्मानो ।
भा वृन्दावनचक्रपत्रवर्तिनि कृथा यत्नम् मूला माधवि ।।

भ्राम्यद्भिः स्वविरोधिभिः परिमलैरून्मादनैः सुचिताम् ।
कृष्णस्ताम् भ्रमराधिपः सखि धूवन घृतौ ध्रुवम घास्यति ।।

तुंगविद्या श्रीराधा को सम्बोधन पुर्वक कहती है –

" हे माधव ! वृन्दावन मे तुम सर्वप्रधाना हो , स्वयं को गोपाल करने की वृथा चेष्टा मत करो । लता मण्डली के पल्लवो से जो तुम निज अंग गोपानार्थ सत्न तो कर रही हो किन्तु उन्मादन जनक तुम्हारा गात्र परिमल ही तुम्हारे गोपन भाव के प्रति असहिष्णु अतिशय धुर्त है, निश्चय ही वह बलपूर्वक तुम्हे कम्पित कर पान कर लेगा। श्रीमती के रसोदगर मे श्रील ज्ञानदास कहते है –

" आमार अंगरे , वरण सौरभ
यखन ये दिगे पाय।
वाहू पसारिया , वाउल हइया
तखन से दिगे घाय ।।

आनन्द की ही उन्मादना है । श्रीमती के शब्द ,स्पर्श गन्ध आदि पंच विषय ही श्री कृष्ण की पंचेन्द्रियो मे रसोन्मादना जगाते है। ललित माधव नाटक मे वर्णित है

निधितामृत माधुरीपरिमलः कल्याणि बिम्बाधरो
वक्तृम पंकजसौरभम् तनुरियम् सौन्दर्ययसववै स्वभाक् ।
त्वामास्वादय ममेदिमिन्द्रियकुलम् राधे मुहुर्मोदते । ।

श्री कृष्ण श्रीराधा से कहते है – हे कल्याणि , बिम्ब फल के सदृश रक्तवर्ण तुम्हारे अधर अमृत की माधुरी एवुं परिमल के पराजित करते है । तुम्हारा वाक्य कोकिल ध्वनि का गर्व हरण करते है तुम्हारा अंग चंदन की अपेक्षा अधिक सूशीतल है और तुम्हारी यह देह सौन्दर्य का सर्वस्व सम्पद है या सर्व सौन्दर्य का आधार हैं । हे राधे ! तुम्हारा रूप– रस आदि आस्वादन कर मेरी इन्द्रियाँ पुनः पुनः हर्षित हो रही है । ।

श्री कृष्ण के अंग सौरभ से श्रीराधा का इन्द्रिय वर्ग क्षुब्ध हो जाता है । श्रीराधा भाव मे श्री मन् महाप्रभू ने श्री कृष्ण की श्री अुग गंध माधुरी आस्वादन कर जो रसोद्गार किया है भावराज्य मे वह सत्य ही अतुलनीय है–

“ कस्तूरिका नीलोत्पल यार सेई परिमल
ताहा जिनि कृष्ण अंगगन्ध ।
व्यापे चौदभुवने करे सर्व आकर्षणे
नारीगणेर आँख करे अन्ध ।।
साखि है ! कुष्ण गन्ध जगत माताय ।
नारीर नाशय पैसे सर्वकाल ताहा वैसे ।
कृष्ण पाशे धरि लइया याय।
नेत्र नाभि वदन करयुग चरण ।
एइ इष्ट पदम कृष्ण अंग ।।
कर्पूरलिप्त कमल तारे यैछे तरिमल
सेइ गन्ध अप्ट पद्म संगे ।
हिमकीलती चंदन ताहा करि घर्षण
ताहे अगुरू कुम्कुम कस्तूरी ।।
कर्पूरसने चर्च्चा अंग पूर्वक अंगेर गन्ध संगे ।
मिलि डाका येन कैल चूरि ।।
हरे नारीर तनु मन नासा करे घूर्णन
खासाय नीवि छूटाय केश बन्ध ।।
सेइ गन्धरे वस नासा सदा करे गन्धेर आसा ।।
कुभु पाय कभु नाहि पाय ।।
पाइले पिया पेट भरे तव पिंगों पिंगों करे
ना पाइले तृष्णाय मरि याय ।
मदनमोहनेर नाट पसारि गन्धेर हाट ।।
जगन्नारी ग्ग्रहक लो भाय
बिना मूल्य देय गन्ध गन्ध दिया करे अन्ध ।
घर याइते पथ नसहि पाय।।

श्री मन्महाप्रभू को प्रलाप एवं श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी पाद की लेखनी के माध्यम से श्रीराधा के श्री कृष्ण अंग गंध के निर्दोष आस्वादन मे गन्ध दिया करे अन्ध घर याइते पथ नाहि पाय। इा वाक्य मे

प्रेष्ठासौरभहृतेन्द्रियवर्गाम् अंश किस भाव से किस रूप से प्रकट हो रहा है यह सुधी भक्त जन स्वयं अनुभव करेंगे।

" कृष्णचित्त पारावारे रसरंगे खेला करे
मकरस्वरूप नरगौरी ।
श्रीमती राधार चित्त चन्द्रमण्डलेते नित्य ।
विहारिछे कुरंग श्री हरि ।।
राइ अंग परिमले कि जानि कि घरे वल
हरिचित्त उन्मत करय।
गोविन्देर अंग गंधे राधिकार नासारन्ध्रे
सर्वेन्द्रिय सदा क्षुब्ध हय ।। "

प्रेममूतिवरकार्तिकदेवी - कीर्तिगानमुखरीकृतवंशम् ।
विश्वनन्दनमुकुन्दसमज्ञा - वृन्दकीर्तनरसज्ञरसज्ञाम् ।।

अन्वयः -

प्रेममूर्तिवरकार्तिकदेवी'- कीर्तिगान- मुखरीकृतवंशम् (प्रेममूर्तिषू ललितादयाषु वरा श्रेष्ठा या कार्तिक देवी श्रीराधा तस्याः कीर्तिगाथाय मुखरीकृतो वंशो येन तम्) विश्वनन्दूमुकुन्दसमज्ञा - वृन्दाकीर्तनरसज्ञरसज्ञाम् (विश्वनन्दमय सवर्वाहलादकम् यन्मुकुन्दस्य समज्ञावृन्दम् कीतिकुलम " यशः कीर्ति : समज्ञा च इत्यमरः" तत्कीनरसम् जानाति रसज्ञा जिव्हा यस्यात्सम्

अनुवादः- हे श्री कृष्ण ! तुम वंशी द्वारा प्रेम मूर्ति ललिता आदि सखियों मे श्रेष्ठा कार्तिक देवी श्रीराधा कर गुणगान करते हो हे विश्वानन्द मुकुन्द के कीर्तिकल्पो के कीर्तन रस मे सुरसिका है तुम्हारी रसना ।

मकरंद व्याख्या ।

पारस्परिक यशोगान :-

श्री युगल माधुरी के रस मे डगमग कर रही है । श्रीपाद की चित्त - तरी । श्री श्रीराधामाधव के अनन्त रूप, गुण , माधुर्य के स्रोत मे स्वयं की देह को बहा कर वे डूब उतर रहे है । स्वरूपावेश मे युगल माधुरी का आस्वादन है । स्वरूपावेश ही साधन जीवन का श्रेष्ठतम् आकांक्षित सम्पद है । देहावेश मुझ जैसे जीव के मन को अभीष्ट चरणो से हिटाा देता है । स्वरूप का उत्थान नहीं है उसके संग कोई परिचय भी नहीं। दिवा निशि केवल जगत देह

देहिकादि को लिए ही मत्त है शूद्र जीव शक्ति प्रवल माया शक्ति के संग प्रतिद्वन्दिता नहीं कर सकती। इसके लिए स्वरूप शक्ति का उन्मेष चाहिये। इस लिए ही साधन भजन है। आचार्य का इस महावाणी के श्रवण–कीर्तन से स्वरूप शक्ति की कृपा प्राप्त होती है। साधक क्रमश: स्वयं को श्रीराधा का किंकरी के रूप मे पहचान पायेगा। विषय वासना तुच्छ हो जायेगी और श्री युगल की सेवा वासना ही सार हो जाएगी। शयन मे स्वप्न में ब्रजनिकुंज की सुषभा नयनों से सम्मुख फूट उठेगी। चक्षु कर्ण आादि इन्द्रियों से उनके रूप रस आादि का आभास होने लगेगा। उस भाव के आवेश मे ही होगा श्रीपाद की उत्कलिका का सुचारू आस्वादन।

इस श्लोक मे श्री श्रीराधामाधव की यश माधुरी का स्फूरण हो रहा है। कहते है– हे कृष्णा! कार्तिकाधिदेवी श्रीराधा के यशोगान से मुखरित है तुम्हारी मोहन वेणु ।श्रीराधा

"जगच्छेणीलसदयशा:" है अर्थात् जिनके यश से समग्र जगत व्याप्त रहता है।

" उत्फुल्लम किल कुवर्वती कुवलम देवेन्द्रपत्नीश्रुतो ।
कुन्दम निक्षिपती विरिन्चिगृहणी रसामौषधिहर्षिणी ।।
कर्णोतंस सुधामसुरत्नसकलम विद्रव्य भद्रांगि ! ते ।
लक्ष्मीमप्यधुना चकार चकिताम राधे यश: कौमुदी।। "

पौर्णमासी देवी कहती है "हे राधे तुम्हारी यश: कौमुदी का क्या अदभुद प्रभाव है। पृथ्वी आदि सप्तपाताल रूप कुमुद कुसुम को यह उत्फुल्लन करती है , देवेन्द्र पत्नी शचि देवी के कर्णो मे गिर कर यह कुन्द कुसुम का भ्रम जगाती है ब्रह्मा पत्नी सावित्री को रोममय औषधीय कर हर्ष विधान करती है। हे भद्राणि अधिक और क्या कहूँ , तुम्हारी यश: चंद्रिका द्वारा कर्ण भूषण में स्थित चन्द्रकांता मणि खण्ड को द्रवीभूत होते देख का वैकुण्ठ वासनी कमला देवी भी चकित हो जाती है "।

इसके द्वारा यह स्पष्ट होता है कि समग्र प्राकृत अप्राकृत विश्व श्री कृष्ण कान्ता शिरोमणि श्रीराधा की यशोगाथा से व्याप्त है भक्त की तो बात ही नहीं उनका तो कण्ठहार है श्रीराधारानी का यश:। श्रीपाद शुकमुनि ने भगवत के रास वर्णन मे समय श्रीमती की यशमाधुरी वर्णन मे मुखर होकर

भी प्रेमानन्द मे मूर्छित हो जाने के भय से उनका नाम उच्चारण नहीं कर पाया ।जो जितना बडा कृष्ण भक्त है, वह उतना ही बडा यशस्वी है । श्री मान महाप्रभू ने रामानन्द राय के निकट प्रश्न किया था – " कीर्तिगण मध्ये जीवेर कौन वड कीर्ति रामानन्द राय ने कहा

" कृष्ण प्रेम भक्ति वलि जार हय ख्याति "

अखिल ब्रहमाड के भक्त गणो के मध्स श्री कृष्ण के ब्रजभक्त गण ही प्रधान या श्रेष्ठ है उनमे भी फिर प्रेमाधिक्य के कारण मधुर रसवती ब्रज वालाओ के मिलन मेले मे वे कृष्णकान्ता शिरोमणि श्रीराधा की मुयसी प्रशंसा कर विश्व जगज मे धोषणा करती है कि उन सभी मे कृष्ण प्रियावली मुख्या वृषभानु नन्दिनी श्रीराधा ही सर्वश्रेठतम् है ।।

अनयाराधितो नूनम् भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्ने विहाय गोविन्द प्रीती यामनयद्रहः।।

रास मे अंतर्ध्यान होने के पश्चात श्री कृष्ण अन्वेषण तत्परा ब्रजसुन्दरीयों ने श्री कृष्ण के चरण चिन्हो के पास पसा श्रीराधा के पद चिन्ह दर्शन किए तब श्यामला आदि सूहृतपक्षागण ने ब्रजसुन्दरीयों से कहा – हे सखीगण ! यह जिनके पद चिन्ह देख रहे हो उन श्रीराधा ने ही सर्वदुखः हर्ता एवं भक्त के अभीष्ट दान मे समर्थ भगवान् के आराधना कर वशी भूत किया है इसलिए ही इनका नाम श्रीराधा है हम उस तनह आराधना नहीं कर पायी । इन्हौने आराधना से ही भगवान् को वशीभूत किया है तभी गोविन्द भी हम सभी अनुरागवतीयो को इस गंभीर आरण्य को छोडकर हमारे अगम्य स्थान पर उन्हें ले गए है । इनके भाग्य महिमा की कही तुलना नहीं । इस प्रकार प्रेम के राज्य मे जिसकी जितनी भक्ति एवं अनुभुति है वह उसी के अनुरूप प्रेममया का यशोगान करता है। किन्तु श्री गोविन्द स्वयं अपने विश्व मोहनकारी वेणु नाद से श्रीराधा का जो यशोगान करते है वह अतुलनीय है

वेणू माधुरी श्री कृष्ण का एक असाधारण गुण है । इस गुण से विश्वभुवन पागल हो जाता है । " त्रिजन्मानसाकर्षि मुरली कूलकुलजितः " शब्दब्रहमय वेणु । वह स्वर, ध्वनि वह गान , वह स्वरलाप भगवत राज्य का एक महावैभव है। मुरली के स्वर मे वेद मन्त्र ध्वनित होते है । वह अस्फूरट मधुरी है । नाद सर्वाकर्षण मन्त्र है । कामबीज का प्रस्फुलित कराने वाला है। वेणु

के प्रत्येक रन्ध्र मे अमृत लहरी है ! भावनुसार ही उनका आस्वादन होता है ! श्रृंगार रसमय मूर्ति श्री कृष्ण की वेणु ध्वनि से सर्वाधिक आकर्षण रमणीगणो को होता है ।

“ से धवनि चौदिके घाय अंड भेदि वैकुण्ठ जाय
वलै पैश जगतेर काणे ।
सभा मातोयाल करि वलातकारे आनि घरि
विशेषतः युवतीरगणे ।।
घवनि वड उद्यत पतिव्रताार भांगे व्रत
पतिलौक हैत टानि आने ।
वैकुण्ठरे लक्ष्मीगणे येइ करे आकर्षणे
तार आगे केवा गोपीगणे ।।

गोपीगणे के मघ्य भी मादनाख्य महाभगवती श्रीराधा मे आकर्षण की पराकाष्ठा है । राधा नाम लेकर वेणु बजाती है । वंशी से श्रीराधा नाम का गुण आदि गान कर श्रीराधा का चित्त हरण करते है। पूर्वराग दिशा मे वंशी का गान श्रवण कर पौर्णमासी देवी के निकट कहा था –

“ के ना बाँशी- बाय बडा कालिनी नई कुले ।
के ना बाँशी -बाय बडा ए गोष्ठ गोकुले ।।।
आकुल शरीर मोर वेयाकुल मन ।
बाँशीर शारदे मो आउलाइलो संधन।।
के ना वंशी बाय बडानि से ना कोन जना ।
दासी हआँ तार पाए निशिरो आपना ।।
के ना बाँशी बाय बडायि चित्तेर हरिषे ।
तार पाए बडानि मा कैला कौन दोषे ।।
आझर झरए मोर नयनेर पानी ।
बाँशीर शरदे बडायि हारायिलो पराणी । ।
आकुल करिते किवा आक्षार मन ।
बाजाए सूसर बाँशी नन्देर नन्दन ।।
पाखी पहाँ तार ठाँइ उडी पडी जाउ।

मोदिनी विदार देउ पसिआँ लुकाउ।।
वन पौडे आग वडायि जगतने जानी।
मोर मन पौडे यूहू कुम्भारेर पणी । ।
वसाली शिरे वन्दी गाइल चण्डीदासे ।।

श्रीराधा के यशोगान से राधा मे क्या आकर्षण जगता है । यह वंशी का सूर , उल्लखित महाजन पद उसका ज्वलंत साक्ष्य देते है

श्रीपाद कहते है – हे राधिके ! तुम्हारी रसना मुकुंद के कीर्तिकलाप कीर्तनरस मे रसिका है । कृष्णनाम गुण यशः अवसंत काणे । कृष्ण नाम गुण यशः प्रवाह वचने । मुकुंद का अर्थ हौ – जिसके मुख पर कुंद कुसुम के समान शुभ्र मुस्कान है । इससे श्री कृष्ण के यश की शुभता भी सुचित होती है । श्रीपाद श्री कृष्ण के कीर्तिमान गुण का दृष्टांत लिखते है ।

“भीता रूद्रम त्यजति गिरिजा श्यामामप्रेक्ष्य कण्ठयम् ।
शूभ्रम दृष्टवा क्षिपति वसनम् विस्मितो नील वासाः ।।
क्षीरम मत्त्वा श्रपयति यतीनीरमांभीरिकोत्का ।
गीते दामोदर! यशसि ते वीणया नारदेय ।। ”

हे दामोदर , नारद वीण वादन कर तुम्हारा यशोगान करते है तब रूद्र का कण्ठ नीलवर्ण न देखकर पार्वती उनका परित्याग कर देती है । बलदेव अपने नीलाम्बर को शुभ्रु हुआ देख उसका परित्याग कर देती है , गोपियाँ दुग्ध समझकर उत्कण्ठा से भर कर यमुना जल का ही आवर्तन करने लगती है उसी मुकुंद रस की सुरसिका है श्रीराधा की जिहवा । कभी भी यश कीर्तन का त्याग नहीं कर पाती । भ्रमर गीत मे स्वयं ही करती है –

“ दुस्त्यजस्तत् कथार्थ :”

भ्रमर गीत मे श्रीमती जी ने माना भांगिमा मे श्री कृष्ण के विविध दोषो का उद्धार किया था । भ्रमर जैसे कहता है – हे इश्वरी ,उसमे यदि इतने दोष है । तो जब से यहाँ आया हूँ तब से उसकी कथाओं से भिन्न अन्य कथा तो आपने कही ही नहीं ! दोषीजन का जो दोष कीर्तन करता है वह क्या बडा भना मनुष्य होता है ? उसेके उत्तर मे कहती है उसकी कथा रूप संपत्ति का त्याग करने में असमर्थ है । सब त्याग किया जा सकता है यहाँ तक के तेरे बन्धू का भी त्याग किया जा सकता है । किन्तू उसकी कथा का त्याग हम

नहीं कर सकते । इस तुरन्त विरह मे हम उनकी कथा के अबलम्बन से ही वचे है । यदि उसकी कथा मे एक मुहुर्त का भी विराम हुआ तो इस देह मे प्राण नहीं रह पाएंगे।।

या फिर मुकुन्द पद का और एक रहस्यमय अर्थ है , श्रीराधा के जो बंधन है – उनके जो मुक्तिदाता है । श्रीमती केश बंधन कुन्चलित बुधन नीवि बंधन अदि को जो मुक्त करते है वे ही मुकुन्द है इन्हीं मुकुन्द की रहस्यमय निकुंन्ज यशेराशि को सखियों के समक्ष रसोदगार कीर्तन मे अति सुरसिका है श्रीराधा की जिहवा

" रूप हेरि लोचन तिरपति मेल ।
गुण शुनि श्रवण सफल मे गैल ।।
मनक मनोरथ मनमथ गेल ।
चन्दन चाँदे चित्त हरि नेल ।।
ए सखि ए सखि आजूक रंग।
सिंचित सुधाय भेल अंग ।।
आरति गुरूया पिरिति नह थोर
लाख मुखे कहिते ना पाइये उर ।।

श्री नारद व्यास आदि जिस प्रकार श्री कृष्ण का यश: कीर्तन करते है । उसकी अपेक्षा श्रीराधा के यश कीर्तन का वैशिष्ट यह है कि वे मान भांगिमाओं सहित " यदनुचरितलीला " इत्यादि भ्रमर गीत के श्लोको मे तिरस्कार के माध्यम से श्री कृष्ण यश की जो महिमा प्रकाशित की है वह वहुत उच्च कोटि की है ।

परेश अवश तनु वेश निरझनप।
घामल सव तनु उपजल कम्प।।
सरस सम्भाषण हास हरिपाटी ।
ताम्वुर अधेर अधेर लेई बाँटि ।।
करि कर भाँति कयल कत रंग ।
ज्ञान कहे दुहूँ तनु आध आध अंग।। "

श्रीराधा के भाव मे श्री गौरसुन्दर भी निखदि श्री कृष्ण के गुण यशः श्रवण – कीर्तन रस मे डूबे रहते है । " आर कार्यो प्रभूर नाहिक अपसर । नाम गुण बलेन शुनेन निरन्तर ।।

इस गौर लीला से ही श्रीराधाकृष्ण यश के अनन्त झरनो का मुख खुल गया है । गौडिया वैष्णवगणो का भण्डार श्रीराधाकृष्ण यश से परम समृध हो जाते है

" प्रेममूर्ति वरा गोरी कार्तिकेर अधीश्वरी
कृष्णप्रिया कृष्णगत प्राण ।
ब्रजेन्द्र कुल चन्द्रमा वंशी नादे सर्वात्तमा
राधिकार कीर्ति करे गान ।।
मधुर श्री वृन्दावने वरज ललनागणे ।
सीमान्त मंजरी श्री राधिका ।
याँहार रसना सदा हरिगुण कीर्ति गाथा ।
कीर्तन रसेते सुरसिका ।।

" नयन कमल माधुरी निरूद्ध ब्रजनवयौवतमौलिहृन्मरालम् ।
ब्रजपतिसुतचित्तमीरराज ग्रहणपटिष्ठविलोचनान्त- जालाम् ।।

अन्वयः नयनकमलमाधुरी – निरूद्ध – ब्रजयौवत मौलिहृन्मालम् (नयनकमलमाधुर्यता निरूद्धो वशीकृतो ब्रजयौवतमौलेः श्रीराधाया हृन्मालः चित्तहुसो येन तम्) ब्रजपतिसुत – चित्तमीनराज ग्रहण पटिष्ठविलोचनान्जालम् (ब्रज पतिसुदस्य चित्तमेव मीनराजः तस्य ग्रहणे पटिष्ठम अतिनिपुणम् विलोचनान्तजालम् यस्यास्ताम्।।

अनुवाद :– हे श्री कुष्ण ! तुम्हारे नयन कमलो की माधुरी द्वारा ब्रजरमणीय प्रधाना श्रीराधा का चित्तहंश निरूद्ध हो गया हे श्री राधिके ! तुम्हारी कटाक्ष रूप जाल मे ब्रजेन्द्रनन्दन श्री कृष्ण का चित्त रूप मीनराज आबद्ध हो गया ।

मकरंद व्याख्या :–

नयन माधुरी :– श्रीराधा किंकरीगण सेवारस की ही मूर्ति है। श्री श्रीराधामाधव की सबसे बड़ी सेवा क्या है यह जिस प्रकार किंकरीया जानती है उस प्रकार अन्य कोई नहीं जानता। परस्पर के माधुर्य मे दोनो को डुबा कर वे सेवा करती हैं। मिलने के अवसर पे श्री श्रीराधामाधव के रूप, गुण, लीला

आदि के माधुर्य की छवि हृदय पटल पर अंकित कर रखती है । भक्ति ही उन्हे सब समझा देती है । श्री युगल के मन का पर्दा उनके निकट खुल जाता है। कुछ भी गोपन नहीं रहता ।।

श्रीपाद सिद्धस्वरूप की स्फूर्ति मे कहते है – हे श्री कृष्ण! तुम्हारे नयन कमलो की माधुरी द्वारा श्रीराधा का चित्त मराल निरूद्ध हो गया है। हंस कमल की मृणाल का आस्वादन करता है । प्रफुल्लित कमल के दर्शन उसकी मृणाल के आस्वादन के लिए हंस मे विपुल लालसा जगती है । तद्रूप श्री कृष्ण के असीम सुषमामय नयन कमल दर्शन कर श्री कृष्ण मिलनाकाक्षा से श्रीराधा का चित्त अधीर हो उठता है । तब सखी से कहती है :–

" रूपलागि आँखि झूरे गुणे मन भोर ।
प्रति अंग लागि प्रिति अंग कादे मोर।।
हियार परश लागि हिया मोर कांदे ।
पराण पुतिल मोर थिर नाहि बांधे ।।

अनन्त मधुर श्री कृष्ण के नयन सर्वापेक्षा सुन्दर है। और फिर उस पर सत सत मधुर विलास! जैसे मदन का मोहल वाण! तनल नयाने, तेरछि चाहिने, विषम कुसुमवाण श्रीमती का चित्त मन अधीर हो उठता है । सखी के निकट कहती है।

"रसभरे मन्थन लहू लहू चाहिन
कि दिठि चूलाउनी भाँति ।
गरलि माखि हिये शेल की हालन
जर जर करू दिनराति ।।
सजनि इथे लागि काँदये पराय।
कत कत जनम कलप फले मिलल।
दिठि मारि ना हेलुल कान ।।
" निशि दिशि सोमारी सोमारि चित्त आकुल
उ गति आध आध पाय ।
हठ करि मरमे मरमे मझू पैठल ।
कह सखि कौन उपाय

श्री कृष्ण नयनो की माधुरी वर्णनो मे गोविन्द दास भी अति सुदक्ष है –

" ढल ढल सजल जलदु तनु शोहन ।
मोहल आभ्ररण साज ।
अरूण नयन गति बिजूरी चमक जिति
दगघल कुलावती लाज ।।
सजनि ! यव धरि पेखुल कान !
तव धरि जंगभरि भरज कुसुम सर ।
नयने ना हरिये यान ।।
मझ मुख दरशि विहसि तनु मोडाइ ।
विगलित मोहन वंश।
ना जानिये कोन मनोरथे आकुल ।
किशलय दले करू दंश ।।
अनये से मझूमन ज्वलितहि अनुखन ।
दौलत चपल पराण ।।
गोविन्द दास तिछइ आशोयशान ।।
अबहू ना मिलने कान ।। "

इस विषय मे ज्ञानादास अति सुस्पट है । अल्प शब्द मे ही नयनो का असाधारण सामर्थ व्यक्त किये है –

" किबा से भुरूर भंग भुषणेर भुषण अंग ।
काम मोहे नयानेर कोणे ।
हासि हासि कथा कह पराण काडिया लय ।
भूलायते कत रंग जाने ।। "

श्रीपाद ने पदावली ग्रंन्थ मे श्री कृष्ण के कोटि कन्दर्प ललित मनोहर श्री मुख पर आकर्षण विश्रान्त नयनो की असीम सुषमा का वर्णन किया है –

" आरक्तदीर्धनयनो नयनाभिरामः कन्दर्पकोटिललितम् – वपुरादधानः।

भुयात् स मेहदय हृदयामबूरूहाधिवर्ती – वृन्दाटवी नगर – नागर चक्रवर्ती।।

मदन रसावेश से इषत आरक्त आर्कण – विश्रान्त दीर्ध नयनो से सुशोभित , नयनाभिराम , कोटि काटि कन्दर्पो की अपेक्षा अधिक सूललित उेहधारी

वृन्दावन नगर के नागेन्द्र शिरोमणि श्री श्याम सुन्दर अभी मेरे हृदय कमल मे आविभूत। हों।

" अनंगरसचातुरी -चपल- चारूनेत्रांचल -।
श्यचलन्मकरकुण्डल - स्फूरितकान्ति गण्डस्थल :।।
ब्रजोल्लसित - नागरीनिकरन- रासलस्योत्सुकः
स मे मानसे स्फूतिु कोहानि गोपालकः ।। "

" कन्दर्प रस के चातुर्य विशिष्ट जिसके मनोहर नेत्रांचल अतिशय चपल है , जिसके गण्डस्थल स्फूरति चंचल मकराकृति कुण्डलो की शोभा से दीप्तिमान है , जो ब्रज की आनन्दमयी नागरियो के संग रासनृत्य के लिए समुत्सुक है। गोपाल मेरे चित्त मे स्फूरति है –जैसे श्याम वैसे ही राधा। नयन सुषमा मे कोई कम नहीं। श्रीराधा के कटाक्ष रूपी जाल मे ब्रजेन्द्रनन्दन का चित्त रूपी मीन राज आबद्ध हो जाता हैं। श्री कृष्ण का चित्त केवल मीन नहीं वे मीन राज है। उसे जाल मे आबद्ध कर लेना कोई सहज बात नहीं है। रूकमणि हरण के लिए आये श्री कृष्ण गिद पर विराजमान थे। रूकमणी देवी ब्राह्मण कुमारीयों से विशिष्ट हो दुर्गा पूजा के लिए देवी मन्दिर जा रही है। गरूड रूप माधुर्य पर विस्मित हो श्री कृष्ण को दिखा कर कहने लगी – प्रभू यह देखो ! राज कन्या के रूप से नगर आलोकित हो गया। श्री कृष्ण ने कहा – " भवतू कितेमेन रूपमात्रेण न हार्यो करिः। गरूड ! स्मरण रखो , मेरा ही नाम हरि है एवं मेरा रूप विश्वमनोहर है । मेरे समक्ष यह रूप कर बात मत करो। केवल मात्र रूप से मेरे मन को हरण करने मे समक्ष नहीं है। उसमे कितना प्रेम है वह बात कहो। श्रीराधारानी के नयनो मे मदनारत्य प्रेम विराजता है, तभी अप्राकृत नवीन मदन उस नयन सुषमा से दिशाहरा हो जाता है। पूर्व राग दशा मे चंचल नयनो के इषत् दृष्टिपात से ही विहल हो जाती है। सखी के निकट मर्म की बात कहते है।

" सजनि! अपरूप पेखूल वाला ।
हिमकर मदन मिलित मुखमण्ड
ता पर जलधर माला ।।
चंचल नयने हेरि मुझे सून्दरी ।
मुचुकायइ फिरि गेल।

तैखने मरमे मदन ज्वर उपजल ।
जीपइते संशय भेल ।।
अहिनिते शयने स्वपने आन ना हेरिये ।
अनुखइ सोइ ध्यान ।
ताकर पिरिति कि रीति नाहि समुझिये ।
आकुल पथिर पराण ।।
मरकम वेदन तोहे परकाशल ।
तूहूँ अति चतुर सुजान।।
सो पुन मधुर मूरति दरशायवि
ए राधावल्लभ गान।। "

श्री विद्यापति ठाकुर की श्रीमती की नयन सुषमा वर्णन शक्ति असाधारण है–

" यहाँ यहाँ नयन विकाश । ताँह कमल परकाश ।।
यहाँ लहू हास संचार । ताँहि ताँहि अमिया विथार ।।
यहाँ यहाँ कुटिल कटार । ताँहि मदन शर लाख ।।
हेरइते सो धनि थोर । अव तिन भुवन अगोर ।
पुन किये दरशन पाव। तव मोहे इह दुख याव।।
विद्यापति कह जानि। तुया गुणे देयर अनि।।

कविगण श्रीमती नयनों का कमल ,मीन, चकोर, मतस्य, आदि के संग दृष्टांग देते है। वस्तुतः वे नयन अतुलनीय है महाभाव के नेत्रो की प्रापंचिक वस्तुओं के संग तुलना करना क्या संभव है। श्रील कविराज गोस्वामी पाद जी लिखते है।

"नयनयुगविधाने राधिकाया विधत्राा।
तगति मधुरसाराः संचिताः सदगुणा थे।
भुवि पतित - तदशैस्मेन सृष्टान्यसारै।
भृंमरमृगचकोराम्भेजनीलोत्पलालि।।"

" विधाता ने श्रीराधा के नेत्र युगल निर्माण करने के लिए विश्व की मधुर, प्रसस्त, सार गुण समुह का संचय किया है , और फिर उसका भी सार भ्राग ग्रहण कर श्रीराधा के नयनो का निर्माण किया और फिर जो असार अंश

भुमि पर गिर गया उसके द्वारा भ्रमर ,मृग नयन , चकोर , कमल, मीन एवं उत्पल आदि की रचना की है। "

श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती पाद जी लिखते है :-

" श्री गोपेन्द्रकुमारमोहन - महाविदये स्फूरन्माधुरी ।
सारस्फार- रसाम्बूरशि - सहज प्रस्यन्दि- नेत्रांचले !
कारूण्यार्दृकटाक्ष भंगि - मधुरस्मेरानाम्भोरूहे ।
हा हा स्वामिनी राधिके! मयि कृपादृष्टिम मनाग निक्षिप।।"

" हे नन्दनन्दन को मोहित करने वाली महाविद्यास्वरूपे! हे स्फूरित माधुरीसार विस्तारी रस समुद्र की सहज प्रस्यन्दि नेत्रांचल! हे करूण्याद्र कटाक्ष भंगि! हे मधुर हास्य मण्डित वदन कमल । हा स्वामिनी । हा राधिके ! तुम मेरे प्रति इषद कृपा दृष्टि निरपेक्ष करो। "

" कृष्ण नेत्र कमलेते   के माधुरी आछे ताते
सेइ मकरंद पान करे ।
ब्रजवाला सीमन्तिनी   राधार चित्त - हंसिनी ।
निरूद्ध हइल चिरतरे।।
प्रियार कटाक्ष जाले   अमृत तरंग खेले
भांगिमा दर्शन हैया मुग्ध ।।
ब्रजपति नन्दसुत   नय युवराज चित्त ।
मीनराज हइल आवद्ध।।

" गोपेन्द्रमित्रतनयाध्रुवधैर्यसिन्धु।
पानक्रियाकलससम्भववेणुनादम्।।
विद्यामहिष्ठमहतीमहनीयगान।
सम्मोहिताकिलविमोहनहृतकुरंगाम ।।

अन्वय: गोपेन्द्रमित्रतनया ध्रवधैयेसिन्धु- पानक्रिया-कलससम्भव-वेणुनादम (गोपेन्द्रमित्रस्य वृषभानोतस्यतनया श्रीराधा तस्या ध्रवो यो धैर्ययसिन्धुस्तस्या पानक्रियायाम् कलससम्भवोह गस्तयो वेणुनादो यस्य तम्) विद्याम हिष्ठ महतीमहनीयगान सम्मोहिताखिल- विमाहनहृतकुरंगम् (विद्यास महिष्ठाया: श्रेष्ठाया: महत्या वीणाया : यन्महनीयम् अर्चनीयम गनम् तेन सम्मोहितोहखिलविमोहनस्य कृष्णस्य हृतकुरंगश्चित्तहरणो यया ताम्) ।

अनुवाद :- हे श्री कृष्ण ! तुम्हारा वंशीनाद रूप अगस्य मुनि वृषभानु सुता श्रीराधा के र्धयरूपी असीम समुद्र का पान कर लेता है, हे श्री राधिके ! तुम भी वीणा संगीत द्वारा विश्व विमोहक श्री कृष्ण के चित्त कुरंग को विमोहित कर लेती हो।

मकरंदकणा व्याख्या । वेणु एवं वीणा माधुरी :- आचार्यपादगण युगल माधुरी का आस्वादन भी करते है एवं प्रचार भी करते है। निज अनुभव कोई व्यक्त नहीं करता किन्तु ये आचार्य अपनी अनुभुति को ग्रंथ रूप मे गूंथ कर रख गए है । उनकी कृपा से ही आस्वादन होगा । उनकी रचित ग्रंथावली के श्रवण कीर्तन से उनकी करूणा उतर आयेगी। श्रीरूप मंजरी श्रीराधा की परम अंतरंगाा दासी है। श्रीराधा के रूप की ही मंजरी है। श्री गौरांग के संग मंजरी भाव साधना के रहस्य प्रचार करने के लिए श्रीरूप गोस्वामी के रूप मे उतर कर आई है। उनके ग्रंथ का प्रत्येक अक्षर श्री श्रीराधामाधव के माधुर्यरस से भरपूर है। इस श्लोक मे श्री कृष्ण की वंशी एवं श्रीराधा की वीणा माधुरी से पारस्परिक रसोन्मादन का वर्णन कर रहे है।

ब्रज के असाधारण माधुर्य चातुष्टय मे अन्यतम है वेणु माधुर्य है। प्रेम के द्वारा ही श्री कृष्ण माधुरी का वर्णन किया जा सकता है। "कृष्णमाधुर्ययस्य प्रेमैकस्वादत्वम् " (श्री जीव पाद) और फिर प्रेम के परिणाम जाति के अनुरूप कृष्ण माधुर्य के आस्वादन मे तारतम्य रहता है , सभी प्रेमिका को एक समान आस्वादन नहीं रहता होता। "आमार माधुर्य नित्य नव नव हय। स्व स्व प्रेम अनुरूप भक्त आस्वादय।।" श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीपाद इस नयार की टीका मे लिखते है - (अमयभाव: नाहि वस्तु सम्भाव एवं तदग्रहणे कारणम् किन्तु तत्र इन्द्रियायम शक्ति: सा च कार्येकसमधिगम्या यथाकार्यम् कल्पते। अत: यस्य यावदि न्द्रिशक्ति: स तावदेव वस्तु गृहपति न तू सवर्वामानमिन्द्रियश क्तेरसमत्वादिति यथा नथैव प्रत्यक्षीभूतस्य मन्माधुर्यस्ते सम्भावो न तदास्वादने कारणम् किन्तु प्रैमेव, तन्तु मन्माधुर्या दयनुभवकार्यैकगम्यम् यथाकार्यम् कल्पते। अत: यस्य यावान प्रेमा स भावान मन्माधुयमास्वादयति न तू सवैव समानमं।तथा सति मन्माधुग्रसमग्रस्वादन कार्ययसमधिगम्यामग्रेध प्रेम्ना एका श्री राधिका मन्माधुर्यम् समग्रमास्वदयति अन्ये तु ना तदादभवेत तदा तस्या तदव्त्तादास्वादनम् भवककदिति न वाच्यम्।

यत: यथाहमेकम एवं स्वयं भगवान् श्री कृष्ण: न त्वन्या: कश्चित मत्तूल्यस्तरथा एका एवं स्वरूप शक्ति: श्री राधिका नतू तत्तूल्योहन्य: कश्चित: भवेत् यस्तदवनम् मन्माधुर्यम समग्रमास्वादेत्।।

वस्तु का अस्तित्व ही वस्तु ग्रहण का कारण नहीं। अर्थात् चक्षुओ के समग्र रहने से मात्र से ही उसे ग्रहण किया जा सकता है एसा नियम नहीं है। बल्कि इन्द्रिय शक्ति ही वस्तु ग्रहण का कारण है। दूसरी ओर इन्द्रिय शक्ति है या नहीं यह भी वस्तु ग्रहण के द्वारा ही जाना जाता है यही इन्द्रिय शक्ति जिसमे जिस परिमाण मे है वही उसी परिमाण मे वस्तु ग्रहण कर पाता है। दृष्टिहीन व्यक्ति के सम्मुख रखने पर भी वह उसे ग्रहण नहीं कर पाता है। उसी प्रकार माधुर्य चक्षुओ के निकट उपलब्ध होने पर भी सभी उसका आस्वादन कर पाये यह नहीं कहा जा सकता। मेरे प्रति प्रेम ही मेरे माधुर्य ग्रहण का कारण है। प्रेम के बिना किसी उपाय से मेरा माधुर्य आस्वादन नहीं किया जा सकता। और फिर उसमे प्रेम के तारतम्य अनुसार ही मेरे माधुर्य ग्रहण के भी तारतम्य को स्वीकार करना होगा। प्रेम है या नहीं यदि है तो किस परिणाम मे है यह भी मेरे माधुर्य ग्रहण द्वारा ही अनुभव होता है । जिस प्रेम द्वारा मेरा अनन्त माधुर्य आस्वादन होता है वह प्रेम भी अनन्त है कारण असीम प्रेम से ही मेरे असीम प्रेम का आस्वादन होता है सीमित प्रेम द्वारा वह कभी भी सम्भव नहीं । राधाप्रेम अनन्द एवं असीम है सो मात्र उससे ही मेरे असीम माधुर्य का आस्वादन सम्भव है यदि कोई कहे साधन के बल से कोई श्रीराधा के समान प्रेम अर्जन कर पाये तो राधा की तरह ही उसे भी सम्पुर्ण माधुर्य का आस्वादन क्यो नहीं होगा ? इसका उत्तर यह है कि जैसा मे एक भगवान् एक ही हूँ मुझ जैसा कोई अन्य नहीं हो सकता। अत: श्रीराधा के समान मेरे समग्र माधुर्य का आस्वादन किसी अन्य के पक्ष मे सम्भव नहीं। अतएव वंशी–माधुरी का सर्वाधिक आस्वादन एवं आकर्षण श्रीराधा को ही होता है।

यशोमती शुने वाँशी ननी दे मा नन्दरानी।
पिता नन्द शुने वाँशी एइ ये वाघा आनि॥
सखागण शुने वांशी चल गोष्ठे याई।
कमलिनी शुने वाँशी वाहिर हउ राई॥ (महाजन)

जहाँ प्रेम विद्यमान है वहीं धैर्य–गम्भीर्य आदि निखिल सद्‌गुणों का आवास है। श्रीराधा में अखण्ड प्रेम है, अत: वे आसीम समुद्र के समान धैर्य गाम्भीर्यवती है। अगस्त्य मुनि ने जेसे गण्डूष में सप्त समुद्रों का जल पान कर लिया था, उसी प्रकार श्रीकृष्ण का वंशीनाद रूपी अगस्त्य मुनि श्रीराधा के धैर्य रूप अति गमभीर समुद्र का पान कर लेता है। जिस दिन प्रथम बार वंशी श्रवण किया था, उसी दिन ही धैर्य विलुप्त हो गया था, वह वंशी–रव है या अन्य कोई धैर्य–विध्वंसकारी मोहन मन्त्र यह समझ ही नहीं पाई। ललिता से कहती है–

कदम्वेर वन हैते किवा शब्द आचम्बिते
आसिया पसिल मोर काने।
अमृत निछिया फेलि कि माधुर्य-पदावली
ना जानि केमन करे प्राणे॥
सखि हे! निश्चय करिया कहि तोरे।
हा हा कुलांगना-मन ग्रहिवारे धैर्यगण
याहे हेन दशा कैल मोरे॥
शुनिया ललिता कहे- अन्य कोन शब्द नहे-
मोहन मुरली धवनि एह।
से शब्द शुनिया केने हैला तूमि विमोहने
रह निज चित्ते धरि थेह॥
राई कहे-केवा हेन मुरली वाजार येन
विषामृते एकत्र करिया।
जल नहे हिमे जनू काँपाइछे सव तनू
प्रति तनु शीतल करिया॥
अस्त्र नहे मने फूटे काटारिते येन काटे
छेदन ना करे हिया मोर।
ताप नहे उष्ण अति पोडाये आमार मति
विचारिते ना पाइये उर॥
एतेक कहिते घनी उद्वेग वडिल जानि
नारे चित्ते प्रवोध करिते।

कहे शुन आरे सखि　　　　　　तूमि मिथ्या वैले देखि
मुरलीर नहे एइ रीते॥
कोन सुनागर एई　　　　　　महामन्त्र पढे सेइ
हरिते आमार धैर्य यत।
देखिया एसव रीत　　　　　　चमक लागल चित्त
दास यदुनन्दनेर मत॥

श्रील कवि कर्णपूर ने भी लिखा है कि मुरलीरव ब्रजसुन्दरीगण की धैर्यनाशक कोई अभिचार-मन्त्र विशेष की तरह महा शक्तिशाली है-

"स हरिमुरलिकाया निःस्वनोह भूद्वधूनाम्
श्रवणसविघचारी मन्मथोन्माथकारी।
अविचलकुशशीलाचारचर्ययाभिचारो
घृतिविघटनतन्त्रः कोहपि मन्त्रः स्वतन्त्रः॥"

(आनन्द वृन्दावन चम्पूः)

अर्थात् श्रीकृष्ण की मुरली ध्वनि श्रीराधा आदि ब्रज सुन्दरीगण के श्रवणों के सन्निधान में प्रसारित हुई एवं उनके हृदय में कन्दर्प क्षोभ उत्पन्न किया। यह ध्वनि धैर्य च्युतिकारक एवं सम्पूर्ण कुल, शील, स्वतन्त्र मन्त्र के रूप में उपस्थित हुई। कलियुग पावनावतार श्रीमन् महाप्रभु ने श्रीराधाभाव में वंशी की धैर्य नाशक शक्ति का उल्लेख करते हुए प्रलाप किया है-

आमरा धर्म्मभय करि　　　　　　रहि यदि धैर्य धरि
तवे आमाय करे विडम्बन॥
नीवि खसाय गुरु आगे　　　　　　लज्जा धर्म कराय त्यागे
केशे घरि येन लैया याय।
आनि करे तोमार दासी　　　　　　शुनि लोके करे हासि
एइ मत नारीरे नाचाय॥
शुष्कवाँशेर काढिखान　　　　　　एत करे अपमान
एइ दशा करिल गोसाई।
ना सहि कि करिते पारि　　　　　　ताहे रहि मौन धरि
चोरार माके डाकि काँन्दिते नाइ॥" (चै०च०)

धैर्य धारण करना ही जैसे अन्याय है, कारण धैर्य धारण करने की चेष्टा करना ही विडम्बना मात्र हैं तब गुरुजनों के सम्मुख ही नीति बन्धन भ्रंश (टूट) जाता है, लज्जा धर्म आदि त्याग करा यह केशाकर्षण पूर्वक कृष्ण के निकट लाकर चिरकाल के लिए उसकी दासी बना देती है। एक शुष्क बाँस का टुकड़ा, उसके द्वारा ऐसी लांछना, ऐसा अपमान यह क्या सहन किया जा सकता है? किन्तु सहन करने के अतिरिक्त अन्य उपाय भी नहीं। ठीक जैसे चोर की माँ के जैसी अवस्था।

श्रीपाद कहते हैं-हे राधे! तुम भी उसी तरह वीणा संगीत द्वारा विश्व-विमोहन श्रीकृष्ण के चित्त-कुरंग को विमोहित करती हो। वीणावादन संगीत रासलास्य विशारदा (स्तवावली) वीणा वादन, संगीत एवं रास नृत्य में जो सुनिपुणा है। रास हो रहा है। श्रीकृष्ण की वंशी एवं श्रीमती की वीणा बज रही है। भुवन मोहनकारी वंशी सुर के माधुर्य को भी फीका कर रही है वीणा-माधुरी। प्रत्येक झंकार श्याम नागर के मन के ऊपर। चम्पक कलिका को लज्जाने वाली रत्न-अंगुलिकाओं से सुशोभित श्रीमति की अगुलियों का क्या मधुर संचालन है। विश्व विमोहन श्रीकृष्ण के चित्त-कुरंग को विमोहित करता है वीणा का सुर! वंशी को रखकर निविष्ट मन से श्रीमती की वीणा का गान श्रवण कर रहे हैं वीणा मधुर्य पर आत्महारा है। व्याघ के गान पर मुग्ध कुरंग आत्महारा हो व्याघ की ही और अग्रसर हो प्राण हार बैठता है। श्रीमती के वीणा माधुर्य से श्रीकृष्ण का चित्त भी उसी प्रकार आत्महारा हो गया है। प्रेममयी का सभी कुछ श्रीकृष्ण प्रेममय है, तभी श्रीकृष्ण की ऐसी मुग्धता है।

वृषभानु तनयार, महाधैर्य पारावार,
विश्वे तार के जाने संधान।
श्यामेर मुरली-ध्वनि येमत अगस्त्यमुनि,
नि:शेषेते सब करे पान॥
अमृत निछिया फेलि, कि माधुर्य पदावली,
श्रीराधार वीणार संगीत।
विश्वविमोहनकारी, श्रीकृष्णेरउ चमत्कारी,
(ताँर) चित्त-मृग हय विमोहित॥13॥

क्वाप्यानुषंगिकतयोदितराधिकाख्या,-

विस्मारिताखिलविलासकलाकलापम्।
कृष्णेतिवर्णयुगलश्रवणानुबन्ध,-
प्रादुर्भवज्जडिमडम्वरसवीतांगीम्॥14॥

अन्वयः क्वाप्यानुषंगिकतयोदित राधिकाख्या-विस्मारिताखिल-विलासकलाकलापम् (क्वापि समये आनुषंगिकतया उदितया उच्चारितया राधिकाख्यया विस्मारिता अखिलानाम् विलासकलानाम् कलापाः समूहा यस्य तम्), कृष्णेति वर्ण-युगलश्रवणानुबन्ध प्रादुर्भववज्जडिमडम्वरसम्वृतांगीम् ('कृष्ण' इत्यस्य वर्णयुगलस्य सः श्रवणानुबन्धः तेन प्रादुर्भवन यो जडिमडम्वरो जाऽयविस्तारः तेन सम्वृतानि व्याप्तानि अंगानि यस्याः ताम्)।

अनुवादः हे श्रीकृष्ण! तुम कभी भी प्रसंगवश श्रीराधानाम श्रवण करते ही तत्क्षणात् विलासादि समस्त कार्य भूल जाते हो। हे श्रीराधिके! 'कृष्ण' यह वर्ण-द्वय श्रवण मात्र से ही तुम्हारा श्रीअंग जडता आदि सात्विक भावों से व्याप्त हो जाता है।

मकरंदकणा व्याख्या

श्रीयुगल-नामरसः

(14) आस्वादन के आसन पर विराजमान हो श्रीपाद युगल-माधुरी का निषेवन (आराधना) कर रहे हैं। इस श्लोक में श्रीनाम-माधुरी का स्फुरण हुआ है। राधा-श्याम के परस्पर के आस्वादन के माध्यम से नाम माधुरी का रसोद्गार है। श्रीभगवान् एवं उनकी स्वरूप-शक्तिगणों का नाम जीव-जगत के नाम के समान नहीं है।

देह-देही नाम-नामी कृष्णे नाहि भेद।
जीवेर धर्म्म नाम देह स्वरूप विभेद॥ (चै.च.)

जैसे श्रीभगवान् के देह-देही में कोई भेद नहीं है, "देहदेहीभिदाश्चात्र नेश्वरे विद्यते क्वचित" (कर्म पुराण), उसी प्रकार उनका नाम एवं नामी स्वयं भी अभिन्न हैं। किन्तु जीव के अर्थात् देहधारी प्राणीगण के सम्बन्ध में देह-देही, नाम और नामी भिन्न वस्तु हैं। श्रीकृष्ण एवं श्रीकृष्णनाम एक अभिन्न तत्त्व के ही प्रकाश-भेद मात्र हैं। श्रीकृष्ण में जो धर्म एवं शक्ति विद्यमान है नाम स्वरूप में भी वह पूर्णरूप से रहता है।

नामचिन्तामणिः कृष्णचैतन्यरसविग्रहः।
पूर्ण शुद्धो नित्यमुक्तोहभिन्नत्वान्नामनामिनो॥ (पद्मपुराण)

अर्थात् 'नाम एवं नामी के अभिन्नतावश चैतन्यरस-विग्रह श्रीकृष्ण ही की तरह नाम भी चिन्तामणि स्वरूप-पूर्ण, शुद्ध, नित्य एवं मुक्त स्वभाव है। तभी साक्षात् माधुर्य मूर्ति श्रीकृष्ण की ही तरह उनके नाम का माधुर्य भी अपरिसीम है।'

"मधुरमधुरमेतन्मंगलम् मंगलानाम् सकलनिगमवल्लीसत्फलम् चित्तस्वरूपम्।

सकृदपि परिगीतम् श्रद्धा हेलया वा भृगुवर नवमात्रम् तारयेत् कृष्णनाम:॥"

(स्कन्द पुराण)

अर्थात् "हे शौनक, जो मधुर की अपेक्षा अधिक मधुर है, समस्त मंगलों का भी मंगलदायक हैं, जो निखिल वेदकल्पलतिका का उपादेय फल एवं चिन्मय स्वरूप हैं, वही कृष्णनाम श्रद्धा से अथवा अवहेलना (अनादर) से मात्र एकबार उच्चारण किए जाने पर भी मनुष्य मात्र का उद्धार करता है।" इस प्रकार श्रीकृष्ण ही की तरह श्रीकृष्णनाम की शक्ति, महिमा एवं माधुर्य आदि भी शास्त्र और साधु-मुख से बहुत प्रकार से कीर्तित होते देखी जाती है।

श्रीश्रीराधामाधवक पारस्परिक नाम रस का आस्वादन ही इस श्लोक की विषयवस्तु है। 'हे कृष्ण! तुम किसी समय प्रसंगवश श्रीराधानाम श्रवण करते ही अखिल विलास आदि- सब भूल जाते हो।' पूर्वराग दशा में सखी श्रीराधारानी के निकट श्रीकृष्ण की श्रीराधानाम से उन्मादना की बात वर्णन करती है-

चम्पक-ढाम हेरि, चित्त अति कम्पित
लोचने वहे अनुराग।
तुया रूप अन्तरे, जागये निरन्तर
धनि धनि तोहारि सोहाग॥
वृषभानुनन्दिनी, जपये राति दिनि,
भरमे ना बोलये आन।

लाख लाख धनि, बोलये मधुर वाणी
स्वप्ने ना पातये काण॥
'रा' कहि 'धा' पहूँ कहइ ना पारइ,
धारा धरि वहे लोर।
सोइ पुरुख मणि, लोटाय धरणी पुन,
को कह आरति उर॥
गोविन्ददास तूया, चरणे निवेदल,
कानुक एतहूँ संवाद।
नीचये जानह, तछू दुख-खण्डक,
केवल तूया परसाद॥

प्रात:काल स्नान, वेष-भूषादि समापन कर उपासना ग्रह में श्रीराधानाम का जप करते हैं। सब समय के लिए श्रीराधानाम ही उपास्य है। अभीष्ट लाभ के लिए मदन-राज के महातीर्थ कालिन्दी-तटवर्ती निकुंज मन्दिर में श्रीराधा की श्रीचरण ज्योति का स्मरण करते हुए राधानाम का जप करते हैं, श्यामसुन्दर।

"कालिन्दीतटकुन्जमन्दिरगतो योगीन्द्रवदयत्पद-
ज्योतिर्ध्यानपरः सदा जपति याम् प्रेमाश्रुपूर्णो हरिः।
केनाप्यद्भुतमूल्लसद्रतिरसानन्देन सम्मोहितः
सा राधेति सदा हृदि स्फुरतु मे विद्या परा द्वयाक्षरा॥"

(राधारससुधानिधि-96)

"श्रीकृष्ण यमुना तटवर्ती निकुंज मन्दिर में योगीन्द्र के समान जिनकी पद ज्योति ध्यान करते-करते प्रेमाश्रुपूर्ण दशा में जिसका सर्वदा जप करते हैं एवं किसी अनिर्वचनीय, अद्भुत, उल्लासकर रतिरसानन्द से सम्मोहित होते हैं, वही 'राधा' यह पराविद्या स्वरूप अक्षर-द्वय मेरे हृदय में सदा स्फुरित हो। प्रसंगवश किसी के मुख से 'राधा' नाम श्रवण करते ही रतिरसानन्द से चमत्कृत हो जाते हैं। कहते हैं-

"राधानाम केवा शुनाइले। शुनि मोर प्राण जुडाइले॥
ए नामे आछे कि माधुरी। श्रवणे रहल सुधा भरि॥

चिते निति मूरति विकाश। अमिया सागरे येन वास॥
देखिते नयने लागे साध। ए यदुनन्दन मन काँद॥"

ऐसा सौभाग्य अन्य किसी कान्ता का नहीं है। यही भगवान् ही हमारे उपास्य हैं। जिससे परब्रह्म स्वयं भगवान् को हम श्रीराधा के एकान्त आधीन अथवा अनुगत रूप में देख पाते हैं। इसमें उनका कोई अपकर्ष नहीं है बल्कि इसमें ही उत्कर्ष की पराकाष्ठा है। स्वयं भगवत्ता की जय जयकार। कारण श्रीमती स्वयं प्रेम-लक्ष्मी है एवं श्रीकृष्ण भी प्रेम के एकान्त वशीभूत है, यह उनका महागुण है।

श्रीराधा भी वैसी ही है, 'कृष्ण' यह शब्द श्रवण मात्र से ही उनकी देह जड़ता आदि सात्विक भावों से व्याप्त हो जाती है। पूर्वराग दशा में नाम श्रवण मात्र से ही प्राण व्याकुल एवं जड़ता आदि भावों से देह अवंश हो गई थी, सखी से कहने लगी थी।

"सइ केवा शुनाइल श्याम-नाम।
कानेर भितर दिया, भरमे पशिल गो,
आकुल करिल मोर प्राण॥
ना जानि कतेक मधु, श्याम नामे आछे गो,
वदन छाडिते नाहि पारे।
जपिते जपिते नाम अवश करिल गो,
केमने वा पासरिव तारे॥
नाम परतापे यार एछन करिल गो,
अंगेर परशे किवा हय।
येखाने वसति तार, नयाने देखिया गो,
युवती धरम कैछे रय॥
पासरिते करि मने, पासरा ना याय गो,
कि करिव कि हबे उपाय।
कहे द्विज चण्डीदासे- कुलवती कुल नाशे
आपनार यौवन याचाय॥"

महाभावमयी श्रीराधा कृष्ण नाम श्रवण मात्र से ही प्रबल सात्विक विकारों से आक्रान्त हो जाती है। कोटि समुद्रो के समान गांभीर्थवती हैं किन्तु

फिर भी कृष्ण नाम माधुरी चित्त को विमथित कर देती है। अक्षर श्रवण से ही अस्थिर हो जाती हैं।

"दूरादप्यनुषंगतः श्रुतिमिते त्वन्नामघेयाक्षरे,
सोन्मादम् मदिरेक्षणा विरुवती धत्ते मुहूर्वेपथम्।
आः किम्वा कथनीयमन्यदसिते दैवान्नवाम्भोधरे,
दृष्टे तम् परिब्धूमूत्सुकमतिः पक्षद्वथीमिच्छति॥"

(विदग्धमाधव)

विशाखा श्रीकृष्ण से कहती हैं– "हे कृष्ण! प्रसंगवश दूर से तुम्हारे नामाक्षर कर्ण में प्रवेश करते ही ख़ंजनाक्षी श्रीराधा उन्माद दशा को प्राप्त हो आर्तनाद करते–करते कम्पित हो जाती हैं। हा कष्ट! और क्या कहूँ, संयोगवश कभी नवजलधर दृष्टिगोचर हो जाता है तो उत्कण्ठित चित्त से उसे आलिंगन करने के लिए दो पंखों की इच्छा करने लगती है।" इस प्रकार परस्पर के नाम से दोनों ही आनन्द–वैवश्य प्रकाश करते हैं। सुचतुर भक्तवृन्द भी उनकी परस्पर के नाम में आसक्ति देखकर श्रीराधाकृष्ण नाम गायन से दोनों की श्रीचरण सेवा लाभ कर धन्य होते हैं।

"कृष्णनाम गाने भाई, राधिका चरण पाई,
राधानाम गाने कृष्णचन्द्र।
संक्षेपे कहिनू कथा, धूचाओ मनेर व्यया,
दु:खमय अन्य कथा धन्द॥
(प्रेमभक्ति चन्द्रिका)

"आचम्बिते राधानाम, शुनिले श्रवणे श्याम
कि आनन्द के बोलिते पारे।
अखिल–विलास–कला, भूले याय नन्दलाला,
तन काँपे पुलकेर भरे॥
कृष्ण एइ टूटि वर्णे, प्रवेश करिले कर्णे,
राधिकार अन्तरे उल्लास।
जाडय भाव करि कत सात्विक विकार यत्
अंगे अंगे हय परकाश॥

राधानामे श्यामराय, येमति पागलप्राय,
कृष्ण नामे राई उन्मादिनी।
राधाकृष्ण नाम माला, भक्तकण्ठे करे आला,
गुण गाय श्रीरूप गोस्वामी॥14॥
त्वाम् च वल्लवपुरन्दरात्मज, त्वाम् च गोकुलवरेण्यनन्दिनि।
एष मूर्धिन रचितान्जलिर्नमन्भिक्षते किमपि दुर्भगो जनः॥15॥

अन्वयः त्वाम् च वल्लवपुरन्दरात्मज (वल्लवपुरन्दरो गोपराजः श्रीनन्दः तस्य नन्दन) त्वाम् च गोकुलवरेण्यनन्दिनि (गोकुलवरेण्य श्रीवृषभानुः तस्य नन्दिनी) एष दुर्भगो जनः मूर्धिन (शिरसि) रचितांजलीः (बद्धान्जलिः) नमन किमपि भिक्षते।

अनुवादः हे श्रीनन्दनन्दन! हे वृषभानुनन्दिनी! यह हतभागाजन मस्तक पर अंजलि बंधन कर तुम दोनों को प्रणाम करता है एवं कुछ भिक्षा प्रार्थना करता है।

मकरन्दकणा व्याख्या।

भिक्षा प्रार्थनाः

(15) श्रीश्रीराधामाधव के पारस्परिक आस्वादन के माध्यम से दश श्लोके में श्रीपाद ने उनके नाम, रूप, गुण आदि की माधुरी का वर्णन किया है। दैन्य की मूर्ति श्रीपाद का दैन्य सिन्धु उच्छलित हो उठा है। सोच रहे हैं- वेनो परस्पर के रूप, गुण, लीला आदि के आस्वादन में स्वयं ही विभोर हैं, मुझ जैसे दीन व्यक्ति को ऐसी सुदुर्लभ वस्तु के आस्वादन का सौभाग्य कहाँ मिलेगा! क्या मुझ जैसे हत-भाग्यजन को उनके दर्शन की प्रार्थना करने का अधिकार है? श्रीपाद नित्य परिकर होते हुए भी स्वयं स्वयं को नितान्त दुर्भाग्यशाली मान रहे हैं। यही यथार्थ दैन्य का स्वरूप है।

"येनासाधारणाशक्ताधमबुधिः सदात्मनि।
सवर्वोत्कर्षान्वितेहपि स्याद्वूधैस्तछैन्यमिष्यते॥"

(वृहद्भागवतामृतम्-2/5/222)

अर्थात् "जिस भाव के चित्त में उदय होने पर सर्वगुण-सम्पन्न व्यक्ति भी स्वयं को साधारण, असमर्थ और अधम मानने लगता है, पड़ितगण उसे 'दैन्य' नाम देते हैं।" प्रेम की परिपाक दशा में ही इस प्रकार का दैन्य

प्रकाशित होता है। उसका दृष्टान्त– श्रीकृष्ण विरह में ब्रजसुन्दरिगणों जो परम दैन्य प्रकट हुआ था, वह प्रेम की परिपाक दशा से ही हुआ था।

"दैन्यन्तु परमम् प्रेम्नः परिपाकेण जन्यते।
तासाम् गोकुलनारीणामिव कृष्ण-वियोगतः॥

(वही 2/5/224)

दैन्य की परिपाक दशा में प्रेम जितना गाढ़ा हो जाता है, अभीष्ट के प्रीति विधान के उद्देश्य से उनके दर्शन एवं सेवा के निमित्त उत्कण्ठा भी उतनी ही वर्धित हो जाती है। और इस उत्कण्ठा के उत्कर्ष दारा ही प्रेम का उत्कर्ष भी प्रकट होता है। अतएव दैन्य एवं उत्कण्ठा प्रेम के ही स्वरूपगत धर्म हैं। प्रेम जितनी गाढ़ता को प्राप्त होता है, उत्कण्ठा भी प्रशमित न होकर उत्तरोत्तर उतनी ही वर्धित होती जाती है। श्रीपाद दैन्य की खान है। विपुल दैन्य के उदय होने से नितान्त अधीर हो गए हैं। अथच लालसा की तरंगों से उत्कण्ठा–सिन्धु उच्छलित हो रहा है। प्रार्थना करते हैं– हे श्रीनन्दनन्दन! हे वृषभानुनन्दिनी! हृदय में भक्ति होने से ही तुमसे कृपा–प्रार्थना करने का अधिकार या योग्यता प्राप्त होती है, किन्तु मुझमें तो भक्ति का लेश भी नहीं है। तुम्हारी करुणा की कामना का साहस कैसे करूँ? और फिर यह भी तो लोक प्रसिद्धि है7 इस ब्रज में नन्द महाराज और श्रीवृषभानु राजा दीन–जन के प्रति अधिक करुणा करते हैं। उनके औदार्य एवं वदान्यता की कथा तो सर्वत्र ही प्रसिद्ध हैं। तुम स्वयं करुणा–सिन्धु हो, और फिर उनकी सन्तान हो, मुझमें कोई गुण न रहने पर भी तुम मेरी उपेक्षा नहीं कर पाओगे। परम करुण श्रीश्रीराधामाधव के जैसा इतना दीनदयाल एवं वदान्यशिरोमणि विश्व में और कोई नहीं, तब भी श्रीपाद विपुल दैन्य के कारण स्वयं को उनकी कृपा–प्राप्ति के सर्वथा अयोग्य मान कर उन्हें उनके पितृनाम स्मरण करा रहे हैं एवं अधिकतर करुणा का उद्रेक करा रहे हैं। यह दुर्भागा–दीन जन मस्तक पर अंजलिबंधन पूर्वक तुम्हारे श्रीचरणों में प्रणत हो किंचित् भिक्षा प्रार्थना कर रहा है।' अतिशय क्षुधित व्यक्ति जैसे प्राणरक्षा के निमित्त कातर प्राणों से बद्धांजलि होकर, आंचल पसार कर अन्न आदि भिक्षा करता है, उसी प्रकार इस अन्तिम दशा में प्राणान्त कर विरह में श्रीपाद बद्धांजलि हो विवक्षित ग्यारह श्लोकों में स्वाभीष्ट प्रार्थना ज्ञापन कर रहे हैं।

"हे वल्लव-पुरन्दर,- नन्दात्मज गिरिधर,
हे श्रीकृष्ण सर्वरसकन्द।
हे गोकुल-वरेण्य,- वृषभानु राजकन्ये
श्रीराधिका भानुकुलचन्द्र॥
ब्रजेर रजेते पडि, अंजलि मस्तके धरि
एइ हत भाग्य अभाजन।
युगलेर पादपद्मे प्रणाम करिया आगे,
किछु भिक्षा करे निवेदन॥"15॥
हन्त सान्द्रकरुणासुधाझरी,-पूर्णमानसह्रदौ प्रसीदतम्।
दुर्ज्जनेहत्र दिशतम् रतेर्निज,-प्रेक्षणप्रतिभूवश्छटामपि॥16॥

अन्वयः हन्त! (इति हर्षे) सान्द्रकरुणासुधाझरी (सान्द्रभिः करुणा-सुधाझरीभिः कृपामृत निर्झरैः) पूर्णमानसह्रदौ (पूर्णौ मानसह्रदो ययोस्तो) अत्र दुर्जने (मयि) प्रसीदताम्, रते छटामपि दिशतम् (ददतम्, रतेः कीदृशया इत्याह। निजप्रेक्षण प्रतिभुवः (युस्मद्दर्शनलग्नक भावेन गीताया इत्यर्थः, प्रतिभूर्लग्नकः स्मृत इति हलायुद्धः)।

अनुवादः हे श्रीकृष्ण! हे श्रीराधे! तुम दोनों का मानसह्रद करुणा निर्झर से भरा है, अतएव इस दुर्जन के प्रति प्रसन्न होवो, तुम्हारे दर्शनों के उपाय स्वरूप तुम्हारे श्रीचरणों में एक बिन्दु रति प्रदान करो।

मकरन्द कणा व्याख्या।

रति-प्रार्थनाः

(1) श्रीपाद युगल चरणों में दैन्य विज्ञापनपूर्वक हाथ जोड़कर कुछ भिक्षा चाहते हैं। मन के अभीष्ट चरणों में रहने से मन की कोमलता, सरसता समझ आती है। रूप, गुण आदि के माधुर्य अनुभव से ऐसी अवस्था आ जाती है कि भूलना चाहें तो भी भूल नहीं पाते। संसारी मनुष्य जैसे संसार को भूलना चाहे तो भी भूल नहीं पाता, संसार जैसे उसे धारण कर बैठ जाता है- ठीक उसी प्रकार। भावना-भवित अन्तर में पवित्रता आ जाती है। तब फिर अभीष्ट चरणों की विस्मृति नहीं होती। "द्यौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलम् न मुन्चति" (भागवत) 'शुद्ध अन्तःकरण व्यक्ति कृष्णपाद-पद्मो को कभी त्याग नहीं पाता। राधा-कैन्कर्थ की क्या कोमलता है! कितना मधुमय है उनका अन्तर!

क्षणकाल के लिए श्रीराधामाधव के चरणों का विच्छेद उनके लिए प्राणहारक हो जाता है। श्रीपाद निरवधि क्रन्दन कर रहे हैं, तुम्हारा मानसह्रद करुणा निर्झर से भरा है। तभी तो हृदय में आशा बंधी है। अनन्त स्नेह-करुणा की मूर्ति हो तुम दोनों। श्रीमत् रघुनाथदास गोस्वामिपाद कहते हैं- 'करुणाविद्रवद्देहा' कारुण्यगुण द्वारा श्रीराधा का श्रीविग्रह भी द्रवीभूत हो जाता है। श्रील ठाकुर महाशय प्रार्थना में लिखते हैं-

"राधाकृष्ण! निवेदन एई जन करे।
दुहु अति रसमय, संकरूण हृदय, अवधान कर नाथ मोरे॥
हे कृष्ण गोकुलचन्द्र, गोपीजन वल्लभ,
हे कृष्ण प्रेयसी शिरोमणि।
हेम गौरी श्याम गाय, श्रवणे परा पाय,
गुण शुनि जुडाय पराणी॥
अधम दुर्गत जने, केवल करुणा मने,
त्रिभुवने ए या खेयाति।
शुनिया साधूर मुखे शरण लइनु सुखे,
उपखिले नाहि मोर गति॥
जय राधे जय कृष्ण जय जय राधे कृष्ण,
कृष्ण कृष्ण जय जय राधे।
अंजलि मस्तके धरि नरोत्तम भूमे पडि
कहे दोहे पूराओ मनसाधे॥"

श्रीयुगल यदि कहें, "तुम्हारी क्या प्रार्थना है?" उसके उत्तर में कहते हैं- "तुम्हारे दर्शनों की उपाय स्वरूप एक बिन्दु रति दान करो।" रति ही प्रतिभू है, तुम्हारे दर्शन कराएगी। रति अथवा प्रेम ही पुरुषार्थ है। प्रेम के बिना भगवत्-साक्षात्कार होने पर भी उनके माधुर्य का आस्वादन नहीं होता सो वह साक्षात्कार भी असाक्षात्कार के तुल्य ही है। प्रकट लीला में रति-शून्य असुर प्रकृति के व्यक्तियों ने श्रीकृष्ण दर्शन करके भी माधुर्य मूर्ति श्रीकृष्ण के माधुर्य आस्वादन तो दूर रहा, क्रोध एवं हिंसा आदि से व्याप्त चित्त से उनके संग युद्ध ही किया। पूतना, अघासुर आदि ने आनन्दमूर्ति लीला परायण श्रीकृष्ण को देखकर, क्रोध-क्षोभ से अधीर होकर, उनका निधन करने की

ही चेष्टा की थी। मथुरा में कंस की रंगभूमि पर चाणूर-मुष्टिक आदि मल्लगण को श्रीकृष्ण के संग मल्लयुद्ध के समय उनके प्रत्येक अंग का श्रीकृष्ण के प्रत्येक अंग के साथ निविड़ भाव से मिलन एवं घर्षण होने पर भी आनन्द के स्थान पर वज्र-घर्षण के समान दु:ख और मृत्यु ही प्राप्त हुई थी। अत: रति अथवा प्रेम के अतिरिक्त श्रीकृष्णमाधुरी आस्वादन का अन्य कोई उपाय नहीं।

पंचम पुरुषार्थ सेइ प्रेम महाधन।
कृष्णेर माधुर्यरस कराय आस्वादन॥
प्रेमा हैते कृष्ण हय निज भक्त वश।
प्रेमा हैते पाइ कृष्ण-सेवा-सुख-रस॥ (चै.च.)

तभी श्रील गोस्वामी पाद भक्ति-रसामृत-सिन्धु गन्थ में लिखते हैं- "सवर्वथैव दुरूहोह यमभक्तैर्भगवद्रस:। तत्-पादाम्बुजसवर्वस्वैर्भक्तै-रेवानुरस्यते॥" (2/5/131) अभक्तगणों के निकट भगवद् रस सर्वथा दुरूह है, श्रीकृष्ण चरणारविन्द ही जिनेक सर्वस्व हैं वही भगवद्-भक्तगण ही भगवत्-रस के आस्वादक है। श्रीपाद रसास्वादन के अधिकारी, रसोत्पत्ति के साधन, सहाय एवं प्रकार सम्बन्ध में निम्नरूप से वर्णना करते हैं-

प्रोक्तन्याधूनिकि चास्ति यस्य सद्भक्तिवासना।
एष भक्तिरसास्वादस्तसैय्व हृदि जायते॥
भक्तिनिर्धूतदोषानाम् प्रसन्नोज्ज्लचेतसाम्।
श्रीभागवतरतक्तानाम् रसिकासंग-रंगिणाम्॥
जीवनीभूत गोविन्दपादभक्तिसुखश्रियाम्।
प्रेमान्तरंगभूतानि कृत्यान्योवानूतिष्ठताम्॥
भक्तानाम् हृदि राजन्ती संस्कार युगलोज्ज्वल।
इतिरानन्दरूपैव नीयमाना तु रस्यताम्॥"

(भ.र.सि. (2/1/7-10)

भगवत्-रसास्वादन के अधिकारी-पूर्वजन्म की एवं आधुनिक भगवत् भक्ति वासना जिसमें है, उसके हृदय में ही भक्ति रस का आस्वादन उदित होता है। (रसोत्पत्ति के साधन)-साधन भक्ति के प्रभाव से निखिल दोष-समूहों के के समूल नष्ट हो जाने से जिनका चित्त प्रसन्न (शुद्ध-सत्व के आविर्भाव

योग्य) एवं उज्ज्वल (इसीलिए सर्वज्ञान सम्पन्न) हो गया है, जो श्रीभागवत में अनुरक्त है, रसिक-भक्तों का नित्य संग ही जिनका रंग है (उसी संग में ही वे उल्लसित होते हैं), जो श्रीगोविन्दचरणारविन्द की भक्ति-सुख-स्मृधि को ही जीवातु मानते हैं एवं प्रेम के अन्तरंग साधन श्रवण-कीर्तन आदि के अनुष्ठान में रत रहते हैं, (रसोत्पत्ति के सहाय), उन सभी भक्तों के हृदय में विराजमान पूर्व एवं आधुनिक वासनाद्वय से उज्ज्वला (रसोत्पत्ति के प्रकार) आनन्द रूप रति ही अनुभव-वेद्य श्रीकृष्ण की विभाव आदि के सहयोग से आस्वादनियता प्राप्त कर परम प्रौढ़-आनन्द की चरम सीमा लाभ करती हैं। तभी श्रील ठाकुर महाशय कहते हैं- "युगल चरणे प्रीति, परम आनन्द तथि, रति प्रेममय परबन्धे", "राधाकृष्ण करो ध्यान, स्वप्नेउ न बल आन, प्रेम बिना आन नाहि चाउ", "आर सब परिहरि, परम ईश्वर हरि, सेव मन! प्रेम करि आश" इत्यादि (प्रेम भक्ति चन्द्रिका)।

'हे परम करुणा-कोमल-चित्त श्याम-स्वामिनी। मैं तो तुम्हारी परिचारिका दासी हूँ सो उन्नत-उज्ज्वल रसमयी रति विशेष मुझे प्रदान करो। अन्य जाति की रति मेरी काम्य नहीं है। जैसे श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद कहते हैं- जो जैसी कामना करते हैं वे करे किन्तु श्रीराधा-किंकरियाँ तो श्रीराधापादपद्मो की नखमणि की एक छटा से ही कृतार्थ हैं।'

ब्रह्मानन्दैकवादाः कतिचन भगवद्वन्दनान्दमताः
केचिद्गोविन्दसख्याद्यनुपम परमानन्दमन्ये स्वदन्ते।
श्रीराधाकिंकरीनाम् त्वखिलसुखचमत्कार-सारैकसीमा
तत्पादाम्भोजराजन्नखमणिविलसज्ज्योतिरेकच्छटापि॥

(राधारससुधानिधि - 148)

विश्वसाधकगणों में कोई-कोई ब्रह्मानन्दैकवादी हैं, कोई-कोई भगवद् वन्दनानन्द में मत्त है, और कोई श्रीगोविन्द-साख्य आदि के अनुपम परमानन्द का आस्वादन करते हैं। किन्तु श्रीराधा किंकरियाँ तो श्रीराधा के पाद्पद्मों में सुशोभित नखमणियों की ज्योति की मात्र एक छटा से ही अखिल सुख-चमत्कार की परावधि को प्राप्त करती हैं। श्रीराधाकिंकरियाँ अन्तरंग सेवा के निमित्त ही दर्शनों की कामना करती हैं। श्रील ठाकुर महाशय कहते हैं-

"हरि! हरि! हेन दिन कि हइवे आमार?
दोंह अंग परशिव, दूहूँ अंग निरखिव,
सेवन करिव दोंहाकार॥
ललिता विशाखा संगे सेवन करिव रंगे,
माला गाँथि दिव नाना फूले।
कनक सम्पुट करि, कर्पूर-ताम्बूल भरि,
योगाइव अधरयुगले॥
राधाकृष्ण वृन्दावन सेइ मारे प्राणधन,
सेइ मोर जीवन-उपाय।
जय पतित-पावन देह मोरे एइ धन,
तूया वने अन्य नाहि भाय॥"

महाजनों की विमल अनुभूति है- "तुया वने अन्य नाहि भाय।" इस ब्रजवन में अन्य कुद अच्छा न लगना ही उचित है। किन्तु मुझ जैसे जीव को ब्रजवन में वास करते हुए भी लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा, अर्थ, सम्पदा आदि बहुत कुछ अच्छा लगता है। जिनके लिए सब छोड़कर ब्रजवास है, उन्हीं श्रीराधाकृष्ण को प्राण-धन कर पाया क्या? अपराध प्रबल हो प्रगतिशील भक्ति-जीवन को बाधित कर रहा है, युगल चरणों में रति-मति की प्राप्ति अत्यन्त कदिन हो गई है। श्रीपाद क्रन्दन करते हैं- "तुम्हारे दर्शनों की प्रतिभू एक बिन्दु रति प्रदान करो।"

"हे कृष्ण, हे राधिके, युगलरतन। येइ भिक्षा मागो पदे करह श्रवण॥
युगल मानसहृद नित्य निरन्तरे। परिपूर्ण कृपामृत सूरधनी-धारे॥
शुनिया करुणा-कथा ए मोर मिनति। सुप्रसन्न हउ दोहे दुर्जनेर प्रति॥
युगलेर दरशन उपाय विशेष। आरति पिरीति रति कर उपदेश॥

नवीन-युगल-कुन्जे देखिव कि आमि। सेई शुभलग्न चिन्ते श्रीरूप गोस्वामी॥16॥

श्यामयोर्नववयः सुषमाभ्याम्, गौरयोरमलकान्तियशोभ्याम्।
क्वापि वामखिलवल्गूवतंसो, माधुरी हृदि सदा स्फूरतान्मे॥17॥

अन्वय: (हे) अखिलवल्गूवतंसो-(सवर्वजनमनोज्ञशिरोभूषणभूतो) वाम् (यूवयो) क्वापि माधुरी मे हृदि सदा स्फूरतात्। त्वाम् कीदृशयोरित्याह।

नववय: सुष्माभ्याम् श्यामयो: (नववयसा श्यामा षोडशवार्षिकी राधा, नवसुष्मया श्यामो मरकतमणिप्रख्या: श्रीकृष्ण इत्यर्थ: श्यामा च श्यामश्चेति पुमान् स्त्रियेत्येकशेष:) गौरयोरमलकान्तियशोभ्याम् (गौरी च गौरश्च तयो: अमलकान्तया गौरी कनकप्रख्या राधा, अमलयशसा गौर: शुभ्र: श्रीकृष्ण:, "गौर: पीतेहरूणे श्वेते" इति विश्व:।

अनुवाद: हे श्रीकृष्ण! हे श्रीराधे! विश्व की समस्त उपमान वस्तुओं के तुम शिरोरत्न हो। तुम दोनों में एक जन नववयस से श्यामा है (उत्तम रमणी के लक्षणों से लक्षिता) एवं दूसरा अंग-शोभा से श्याम है (मरकतमणि के समान उज्ज्वल)। और फिर एकजन निर्मल कान्ति हेतु प्रतप्त स्वर्ण के समान गौरांगी है एवं दूसरा निर्मल यश हेतु गौर है अर्थात् शुभ्रवर्ण है, तुम्हारी यही माधुरी मेरे हृदय में सदा स्फुरित हो।

मकरन्दकणा व्याख्या।

उपमान के शिरोरत्न:

(17) श्रीयुगल की सेवा प्राप्ति एवं माधुर्यास्वादन की तीव्र स्पृहा श्रीपाद के चित्त में उत्तरोत्तर वर्धित हो रही है। स्मरण में, स्फुरण में, स्वप्न में पाकर भी लालसा की निवृत्ति नहीं हो रही। अभीष्ट के रूप, गुण, लीला अतिशय दुर्लभ प्रतीत हो रहे हैं। किन्तु तब भी सेवारस-रंजित-चित्त में साक्षात् दर्शन एवं सेवा प्राप्ति की तीव्र लालसा है। यह लालसा ही राग मार्ग की प्राण वस्तु है। इस प्रेम-तृष्णा की कभी तृप्ति नहीं होती, नित्य नवनव आकांक्षाओं का उद्‌गम होता रहता है। "तृष्णा शान्ति नहे तृष्णा बादे निरन्तर।" (चै.च.) यह लालसामयी प्रार्थना ही उत्कलिकावल्लरी में नाना भावों में एवं नाना रूपों में प्रकाशित हुई है। स्थान-स्थान पर भाव के आधिक्य के हेतु भाषा जैसे भाव का भार वहन करने में असमर्थ हो रही है।

'हे सर्वजन मनोज्ञ-शिरोभूषण! सम्बोधन में कितनी व्याकुलता भरी है। प्राकृत अप्राकृत जगत के समस्त उपमान वस्तुओं के शिरोरत्न हो तुम दोनों। जिसके संग उपमा दी जाती है वह उपमान एवं जिसकी उपमा की जाती है वह उपमेय कहलाता है। जैसे 'मुखकमल' कहने पर कमल उपमान एवं मुख उपमेय होगा। इस विश्व में उपमेय से उपमान का आधिक्य देखा जाता है। वहाँ सभी उपमान ही व्यर्थ हैं, कारण प्रापंचिक वस्तु की उस अप्रपंच रूप के

संग तुलना नहीं हो सकती। तभी माधुर्य-मूर्ति श्रीश्रीराधामाधव को समग्र उपमानों का शिरोरत्न कहा गया है। तुम्हारे माधुर्यास्वादन का लोभ किसके चित्त में जागृत नहीं होता? कितनी निविड़ आकांक्षा है। सुदुर्लभता ज्ञात है किन्तु फिर भी आशा की निवृत्ति नहीं हो रही। तुम्हारे दर्शन एवं सेवा के अयोग्य हूँ किन्तु फिर भी तुम्हारी माधुरी ने मुझे पागल कर दिया है। तुम्हारी वही मन-प्राण को पागल कर देने वाली माधुरी सदा-सर्वदा मेरे चित्त में स्फुरित हो।' श्लोक के अवशिष्टांश में उसी माधुर्य का ही वर्णन है।

"श्यामयोर्नववयः सुष्माभ्याम्" तुम दोनों के मध्य एक जन नव्य-वयस हेतु श्यामा है। षोडश-वर्ष की नायिका विशेष को श्यामा कहा जाता है। इसके अतिरिक्त श्यामा नायिका में जो लक्षण देखे जाते हैं वे हैं-

"पद्मगन्धि-वपूर्यस्या स्तनो यस्या सदोन्नतो।
ग्रीष्मकाले शिशिरता शीतकाले यदुष्णता॥
अकाले वंजुलो यस्याः पादाघातेन पुष्पति।
मुखासवैश्च वकुलः सा श्यामा परिकीर्तिता॥"

जिस नायिका के अंग से पद्म के समान सुगन्ध निःसृत होती है, स्तन युगल सर्वदा उन्नत हैं, अंग ग्रीष्मकाल में शीतल एवं शीतकाल में उष्ण रहते हैं, जिनके चरण-स्पर्श से अशोक एवं मुखगन्ध से वकुल ऋतु के न होने पर भी विकसित हो जाता है, उसे नायिका की श्यामा नायिका कहा जाता है। श्रीराधा श्यामा नयिका हैं एवं श्रीकृष्ण अंगकान्ति से श्याम हैं, इन्द्रनीलमणि के समान उज्ज्वल श्यामवर्ण। शृंगार रस का वर्ण श्याम हैं, श्रीकृष्ण साक्षात् शृंगार हैं। "शृंगारः सखि! मूर्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीडति" (श्रीगीतगोविन्द) 'मूर्तिमान् शरीरी-सादृष्यम्। तदुक्तम् भरतेन (नाट्यशास्त्रे 6/42) 'श्यामो भवति शृंगारः सितो हासः प्रकीर्तितः" इति (टीका-श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती) श्रीपाद बिल्वमंगल ठाकुर कहते हैं- "शृंगाररससारसवर्वस्वम्" अर्थात् जो शृंगार रस के सार-सर्वस्व हैं अथवा शृंगार ही जिसका सार-सर्वस्व हो तभी महाजन कहते हैं।

"जलधर रूचिहर श्याम कान्ति।
युवति मोहन वेश घरूकत भाँति॥" (रायशेखर)

सुचिक्कण श्याम कान्ति, अनिर्वचनीय वेश, रस, भाव सब जैसे मूर्तिमान है–

कुवलय नील रतन दलितांजन
मेघपुन्ज जिनि वरण सुचान्द।
कुन्चित केश खचित शिखिचन्द्रक
अलकावलित ललितानन चान्द॥
आउत रे नव नागर कान।
भाविनि भाव- विभावित अंतर
दिन रजनी नांहि जानत आन॥
मधुराधर हास मनोहर तहि अति
सुमधुर मुरली विराज।
भांग विभंगिम कुटिल नेहारइ
कुलवती उमती दूरे रहू लाज॥
गज-गति भाति गमन अति मन्थर
मंजीर बाजत रूणू-झूनिया।
हेरइते कोटि मदन मुरछायइ
गोविन्द दास कह धनि धनिया॥

श्याम शब्द का अर्थ अभिधान में इस प्रकार लिखा है– श्यायते गच्छति मनोहस्मिन्निति श्यामः अर्थात् जिसकी ओर सभी का मन गमन करता है उसी का नाम श्याम है। हम यदि धीर मन से इस विषय पर चिन्तन करें तो समझ पाएंगे कि निखिल विश्व का मन आनन्द की ओर ही धावित होता है। मनुष्य सुख अथवा आनन्द ही चाहता है, और उस आनन्द की ही घनीभूत मूर्ति श्यामसुन्दर हैं।

कुवलय-दल-नीलः कोटि-कन्दर्प-लीलः,
कनकरूचि-दुकुलः केकिपिन्छावचूलः।
मम हृदि कुलबाला-नीवि-विसृहंसि-वंश,-
धवनिरूदयतू राधा-पद्मिनी-राजहंस॥" (संगीत माधव)

इस प्रकार दोनों ही श्याम एवं दानों ही गौर भी हैं। एकजन (श्रीराधा) निर्मल कान्ति हेतु प्रतप्त स्वर्ण के समान गौरांगी है एवं दूसरा जन (श्रीकृष्ण)

निर्मल या हेतु गौर (शुभ्र) हैं। श्रीराधा की उज्ज्वल गौर कान्ति का परिचय देते हुए श्रील सरस्वती पाद लिखते हैं-

"नवचम्पक गौर-कान्तिभिः, कृत वृन्दावन हेमरूपताम्।
भज कामपि विश्व-मोहिनीम्, मधुर-प्रेमरसाधिदेवताम्॥"

(संगीत माधव)

"जो अपनी नव-चम्पक-गौरकान्ति द्वारा श्यामलिमामय श्रीवृन्दावन को स्वर्ण के वृन्दावन में रूपायित कर देती है- उन्हीं विश्व-मोहिनी मधुर रसाधिदेवता श्रीराधा का भजन कर।" फिर लिखते हैं- "नवकनक चम्पक-प्रकर-रूचि-कम्पक श्रील-तनु सकल-सुख-हेतो। (वही) अर्थात् अभिनव स्वर्णचम्पक समूह का कान्ति निन्दि श्रीराधा का विग्रह निखिल आनन्द निकेतन है। श्रीराधारससुधानिधि में लिखते हैं- "गात्रे कोटि तडिच्छवि" अर्थात् "जिनकी देह में कोटि-कोटि विद्युतमालाओं की कान्ति शीतल हो जाते हैं क्योंकि उसमें महाभाव के स्वरूप का प्रकाश है, प्राकृतिक तेजस-तन्मात्राओं की आलोक किरण नहीं।

श्रीकृष्ण यश से गौर अर्थात् शुभ्र हैं। जिनका यश नारद-मुनि वीणा के संग गायन करते हैं तो समस्त श्यामवर्ण वस्तुएं शुभ्र हो जाती हैं- ऐसा वर्णित है। उनकी यश-राशि ऐसी विशद् अथवा गौर (शुभ्र) है। तुम्हारी माधुरी मेरे अन्तस में सर्वदा स्फुरित हो। तुम्हारे माधुर्य-सिन्धु में मग्न हो जाना चाहता हूँ। नाम, गुण, लीला की सर्वमनोहरता ही माधुर्य है। "माधुर्यमसमोर्धतया सवर्वमनोहरम स्वाभाविकरूपगुणलीलादिसौष्ठवम्" (श्रीजीवपाद)। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीपाद भगवद् साक्षात्कार के उपरान्त भी माधुर्य आस्वादन के स्तरों का उल्लेख करते हैं। अतः क्या साधना और क्या सिद्धि, चरम फल तो श्रीभगवान् के माधुर्य का आस्वादन ही है।

"हे कृष्ण करुणासिन्धु ब्रजनीलमणि।
हे कृष्ण-प्रियतमा राधा ठाकुराणी॥
उपमान वस्तु यत अखिल भुवने।
सबार मुकुटमणि तोमरा दुजने॥
नववयः सुषमाते श्रीराधिका श्यामा।
युवती रमणीगणे लक्षणे उत्तमा॥

परम सुन्दर हरि नवघन-श्याम।
महामरकत मणि लावण्येर घाम॥
तपत-कांचन सम उज्ज्वल गौरांगी।
सुनिर्मल कान्तिछटा किशोरी वरांगी॥
अमल यशेते गौर अन्य एक जन।
भुवन-मंगल कृष्ण मदनमोहन॥
हृदय मन्दिरे करू माधुर्य-विलास।
श्रीरूपगोस्वामी करे एई अभिलाषा॥17॥

सर्ववल्लववरेण्य-कुमारौ, प्रार्थये वत युवाम प्रणिपत्य।
लीलया वितरतम् निजदास्यम्, लीलया वितरम् निजदास्यम्॥18॥

अन्वय: सर्ववल्लववरेण्यकुमारौ (सर्वेषाम् वल्लवानाम् गोपानाम्वरेण्यो वरनीयो श्रीवृषभानु-नन्दराजौ तयो: कुमारी कुमारश्च: तो-तत् सम्बोधने) युवाम् प्रणिपत्य वत (हर्षे, अहम्) प्रार्थये लीलया निजदास्यम् वितरतम्, लीलया निजदास्यम् वितरतम् (अत्यादरेन वीप्सा)।

अनुवाद: हे श्रीकृष्ण! तुम ब्रजराज के नन्दन (पुत्र) हो, हे श्रीराधिके! तुम ब्रज में पूजनीय श्रीवृषभानु राजा की नन्दिनी (पुत्री) हो, तुम्हें प्रणाम कर मैं प्रार्थना करता हूँ- तुम अनुग्रहपूर्वक मुझे निज दास्य प्रदान करो।

मकरन्दकणा व्याख्या।

दास्य-प्रार्थना:

(18) पूर्व श्लोक में श्रीपाद युगलमाधुरी में तन्मय होना चाहते हैं। प्रार्थना करते हैं- वि चित्त में सर्वदा युगल-माधुर्य का ही स्फुरण हो। श्रीयुगल जैसे कह रहे हैं- "हमारे माधुर्य में ही क्या तुम सब-समय मग्न-चित्त होकर रहना चाहते हो?" इसके उत्तर में कहते हैं- 'नहीं तुम्हारे माधुर्य को हृदय में रखकर तुम्हारी सेवा करुँगा।' माधुर्यास्वादन के संग तुम्हारे दास्य रस में अपने मन को डूबा कर रखूँगा।' राधा-किंकरीगण सेवा रस की ही मूर्तिया हैं। सेवा रस से ही उनका स्वरूप गठित है। सेवा के अतिरिक्त उनकी अन्य कोई कामना नहीं ह। सेवा में जितना आनन्द पाती है, सेवा के अभाव में उतना ही दु:ख पाती हैं। 'तुम माधुर्य के सिन्धु हो, सेवा करते-करते ही तुम्हारे माधुर्य रस से हमारा अन्तर-बाहिर सब पूर्ण हो जाएगा। सेवा की उपेक्षा कर

माधुर्य में तन्मय नहीं होना चाहती। श्रीद्वारिकानाथ को वीजन करते समय द्वारिका के परिकर श्रीदारूक में श्रीभगवान् के माधुर्य अनुभव से "जाड्य" भाव का उदय हुआ तो वीजन सेवा में बाधक उस आनन्द का उन्होंने अभिनन्दन नहीं किया।

"अंगस्तम्भारम्भमुक्तुंगयन्तुम प्रेमानन्दम् दारूको नाभ्यानन्दत्।
कंसारातेवीजने येन साक्षादक्षोदीयान्तरायो व्यधायी॥"

(भ.र.सि.)

"निज प्रेमानन्दे कृष्ण-सेवानन्द बाधे।
से आनन्देर प्रति भक्तेर हय महाक्रोधे॥ (चै.च.)

मंजरियों के सेवा के माध्यम से माधुर्य-आस्वादन का दृष्टान्त देने में श्रील ठाकुर महाशय अति सुदक्ष हैं-

"हरि हरि! आर कि एमन दशा हब!
छाडिया पुरुष देह, कवे वा प्रकृति हव,
दूहूँ अंगे चंदन पराव॥
टानिया बाधिव चूडा, नव गुन्जाहारे वेडा,
नाना फूले गाँथि दिव हार।
पीतवसन अंगे, पराइवो सखी संगे,
वदने ताम्बूल दिव आर॥
दूहूँ रूप मनोहारी, देखिव नयन भरि,
नीलाम्बरे राइ साजाइया।
नवरत्न जरि आनि, बान्धिव विचित्र वेणी,
दिव ताहे मालती गाँथिया॥
से ना रूप माधुरी, देखिव नयन भरि,
एइ करि मने अभिलाष।
जय रूप सनातन देह मोरे एइ घन,
निवेदये नरोत्तम दास॥"

श्रीपाद आकूती से भर श्रीराधामाधव के चरणों में दास्य की प्रार्थना कर रहे हैं। 'हे स्वामिनी, एकमात्र तुम ही श्रीकृष्ण को आनन्द देने वाली हो। तुम्हारे श्रीचरण तप्त हृदय को शीतल करने वाले हैं। श्रीकृष्ण के तीव्र

विरह-सन्ताप निवारक हैं। हे श्यामसुन्दर! तुम श्रीराधा के प्राणनाथ हो। हृदय में तुम्हारी प्रीति धारण कर स्वामिनी उन्मादिनी हैं। तुम्हारा परस्पर मिलन करवा कर तुम्हारी आनन्द-विधान रूपी सेवा करुँगा।' 'दास्य' अथवा सेवा ही भक्ति के प्राण हैं। श्रीराधाकिंकरी का दास्य परम सुरसाल है। दास्य भाव के सम्भ्रम-संकोच से मुक्त। यही दास्य ही गौड़ीय-वैष्णवगण की हाद्र वस्तु है। श्रीमत् रघुनाथदास गोस्वामीपाद कहते हैं- 'तुम्हारा वर-दास्य ही मेरा काम्य है।' सखी होकर भी दासी, रूप-गुण से किशोरी, अंतरंगा सेवाधिकारिणी है। मधुररस की पात्री होकर भी दासी, मधुर रस के अन्तर्गत भाव की सेवा*। स्तवमाला, स्तवावली आदि ग्रन्थ वर-दास्य के दृष्टान्तों से भरपूर हैं। गौड़ीय-वैष्णव-साधक को रूचि के सज्ञथ लीलाओं में इस सरस-दास्य की भावना करनी होगी। 'साधने भाविवो याहा, सिद्धदेहे पावो ताहा, पक्वा-पक्व मात्र से विचार।' 'मैं श्रीराधा की दीन किंकरी हूँ। यह अभिमान अन्तस में वहन कर रूचि के साथ रूप, गुण, लीला आदि का स्मरण-अभ्यास करना होगा। रूचि के संग किया गया स्मरण ही स्मरणीय विषय को आकर्षित करता है एवं हृदय में अटकाए भी रखता है। निरन्तर स्मरण अभ्यास के फल से चित्त स्मरणीय विषय को फिर कभी विस्मृत नहीं होता। इस भाव से किया गया सपरिकर श्रीश्रीराधामाधव के रूप गुण लीला आदि के अनुभव से उत्पन्न आस्वाद विशेष ही परिणत भजन है; इस प्रकार भजन करने से ही नित्य-सिद्ध परिकरगणों की सेवा परिपाटी बोधगम्य होती है। श्रीपाद साक्षात् ब्रज की रूपमंजरी हैं। साधन जगत में आकर साधक की तरह दास्य की कामना कर रहे हैं। नित्य सिद्ध होकर भी साधन-रस का आस्वादन कर रहे हैं।

श्रीराधामाधव यदि कहें, 'हमारे दास्य के प्रति तुम्हारा इतना आग्रह क्यों है?' इसके उत्तर में कहते हैं- तुम ब्रज में पूजनीय श्रीनन्द महाराज एवं श्रीवृषभानु राजा की संतान हो। राजपुत्र एवं राजकन्या हो। हम भी ब्रजवासी हैं। अतः तुम्हारी सेवा तो हमारा निजधर्म है। श्रीरूप रघुनाथ के आनुगत्य में ही गौड़ीय-वैष्णवों का भजन-जीवन है अतः उनके मन में सतत ऐसी प्रार्थना जागनी चाहिए-

⋆ मेरे द्वारा संकलित श्रीविलापकुसुमांजलि ग्रन्थ के 16वें श्लोक की 'परिमलकणा' व्याख्या देखें।

राधाकृष्ण सेवों मुई जीवने मरणे।
ताँर स्थाने ताँर लीला देखो रात्रिदिने॥
ये स्थाने ये लीला करे युगलकिशोर।
सखीर संगिनी हैया ताहे हउ भोर॥
श्रीरूप मंजरी पद सेवो निरवधि।
ताँर पाद-पद्म मोर मन्त्र-महौषधि॥
श्रीरति मंजरी देवी कर अवधान।
अनुक्षण देह तूया पादपद्म ध्यान॥
वृन्दावने नित्य नित्य युगल-विलास।
प्रार्थना करये सदा नरोत्तम दास॥

साधक को भी सेवा-चिन्तन के समय साक्षात् दर्शन एवं सेवा प्राप्ति के लिए उत्कण्ठा, आकूति थोड़ी बहुत चित्त में रखनी होगी। साधक जितना सिद्धि की ओर अग्रसर होगा, उत्कण्ठा आग्रह भी उतने ही प्रबल होते जाऐंगे। ब्रजरस अप्राकृत है, प्राकृत भाव के संस्कार हृदय में विद्यमान रहने से इसका स्फुरण सम्भव नहीं। साधक निरपराध हो आसक्ति के साथ श्रवण, कीर्तन आदि भजन-अंगों का अनुष्ठान करते-करते जिस परिमाण में शुद्ध-चित्त हो पाता है, उसके अनुरूप ही उसके स्फटिकमणि की तरह स्वच्छ-चित्त में ब्रजरस का स्फुरण होता है। श्रीपाद नित्य परिकर हैं, अभीष्ट की साक्षात् सेवा प्राप्ति के लिए उनकी हृदय विदारक अर्ति है।

हे नाथ! हे हरि! रसिकेन्द्र-चूडामणि।
ब्रजेन्द्रकुमार कृष्ण ब्रज-नीलमणि॥
हा राधिके! गान्धर्विका आमार ईश्वरी॥
ब्रजवासी-वरेण्य-श्रीभानू-सुकुमारी॥
प्रणाम करिया करि एइ त प्रार्थना।
दास्य पद दान कर करिया करुणा॥18॥
प्रणिपत्य भवन्तमर्थये, पशुपालेन्द्रकुमार काकुभिः।
ब्रजयौवतमौलिमालिका,-करुणापात्रमिमम् जनम् कुरू॥19॥

अन्वय: (हे) पशुपालेन्द्रकुमार! (अहम्) भवन्तम् प्रणिपत्य काकुभि: अर्थये (प्रार्थये, किम् प्रार्थयसे? तत्राह) इमम् जनम् ब्रजयौवतमौलिमालिका (गोकुलयुवतिवृन्दशिर:स्रागभूताया: श्रीराधाया:) करुणापात्रम् (दयाभाजनम्) कुरू।

अनुवाद: हे श्रीब्रजराज नन्दन! मैं तुम्हारे श्रीचरणों में प्रणत हो काकुवाक्यों से प्रार्थना करता हूँ- तुम मुझे ब्रजसुन्दरी-शिरोमणि श्रीराधा का कृपा पात्र बना दो।

मकरन्दकणा व्याख्या।

श्रीराधा की कृपापात्र:

(19) श्रीपाद की अभीष्ट के दास्य प्राप्ति की सुतीव्र आकांक्षा उत्तरोत्तर वर्धित हो रही है। विरही श्रीपाद के चित्त में सुमेरु पर्वत के समान विराजित है- अभीष्ट की सेवा प्राप्ति की कामना। एक ओर तो दूर्वार लोभ इष्ट-प्राप्ति के निमित्त हृदय में तीव्र दबाव उत्पन्न कर रहा है तो दूसरी ओर स्वयं की अयोग्यता की स्फूर्ति से वे निरन्तर आर्तनाद कर रहे हैं- हाहाकार कर रहे हैं। यह अवस्था प्रेम राज्य का एक चरम आकांक्षित स्तर है। साधक भी विरही है, इष्ट के दर्शनों से वंचित है, अत: उसे भी इष्ट के अभाव में अन्तर में थोड़ी बहुत कातरता का अनुभव होना चाहिए। भजन का अर्थ ही है खोज करना- अनुसंधान करना। साधन से प्राप्त आस्वादन से बाह्य आवेश दूरी भूत हो जाता है। क्रमश: प्रेमभक्ति की पिपासा वर्धित होती है। अन्त में आकुल पिपासा हृदय में लिए साधक उपाय अन्वेषण में व्यग्र हो जाता है। प्राप्ति की पिपासा हृदय में जगने से विश्व में फिर कहीं भी मन नहीं जाता, समस्त प्रचेष्टाए अभीष्ट चरणों में ही निबद्ध हो जाती है।

श्रीपाद श्रीश्यामसुन्दर के चरणों में प्रार्थना ज्ञापन करते हैं- मुझे श्रीराधारानी का कृपापात्र बना दो- और कुछ नहीं चाहता। श्रीराधा के चरणों से ही तुम्हारे सेवारस का आस्वादन करुँगा- स्वतंत्र भाव से नहीं। मंजरीगण की राधा-स्नेहाधिका प्रीति है। "आमार ईश्वरी हन वृन्दावनेश्वरी। तार प्राणनाथ बलि भजि गिरिधारी।" श्रीराधारानी को छोड़ गिरिधारी का भजन नहीं। 'श्रीराधारानी को तुम्हारी अनुभूति में देकर एवं तुम्हें श्रीराधारानी की अनुभूति में देकर तुम दोनों की माधुरी आस्वादन करना चाहता हूँ; किन्तु समस्नेहा

भाव से नहीं, राधा–स्नेहाधिका प्रीति को हृदय में वहन कर।' श्रीभक्तिरसामृत ग्रन्थ में लिखा है–

संचारी स्यात् समोना वा कृष्णरत्याः सुहृद्गतिः।
अधिका पुष्यमाना चेद्भावोल्लास इतीर्यते॥ (2/5/18)

अर्थात् तद्भावेच्छात्मिका प्रीति सम्पन्ना सखीगण की श्रीराधारानी के प्रति प्रीति यदि श्रीकृष्ण विषयिणी प्रीति के समान अथवा किंचित् न्यून होती है तब श्रीराधारानी के प्रति रति श्रीकृष्ण विषयिणी रति रूप स्थायी भाव के संचारी में परिगणित होगी। किन्तु श्रीकृष्णरति की अपेक्षा श्रीराधा के प्रति रति यदि सतत अभिनिवेश वश सम्यक् प्रकार से वृद्धिशीला होती है तब उसे 'भावोल्लासा' नाम दिया जाता है। एवं यह भावोल्लासा रति ही राधास्नेहाधिका मंजरियों का स्थायी भाव होता है। यह भावोल्लासा रति ही श्रीमन् महाप्रभु की अनर्पितचरी करुणा का दान–गौड़ीय वैष्णव आचार्यगण की चरम हाद्र वस्तु है। श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामी अपने मन:शिक्षा में लिखते हैं–

मदीशानाथत्वे ब्रजविपिनचन्द्रम् ब्रजवने–
श्वरीम् ताम नाथत्वे तदतूल–सखीत्वेतू ललिताम्।
विशाखाम् शिक्षालीवितरणगुरुत्वे प्रियसरो
गिरिन्द्रो तत्प्रेक्षा ललित–रतिदत्वे स्मर मनः॥

'हे मन, तुम मेरी ईश्वरी श्रीराधा के नाथ के रूप में ब्रजविपिनचन्द्र श्रीकृष्ण को, श्रीकृष्ण की प्रिया के रूप में वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा का, श्रीराधा की अतुलनीय सखी रूप में ललिता का एवं अपनी शिक्षागुरु के रूप में विशाखा का स्मरण कर। श्रीराधाकुण्ड एवं गोवर्धन का उनके दर्शनोपयोगी ललित रतिदायक रूप में (राधास्नेहाधिका रतिदायक रूप में) स्मरण कर।'

समस्नेहा विषमस्नेहा, ना करिह दूइ लेहा,
कहि मात्र अधिक स्नेहागण।
निरन्तर थाके संगे, कृष्णकथा लीला रंगे
नर्मसखी एइ सव जन॥
श्रीरूप मंजरी आर, श्रीरति मंजरी सार,
लवंग मंजरी मंजूलाली।

श्रीरस मंजरी संगे, कस्तूरिका आदि रंगे,
प्रेमसेवा करे कूतूहली ॥
ए सभार अनुगा हैया, प्रेम सेवा निव चाइया,
इंगिते बुझिवे सब काज।
रूपे गुणे डगमगि, सदा हव अनुरागी
वसति करिव सखी माझ ॥

(प्रेमभक्तिचन्द्रिका)

हे श्याम! तुम्हारी प्रियाजी का भजन करुंगा, आनुषंगिक भाव से तुम्हारा भजन अपने आप हो जाएगा। कारण तुम दोनों परस्पर के कोटि प्राणों की अपेक्षा अधिक प्रिय हो।'

प्राणेभ्योहप्यधिकप्रिया मुररिपोर्या हन्त यस्या अपि
स्वीय-प्राण-परार्धतोहपि दयितास्तत्पादरेणोः कणाः।
धन्याम् ताम् जगतीत्रये परिलसज्जंधाल-कीर्तिम् हरेः
प्रेष्ठावर्ग-शिरोहग्र-भूषणमणिम् राधाम् कदाहम् भजे ॥

(उत्कण्ठादशकम्)

"जो श्रीकृष्ण को प्राणों से अधिक प्रिय हैं एवं श्रीकृष्ण की पदरेणु-कणा जिन्हें अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय है, जिनकी सुशोभन कीर्ति विश्व में सर्वत्र ही परिव्याप्त है- उन्हीं श्रीकृष्ण की प्रेयसी वर्ग की शिरोरत्न श्रीराधा का मैं कब भजन करुंगा? श्रीराधा के इस एकान्तिक भजन के फल स्वरूप जो अनर्ध सम्पद लाभ होती है वह अति सुदुर्लभ है। श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती पाद लिखते हैं-

दूरे स्निग्धपरम्परा विजयताम् दूरे सुहृन्मण्डली
भृत्याः सन्तु विदूरतो ब्रजपतेरन्यः प्रसंगः कुतः।
यत्र श्रीवृषभानूजा कृतरतिः कुन्जोदरे कामिना
द्वारस्था प्रियकिंकरी परमहम् शोष्यामि कांचिधवनिम् ॥

(राधारस सुधानिधि-74)

अर्थात् "जिस स्थान से श्रीकृष्ण के स्नेह-रस के आधार माता-पितागण एवं उनके सुहृत-सखागण दूर अवस्थान करते हैं, उनके भृत्यगण तो अति दूर ही अवस्थान करते हैं, अतः अन्य जन भी दूर ही अवस्थान करेंगे यह तो

स्पष्ट ही है। उस परम रहस्यमय स्थान ब्रज निकुंज के भीतर वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाकामी श्रीकृष्ण के संग केलि विलास में प्रवृत्त होगीं तब उनकी प्रिय किंकरी मैं कुंज द्वार पर खड़ी होकर उनकी श्रेष्ठ कांचिध्वनि श्रवण करुंगी– यही कामना है।" कांची ध्वनि के श्रवण से ही तुम्हारी लीला का अवसान समझूगी। सेवा का समय आएगा। आनन्दित मन से कुंज के भीतर प्रवेश करुंगी–

मुखेर मुछार धाम ख्रावाव पान गुया।
धामेते वातास दिव चन्दनादि चूया॥
वृन्दावनेर फूलेते गाँथिया दिव हार।
विनाइया वान्धिव चूडा कुन्तलेर भार॥
कपाले तिलक दिव चन्दनेर चाँद।
नरोत्तम दास कहे पिरीतेर फाँद॥ (प्रार्थना)

हे श्याम! तुम्हारी प्रियाजी 'ब्रजनवयौवतमौलिमालिका' हैं, अर्थात् अखिल ब्रजसुन्दरियों की शिरोभूषण–मालिका। सभी गोपसुन्दरियों को छोड़ जब तुम उनसे मिलने के निमित्त व्यग्र होंगे, तब मेरी सेवा की आवश्यकता होगी।'

यस्याः कान्ततनुल्लसत्–परिमलेनाकृष्ट उच्चैः स्फूर–
देगोपीवृन्द–मुखारविन्द–मधु तत्प्रीत्या धयन्नप्यदः।
मुन्चन् वर्त्मनि र्वभ्रमिति मदतो गोविन्दभृंगः सताम्
वृन्दारण्ये–वरेण्य कल्पलतिकाम् राधाम् कदाहम् भजे॥

(उत्कण्ठादशकम्)

"गोविन्द भृंग ब्रजसुन्दरियों के सुशोभन मुखकमल के मकरन्द का अतिशय प्रीति के संग पान करके भी उसे तुरन्त त्याग कर जिसके मनोज्ञ अंगोल्लसित परिमल से समधिक आकृष्ट हो मत्तत्तावश पथ पर इतस्तत् परिभ्रमण कर रहे हैं– उन्हीं करता है। बाहरी व्यवहार से जीवन नष्ट होता है। श्रीमत् जीव गोस्वामीपाद लिखते हैं– आन्तरिक भजन की तो बात ही दूर, बाहर देह से श्रवण, कीर्तन, अर्चन आदि भजन के समय भी राधाकिंकरित्व का अभिमान चाहिए। यही गौड़ीय–वैष्णवों की भूतशुद्धि है। "अथ तेषाम् शुद्धभक्तानाम् भूतशुद्धयादिकम् यथामतिर्वयाख्यायते। तत्र भूतशुद्धि–र्निजाभिलषित–भगवद्–सेवौपयिकत पार्षदेहेभावनापर्यन्तैव तत्सेवैक–

पुरुषार्थिभिः कार्यया निजानुकूल्यात्।" (भक्तिसन्दर्भः-286) अर्थात् यहाँ शुद्ध भक्त की भूत शुद्धि के प्रकारो की व्याख्या की गई है। निज अभिलषित भगवत् सेवा के उपयोगी भगवद्-पार्षद-देह भावना पर्यन्त भूतशुद्धि। स्वयं के सिद्ध स्वरूप का चिन्तन ही शुद्ध भक्त की यर्थाथ भूतशुद्धि है। क्योंकि जो श्रीभगवान् की सेवा को ही मुख्य पुरुषार्थ मानते हैं, उनके पक्ष में यही निज भाव एवं भजन के अनुकूल है।

श्रीपाद प्रार्थना करते हुए सम्बोधन करते हैं-

"हे उर्जेश्वरि! कार्तिक मास का एक नाम ऊर्जा है, अर्थात् हे कार्तिकाधिष्ठात्री देवि!" सम्बोधन में श्रीराधा का उत्कर्ष सूचित है। भविष्य पुराण के उत्तर खण्ड में लिखा है-

संकेतावसरे च्यूते प्रणयतः संसज्जया राधया,
प्रारभ्य भृकुटीम् हिरण्यरशनादाम्ना निवद्धोदरम्।
कार्तिक्याम् जननीकृतोत्सववरे प्रस्तावनापूवर्वकम्,
चाटनि प्रथयन्तमात्मपुलकम् ध्यायेम दामोदरम॥

अर्थात् "एक बार कार्तिक मास की पूर्णिमा की रात्रि को संकेत समय के व्यतीत हो जाने पर श्रीकृष्ण ने श्रीराधा के कुंज में आगमन किया तो श्रीराधा ने कुपित हो भृकुटिपूर्वक स्वर्ण खचित नीवि द्वारा उन्हें उदरदेश से बांध दिया। उसके उपरान्त श्रीकृष्ण ने स्वीय जननी कृत उत्सव की सब बातें कहकर चाटू वाक्यों से प्रेयसी श्रीराधा को प्रसन्न किया था एवं श्रीराधा ने भी उनका बंधन खोल दिया था। तभी से श्रीकृष्ण 'नीविदामोदर' अथवा दामोदर नाम से विख्यात है। हम उन्हीं पुलकांचित दामोदर का ध्यान करते हैं।

कार्तिक 'दामोदर' मास है। इस मास में केवल श्रीयशोदा ही श्रीकृष्ण को बांधा था ऐसा नहीं है, श्रीराधा ने भी बांधा था। प्रथमतः उत्कण्ठा के अभाव से माँ यशोदा की बंधन-रज्जू दो अंगुली छोटी रह जाती थी एवं बंधन कार्य सम्पन्न करने में उन्हें बहुत परिश्रम करना पड़ा। महाभावमयी श्रीराधा में उत्कण्ठा का ऐसा प्राचुर्य है कि वे इच्छा मात्र से ही अनायास श्रीकृष्ण को बांध लेती है एवं बंधन मुक्त भी कर देती हैं। 'कार्तिकाधिदेवी' कहकर श्रीराधा का विपुल उत्कर्ष घोषित कर रहे हैं।

श्रीपाद कहते हैं- 'हे कार्तिकाधिदेवी! तुम्हारा अभिवादन करते हुए चाटूवाक्यों से तुम्हारे निकट प्रार्थना करता हूँ- 'तुम्हारी दासी जानकर श्रीकृष्ण मुझ पर अधिक कृपा करे।' वे अपने हाथों से तुम्हारी परिचर्या करेंगे, मैं उनकी सहायता करुंगी, तब तुम्हारी निजजन ज्ञान से मेरे प्रति उनकी समधिक करुणा वर्षित होगी।'

वासन्तीकुसुमोत्करेण परित सौरम्यविस्तारिणा
स्वेनालन्कृतिसंचयेन बहुधाविर्भावितेन स्फूटम्।
सोत्कम्पम् पुलकोदगमैर्मूरभिदा द्राग भूषितागीम् क्रमै-
-र्मोदेनाश्रुभरैः प्लुताम् पुलकिताम् राधाम् कदाहम् भजे॥

(स्तवावली-उत्कण्ठादशकम्)

"जो पुलकाकुल एवं कम्पायमान श्रीकृष्ण द्वारा सर्वत्र परिमल विस्तारकारी वसन्तकालीय कुसुम समूह द्वारा एवं स्वनिर्मित नाना अलंकार समूह से शीघ्र भूषितांगी हो हर्षजनित अश्रुओं से परिलुप्त एवं पुलकित हुई थी- उन श्रीराधा का मैं कब भजन करुंगा।" तुम्हारे ऐसे भजन के लिए श्रीकृष्ण को मेरी आवश्यकत होगी। तब वे तुम्हारी किंकरी जानकर मुझ पर अधिकतर कृपा करेंगे। हे स्वामिनि! तुम्हें छोड़ इस विश्व में मेरा और कोई नहीं है! परम करुण श्रीगुरुदेव ने तो तुम्हारे ही श्रीचरणों में मुझे समर्पित किया है। इस जगत के संग मिलकर मैं नहीं चलूँगा। निरन्तर तुम्हारी ही भावना करुंगा। तुम्हारी सेवा के स्रोत में मन-प्राण उड़ेल दूँगा। श्रीराधा के दास्य भाव से जिनका चित्त-मन आक्रान्त है, उनके ऐसे ही भाव रहते हैं।

इस प्रकार जिस परिमाण में महान मन के संग सहृदय साधक चित्त का भाव-साधारण्य होगा, उसी परिमाण में ही उत्कण्ठा, आर्ति का संक्रमण होगा एवं उसके अनुरूप ही अभीष्ट का माधुर्य आस्वादन भी होगा।

इस श्लोक में उत्कण्ठित श्रीपाद स्वाभीष्ट सिद्धि के लिए श्रीयुगल के प्रणयि पार्षदगणों से कृपा प्रार्थना कर रहे हैं। श्रीश्रीराधाकृष्ण का भाव विभु एवं स्वप्रकाश होते हुए भी जिनकी सहायता के बिना क्षण काल के लिए भी पुष्टि लाभ नहीं कर पाता।

विभुरतिसुखरूपः स्वप्रकाशोहपि भावः
क्षणमपि नहि राधाकृष्णयो-र्या ऋतु स्वाः।

प्रवहति रसपुष्टिम् चिद्विभूतिरिवेशः
शृयति न पदमासाम् कः सखीनाम् रसज्ञः ॥

अर्थात् सर्वव्यापक ईश्वर जैसे चित्त-शक्ति के बिना पुष्टि को प्राप्त नहीं होते उसी प्रकार अति महान स्वप्रकाश एवं सुखस्वरूप श्रीराधाकृष्ण का जो भाव है वह भी सखियों की सहायता के बिना क्षणकाल के निमित्त भी इस-पुष्टि लाभ नहीं करता। अत: इन सब सखियों के श्रीचरणों का आश्रय कौन रसज्ञ भक्त नहीं करेगा।

सखी बिना एई लीलार पुष्टि नाहि हय।
सखी लीला विस्तारिया सखी आस्वादय॥ (चै.च.)

सुबल, उज्ज्वल, मधुमंगल आदि प्रियनर्मसखागण आत्यान्तिक रहस्यज्ञ एवं सखीभाव समाश्रित हैं। "आत्यान्तिकरहस्यज्ञः सखीभावसमाश्रित:" (उ. नी.) "सखीभाव: श्रीकृष्णस्तत् प्रेयस्ये परस्परमेलनेच्छा तम् समाश्रित इति तेन तस्य पुरुषभावश्चावृत इति भाव:" (लोचनरोचनी टीका) अर्थात् सखी भाव समाश्रित का अर्थ है- श्रीकृष्ण एवं उनकी प्रेयसीगण की जो परस्पर मिलन इच्छा है, उस भाव का जो सम्यक् रूप से आश्रय करते हैं वे सखीभाव समाश्रित हैं। इसके द्वारा उनका पुरुष भाव आवृत रहता है, यह समझा जाता है। श्रीपाद इसका दृष्टान्त लिखते हैं-

प्रत्यावर्त्तयति प्रसादय ललनाम् क्रीडा-कलिप्रस्थिताम्।
श्य्याम् कुन्जग्रहे करोत्यघभिदः कन्दर्पलीलोचिताम्॥
स्विन्नम् वीजयति प्रिया-हृदि परिस्तस्तांगमूच्चैरमूम्
क्व श्रीमानधिकारिताम् न सुवलः सेवा-विधौ विन्दति?

श्रीरूप मंजरी सुबल के प्रति अपनी भक्तिमति सखी को सम्बोधन करते हुए कहती हैं- 'सखि! सुबल को श्रीकृष्ण की किस सेवा का अधिकार प्राप्त नहीं है?? श्रीकृष्ण प्रेयसीगण श्रीकृष्ण के संग क्रीड़ा करते-करते कलह कर प्रस्थान कर जाती है तो सुबल जाकर विविध विनय-वाक्यों से उन्हें प्रसन्न कर लौटा लाते हैं एवं कुंजग्रह में कन्दर्पलीलोचित्त अपूर्व शैय्या रचना भी कर देते हैं। और जब श्रीकृष्ण स्मर-क्रीड़ा के अवसान पर क्लान्त हो प्रेयसी के वक्ष पर शयन कर रहे होते हैं, तब सुबल वीजन द्वारा उनकी सेवा करते हैं।

श्रीपाद प्रार्थना करते हैं– 'हे श्रीराधामाधव के प्रणयीजनगणा सम्बोधन अति निगूढ़ है। श्रीपाद उज्ज्वल नीलमणि में कहते हैं– प्रेम का कोई उच्चतम स्तर 'विश्रम्भ' को प्राप्त कर प्रणय हो जाता है। यह 'विश्रम्भ' शब्द पारिभाषित है। 'विश्रम्भः प्रियजनेन सह सस्याभेद-मननम् (श्रीजीवपाद) अर्थात् 'प्रीति की अतिशयता में प्रियजन के संग स्वयं के अभेद मनन को ही विश्रम्भ कहा जाता है। परस्पर से गुप्त रखने जैसे ुछ रहता ही नहीं। 'विश्रम्भो विश्वासः सम्भ्रम-राहित्यम्' (श्रील विश्वनाथ) अर्थात् 'विश्रम्भ' का अर्थ है सम्भ्रम-गौरव राहित्य एवं विश्वास! अतः यह प्रणयी सखा एवं सखियाँ मधुर रस युगल के परम विश्वास-भाजन हैं, श्रीयुगल-किशोर भी इन्हें अभिन्न प्राण मानकर मन की निगूढ़ कथा भी खुलकर कह देते हैं एवं यह भी उसके अनुरूप सेवा करते हैं। श्रीराधामाधव के पूर्वराग में श्रीराधा की दशा दर्शन कर सखी की उक्ति हैं–

राई केन वा एमन हेला। कि रूप देखिया आइला॥
मरम कह ना मोय। वेयाधि धूचाउ तोय॥
ना पारिबूझिते रीत। सब देखि विपरीत॥
सोनार वरण तनु। काजर भै-गेल जनू॥
नयाने बहये धारा। कहिते वचन हारा॥
ज्ञानदास मने जाप। कहिले घूचिवे ताप॥

(पदकल्पतरु)

श्रीमति भी प्रणयिनी सखी के निकट मर्म की बात खुल कर कहती हैं–

आलो मुई केन गेलूँ यमुनार जले।
छलिया नागर चित्त हरि निल छले॥
रूपेर पाथारे आँखि डूबिया रहित।
यौवनेर वने मन हाराइया गेल॥
धरे याइते पथ मोर हैल अफुरान।
अन्तरे विदरे हिया किवा करे प्राण॥
चन्दनेर चाद माझे मृगमद घान्दा।
तार माझे पराण-पुतली रैल बांधा॥
कटि पीतवसन रसना ताहे जडा।

विधि निरमिल घाटे कलंकेर कोंडा॥
जाति कुल शील सब हेन बूझि गेल।
भुवन भरिया मोर घोषणा रहिल॥
कुलवती हैया दू-कुले दिलूँ दूख।
ज्ञानदास कहे - दृढ करि थाक बुक॥ (वही)

उसी प्रकार पूर्वराग की भूमि पर माधव की दशा दर्शन कर सुबल की उक्ति–

अनुक्षण हेरिये तोहे आन चित्त।
दूर गेउ मुरली-आलापन गीत॥
मरम न कह काहे प्राण-सांगाति।
तूया मुख हेरि ज्वलत मझू छाति॥
मरकत जिनिया कलेवर का ति।
सो अब झामर कुवलय भाँति॥
हेरइते निरमल लोचन जोर।
को जाने कैछे करत हिया मोर॥
शुनइते एछन सहचर-वाणी।
छोडि निश्वास उलटायल पाणि॥
दूर अवगाह मरम अभिलाष।
समुझिया कह घनश्यामेर दास॥

(पदकल्पतरु)

सुबल की बात सुनकर श्रीकृष्ण निसंकोच हो उन्हें मर्म की कथा खुल कर कहते हैं–

कालियादमन दिनमाह। कालिंदी कूले कदम्बक छाह॥
कत शत ब्रज-नव-बाला। पेखलूँ जनू थिर विजुरीक माला॥
तोहे कहों सुबल सांगाति। तव धरि हाम ना जानो दिन राति॥
तँहि धनी-मधि दूइ चारि। तँहि मनमोहिनी एक नारी॥
सो रहूँ मझू मने पैठि। मनसिज धूम धूम नाहि दिठि॥
अनुखने तहिक समाधि। को जाने कैछन विरह - वेयाधि॥
दिने दिने क्षीण भेल देहा। गोविन्द दास कह एछे नवलेहा॥

(पदकल्पतरु)

उसके उपरान्त प्रणयी सखाओं एवं सखियों की सहायता से उत्कण्ठामय मिलन होता है। इसी प्रकार मान, कलहान्तरिता, प्रेमवैचित्तय, विरह, मिलन आदि सर्वत्र ही प्रणयी सखा एवं सखियों के सान्निध्य में युगलविलास रस परम-पुष्टि लाभ करता है। परकीय भाव है, तभी यह सब कार्य नित्य है- सामयिक नहीं। श्रीपाद कहते हैं- 'हे श्रीराधामाधव के प्रणयिजनगण! तुम उनके संग श्रीवृन्दावन में चारों ओर विचरण करते हो। तुमने श्रीयुगल की जो सेवा प्राप्त की है, यह दीन जन भी उसी प्रकार की सेवा के अभाव में दुखी है। तुम परम दयामय हो, इस दीन जन की कातरता दर्शन कर इसे एक बिन्दु करुणा दान करो।'

हे प्रणयिजनगण! युगल पार्षद।
तोमादेर प्राणधन श्रीराधामाधव॥
युगलेर संगे नित्य एइ वृन्दावने।
सुखे विचरण कर करिया सेवने॥
आमार मरम दुःख करि विवेचना।
सुप्रसन्न हैया सवे करह करुणा॥21॥

गिरिकुन्जकुटीरनागरौ, ललिते देवी सदा तवाश्रवो।
इति ते किल नास्ति दुष्करम्, कृपयांगी कुरू मामतः स्वयम्॥22॥

अन्वयः (हे) देवी ललिते! गिरिकुन्जकुटीरनागरौ (गिरि-कुन्जकुटीरेषु नागरौ क्रीडाविद्ग्धो श्रीश्रीराधामाधवौ) सदा तवाश्रवो (वचनस्थो भवतः, वचने स्थित आश्रव इत्यमरः) इति (हेतोः) ते (तव) किल (निश्चिमेव, किमपि) दूष्करम नास्ति। अतः स्वयं (स्वातन्त्रेण) कृपया माम् अंगीकुरू।

अनुवादः हे देवी ललिते! ब्रज निकुंज नागर और नागरी श्रीश्रीराधामाधव सर्वदा तुम्हारे वाक्य के आधीन हैं, तभी कहती हूँ तुम्हारे लिए कुछ भी असाध्य नहीं। तुम स्वतन्त्र भाव से मुझ पर कृपा कर मुझे अंगीकार करो (अर्थात् श्रीयुगल सेवा में नियोजित करो)।

मकरन्दकणा व्याख्या।

अंगीकारः

(22) श्रीपाद अपने स्वाभावोचित्त दैन्य से आर्ति से भरकर श्रीयुगल के पार्षदगणों के चरणों में सकातर प्रार्थना ज्ञापन कर रहे हैं। ब्रज रस के

साधक को भी इस आदर्श से अनुप्राणित होना होगा। श्रीश्रीराधामाधव की सेवा लाभ के निमित्त जिनकी तीव्र वासना है वे श्रीवृन्दावन में स्थिर होकर नहीं रह सकेंगे। श्रीवृन्दावन की नैसर्गिक शोभा उनके चित्त में इष्ट का विपुल उद्दीपन जगा देगी। प्रेममय श्रीमन्महाप्रभु वृन्दावन का नाम श्रवण करते ही प्रेम से अधीर हो जाते थे। "अन्यदेशे प्रेम उछले 'वृन्दावन' नामे॥" (चै.च)

जब श्रीवृन्दावन आए–

मयूरेर कण्ठ देखि कृष्ण स्मृति हैला।
प्रेमावेशे महाप्रभु भूमिते पडिला॥
प्रभु के मूर्च्छित देखी सेइत ब्राह्मण।
भट्टाचार्य-संगे करे प्रभु-सन्तर्पण॥
आस्ते व्यास्ते महाप्रभूर लैया बहिर्वास।
जलसेक करे अंगे वस्त्रेर वातास॥
प्रभु-कर्णे 'कृष्ण-नाम' कहे उच्चकरि।
चेतन पाइया प्रभु यान गडागडि॥
कन्टक दुर्गम वने अंग क्षत हैल।
भट्टाचार्य कोले करि प्रभु सुस्थ कैल॥ (चै.च.)

★ ★ ★

नीलाचले छिला जबे प्रेमावेश मन।
वृन्दावन याइते पथे हैल शतगुण॥
सहस्र गुण प्रेम बाढे मथुरा दर्शन।
लक्ष गुण प्रेम बाढे भ्रमे यवे वने॥ (वही)

तीव्र भजन से उत्कण्ठा आएगी। 'यह वही वृन्दावन है, यहाँ तुम्हारा नित्यविहार है। एक बार दर्शन दो। तुम्हारे अदर्शनों से अब प्राण और इस देह में नहीं रहना चाहते।' विरही भजननिष्ठ साधक इस प्रकार आर्ति लेकर ही ब्रज में वास करते हैं। श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती लिखते हैं– "शरणमूपयास्यामि विकल:" कब विकल चित्त हो वृन्दावन की शरण ग्रहण करुंगा। कारण यहाँ के वृक्ष-लता, सर, सरित, पशु-पक्षी इत्यादि में श्रीयुगलकिशोर की विपुल स्मृति विजड़ित है।

राधाकृष्णो परम कूतूकाद्यल्लतापादपानाम्
चित्वा पुष्पादिकमुरुविधम् श्लाधमानौ जूषाते।
स्नानाद्यम् यत सरसि कुरुतः खेलतो यतखगादयैः
वृन्दारण्यम् परमपरमम् तन्न सेवेत को वा?

(वृन्दावन महिमामृतम्–2/10)

"श्रीराधाकृष्ण परम कौतुक वश जिस स्थान की वृक्ष–लाताओं के पुष्प आदि चयन कर प्रशंसा करते हुए उन्हें निज सेवा में नियोजित करते हैं। जहां के सरोवरो में जो नित्य स्नान आदि करते हैं एवं जहां के विहंग आदि के संग क्रीड़ा करते हैं– ऐसे परम सुन्दर वृन्दावन की कौन सेवा नहीं करना चाहेगा?"

नित्य सिद्ध परिकर श्रीपाद साधन रस का आस्वादन करते हुए चल रहे हैं। श्रीललिता के निकट प्रार्थना करते हैं। हे देवी ललिते! श्रीराधामाधव सदा तुम्हारे वाक्यों के आधीन हैं। तुम्हारे वाक्य का लंघन वे कभी नहीं करते। "दुर्ल्लंधवाक्यप्रखरा प्राख्याता गौरवोचित्ता" (उ.नी.) जिनके वाक्यों का कोई भी लंघन नहीं कर पाता, वे प्रखरा है, सर्वदा सभी के गौरव की पात्र है। "घृतकृष्णेक्षणौत्सुक्या ललिता–भीति–मानिनी" एक बार ललिता ने मान शिक्षा दी श्रीकृष्ण अनुनय विनय कर विफल मनोरथ हो चले गए एवं श्रीमती कलहान्तरिता दशा को प्राप्त हुई। श्रीललिता श्रीराधा को मान त्याग न करने की आज्ञा देकर अन्य कुंज में जाकर बैठ गई थी। सो श्रीराधा में अब मान नहीं होने पर भी वे ललिता के भय से मानिनी होकर बैठी रहीं। श्रीश्यामसुन्दर के आने पर श्रीमती परम उत्कण्ठित होते हुए भी ललिता के भय से उसे मिलन नहीं कर पा रहीं। इसी कारण श्रीश्यामसुन्दर भी सतत श्रीललिता की प्रसन्नता की अपेक्षा रखते हैं। सभी सखियाँ भी ललिता के वाक्य के आधीन हैं। कुछ भी इधर–उधर होने पर वे शासन करती हैं।

मुग्धे तूष्णीम् भव शठकलामंडलाखण्डलेन,
त्वम् मन्त्रेण स्फुटमहि वशीकृत्य तेनानुशिष्टा।
कुन्जे गोवर्धनशिखरिणो जागरेनाद्य राधाम्
दृष्टवाप्यूच्चैः सखि यदसि मे चाटूवादे प्रवृत्ता॥

(उज्ज्वल नीलमणि)

श्रीराधा मानिनी हैं। श्रीकृष्ण उनके मान भंजन के निमित्त चित्रा की शरण ग्रहण करते हैं। नाना चाटूवाक्यों से चित्रा को प्रसन्न कर श्रीराधा के मान भंजन के लिए प्रेरित करते हैं। चित्रा श्रीराधा के मान भंजन की चेष्टा कर रही है, ऐसी सूचना पा कर श्रीललिता चित्रा से कहती हैं– 'मुग्धे'! शान्त रह! लगता है शठराज ने तुम्हें वशीभूत कर यहां भेजा है। क्या आश्चर्य है! तुम्हारे स्वभाव की बलिहारी जाऊँ! श्रीराधा ने गोवर्धन पर एक कुंज में सारी रात्रि जागरण कर बिताई है, यह बात जान कर भी तुम चाटूवाक्यों का प्रयोग कर रही हो! अब तक जो कहा 'सो ठीक, किन्तु अब और अनुनय न करना; जाओ यहां से चली जाओ।'

श्रीपाद कहते हैं– हे ललिते! मैं आज तुम्हारी कृपा के द्वार पर भिखारी हूँ। मैं सभी प्रकार से अयोग्य होते हुए भी तुम्हारी कृपा होने पर मेरी चिर–आकांक्षित श्रीराधामाधव की पाद–पद्म सेवा लाभ कर मैं अति धन्य हो सकता हूँ। इस अयोग्य को योग्यता दान कर युगल सेवा में नियुक्त करो। स्वतन्त्र भाव से करुणा कर युगल सेवा का आदेश करो।'

लालिता आदेश पाइया, चरण सेविव याइया,
प्रिय सखी संगे हर्ष मने।
दुहुँ दाता-शिरोमणि अति दीन मोरे जानि,
निकटे चरण दिवे दाने॥ (प्रार्थना)

स्वरुपोत्थ प्रार्थना है। तभी प्रार्थना की ऐसी माधुरी है। गौड़ीय–वैष्णव को स्वरूप जागृत कर समझना होगा। स्वरूप की स्मृति कितनी मनोज्ञ है। मैं श्रीराधा की अयोग्य किंकरी हूँ– इसी आकांक्षा से गौड़ीय–वैष्णव की जीवन भरा है! श्रीपाद की प्रार्थना तरंग इस भाव से चल रही हैं।

हे देवी ललिते सखि करि निवेदन।
तोमार वचन-स्थित युगलरतन॥
सखीर परम प्रेष्ठ एइ तव यश।
तोमार आसाध्य नाहि, दोंहे तव वश॥
वृन्दावन मध्ये नव निकुन्ज-कुटीरे।
सेवन करिब तव निकुन्ज-नागरे॥
ताहार उपाय कर कृपा करे तूमि।

एइ त प्रार्थना करे श्रीरूपगोस्वामी ॥22॥

भाजनम् वरमिहासि विशाखे, गौरनीलवपुषोः प्रणयानाम्।
त्वम् निजप्रणयिनोर्मयि तेन, प्रापयस्व करुणाद्रकटाक्षम्॥23॥

अन्वयः (हे) विशाखे! त्वम् इह (गोकुले) गौरनीलवपुषोः (श्रीराधामाधवयोः) प्रणयानाम् वरम् (श्रेष्ठम्) भाजनम् (पात्रम्) असि। तेन (हेतूना) निजप्रणयिनोः (त्योः) करुणार्द्रम् कटाक्षम् मयि प्रापयस्व।

अनुवादः हे विशाखे! इस वृन्दावन में तुम श्रीराधामाधव की श्रेष्ठ प्रणय-भाजन हो। अतः तुम मुझे निज प्रणयि श्रीराधाकृष्ण का कृपाकटाक्ष प्राप्त कराओ।

मकरन्दकणा व्याख्या।

कृपा-कटाक्षः

(23) श्रीपाद श्रीमती विशाखा के श्रीचरणों में प्राणों की प्रार्थना ज्ञापन कर रहे हैं। 'श्रीराधामाधव की तुम सर्वाधिक प्रणय भाजन हो, मुझे निज-प्रणयि श्रीराधामाधव का कृपा-कटाक्ष प्राप्त कराओ।' श्रीमती की परम विश्वास भाजन है श्रीमती विशाखा, श्रीमती की अभिन्न विग्रहा हैं। श्रीमत् रघुनाथदास गोस्वामीपाद लिखते हैं-

भावनाम-गुणादीनामैकयात् श्रीराधिकैव या।
कृष्णेन्दोः प्रेयसी सा मे श्रीविशाखा प्रसीदतू॥

(विशाखानन्ददस्तोत्र)

अर्थात् 'भाव, नाम एवं गुण आदि की एकता हेतु जो श्रीराधिका के ही समान हैं, वे श्रीकृष्णचन्द्र प्रेयसी श्रीविशाखा मेरे प्रति प्रसन्न हों। श्रीयुगल की लीला भूमि पर श्रीविशाखा की अति रहस्यमयी भूमिका की बात वर्णित है। विशाखानन्दद स्तोत्र में देखा जाता है-

विशाखा-गूढ-नर्मोक्ति-जित-कृष्णार्पित-स्मिता।
नर्म्माध्याय-वराचार्य्या भारती-जयि-वाग्मिता॥
विशाखाग्रे रहःकेलि कथोदधाटकमाधवम्।
ताडयन्ती द्विरब्जेन सभ्रूभंगेन लीलया॥ (वही)

अर्थात् विशाखा की गूढ़ परिहासोक्ति द्वारा पराजित श्रीकृष्ण के दर्शन कर जो मृदुमंद हास्य करती हैं। परिहास-अध्ययन के विषय में जो श्रेष्ठ

अध्यापिका हैं। जिनकी वाग्मिता सरस्वती को भी पराभूत करती है। विशाखा के सम्मुख श्रीकृष्ण रह:केलि की कथा प्रकाश करते हैं तो जो भ्रू-भंगिमा के सहित लीला-कमल द्वारा श्रीकृष्ण की ताड़ना करती हैं। श्रीउज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थ में श्रीपाद ने श्रीविशाखा के अति निगूढ़ सरस दौत्य की कथा व्यक्त की है। उसमें पता चलता है कि श्रीविशाखा श्रीश्रीराधामाधव की कितनी करुणा-भाजन हैं।

त्वमसि मदसेवो वहिश्चरन्त, स्त्वयि महती पटुता च वाग्मिता च।
लघुरपि लघिमा न मे यथा स्या-न्मयि सखि रंजय माधवम् तथादया॥

(दूतिभेद-87)

श्रीराधा विशाखा के प्रति कहती है- 'सखि, तुम मेरी बहिश्चर प्राण स्वरूपा हो, तुममें महती पटुता एवं वाग्मिता दोनों ही हैं। अतएव मुझे किंचित् मात्र भी लघु किए बिना आज तुम माधव को मेरे प्रति अनुरक्त करो।' इस श्लोक की आनन्दचन्द्रिका टीका में श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीपाद जो अपूर्व आस्वादनी प्रदान करते हैं वह सत्य ही अतुलनीय है। उसका अनुवाद इस प्रकार है-

"श्रीराधा विशाखा से कहती हैं, 'प्रिय सखी, तुम मेरी बहिश्चर अर्थात् बाहर विचरणशील प्राण हो, इसलिए मुझे तुम पर अतिशय विश्वास है। और फिर तुममें चातुर्य एवं वाक्पटुता भी विद्यमान है। अतएव मेरा निवेदन यह है कि तुम कुसुम चयन के छल से वन भ्रमण करते-करते श्रीकृष्ण के निकट गमन करो एवं उन्हें देखा नहीं इस प्रकार अभिनय करते हुए उन्हें सुनाते हुए अपनी सखियों के संग कथोपकथन करना। इस प्रकार बात करना अन्यान्य ब्रजवधुओं के प्रसंग से मेरे रूप, गुण, प्रेम आदि का आधिक्य वर्णित हो।

वह सुनते ही श्रीकृष्ण तुम्हारे निकट आकर जिज्ञासा करेंगे- "सखी, इतनी अपूर्व माधुर्यवती कहकर किसका कीर्तन कर रही हो?"

तब तुम आशंका एवं सम्भ्रम पूर्वक जिह्वा दंशन करते हुए कहना- 'नाना, मैंने तो किसी का भी वर्णन नहीं लिया।' श्रीकृष्ण कहेंगे- 'सखि! भय कैसा कहने में कोई दोष नहीं होगा। तुमने कहा नहीं किन्तु फिर भी मैं उसका परिचय जान गया हूँ।'

तुम कहना– 'माधव! उसके परिचय से तुम्हें क्या प्रयोजन?' वह कहेगा– 'सखी, उसके संग मेरा महत् रहस्य है।' तुम कहना– माधव! जाओ जाओ, उसके और तुम्हारे स्वभाव में बहुत पार्थक्य है, अतः उसके संग तुम्हारा कोई रहस्य हो ही नहीं सकता।

वह कहेगा– 'सखी, तुमने स्वभाव में क्या पार्थक्य देखा, कहो तो तुम कहना– 'माधव! तुम लम्पट हो, वह पतिव्रता है। तुम चंचल हो वह धीर हैं। तुम धर्म-कर्महीन हो, वह सदा देव-पूजा आदि में रत रहती हैं। तुम अशु चि हो, वह त्रिसंध्या स्नान करने वाली है एवं स्वच्छ वस्त्र धारण करने वाली है।

यह बात सुनकर श्रीकृष्ण कहेगा– 'विशाखे, मैं भी ब्रह्मचारी हूँ, इस विषय में दुर्वासा मुनि ही प्रमाण हैं। गोपालतापनी श्रुति वे मेरा ब्रह्मचाश्रीरूप में वर्णन करते हैं। और जो तुम मुझे चंचल कह रही हो, वह किस प्रकार सम्भव है? कारण मैं पूरे एक सप्ताह काल तक गोवर्धन-गिरि को धारण कर स्थिर भाव से खड़ा रहा था। वह तो तुम सभी ने देखा था। और मैं धर्म-कर्महीन हूँ ऐसा तुमने कैसे कहा? कारण पितृ-देव की आज्ञा से मैं भागुरी मुनि के निकट विष्णु मन्त्र से दीक्षित हूँ। पौर्णमासी, गार्गी, नन्दीमुखी, सभी यह जानती हैं। और मैं अशुचि हूँ, वह किस प्रकार? साक्षात् शुचि (शृंगारः शुचिरुज्ज्वलः) मूर्तिमान हो अवतीर्ण हुआ हूँ। तुम्हारा अनुभव ही इस विषय में प्रमाण है। तब तुम कहना– माधव! फिर भी तुम पुरुष जाति हो, वे कुलजा है, वे तुम्हारी ओर देखेंगी भी नहीं।

वह कहेगा– सखि! वे मुझे ना देखें, किन्तु मैं उस धर्मवती को दूर से देख कर धन्य होऊंगा।'

तुम कहना– 'माधव! देखने का क्या उपाय है?

वह कहेगा– सखि! एक उपाय है! मैं गोवर्धन कन्दरा में एक सूर्य मूर्ति स्थापना कर एवं अपने हाथों से मन्दिर लेपन आदि कर दूर अवस्थान करुँगा। तुम उन अद्भुत देवता के दर्शन एवं पूजन के लिए उन्हें ले आना। वे जब उस मन्दिर में पूजा के लिए विराजमान होंगी, तब दूर से मैं उनका पृष्ठदेश दर्शन कर कृतार्थ होऊंगा। और यदि तुम्हारी कृपा एवं सम्मति होगी तब अलक्षित! भाव से धीरे-धीरे आकर मात्र एक बार उनकी पाद-पीठ स्पर्श करुंगा।'

तब तुम कहना– 'माधव! मुझे क्या पुरुस्कार दोगे कहो?' वह कहेगा– 'सखि! पुरुस्कार की क्या बात है, मैं स्वयं को ही तुम्हारे हाथों विक्रय कर दूंगा।'

तब तुम कहना, 'माधव! स्थिर होवो, तुम्हारी वासना पूर्ण करती हूँ "यह कर मुझे वहाँ ले जाना।"

इस दृष्टान्त से सामाजिक भक्त अनुभव करेंगे कि कितना प्रणय–भाजन होने पर इस प्रकार उक्ति–प्रयुक्ति सम्भव होती है। श्रीमती को मान–शिक्षा एवं मान भंजन आदि के विषय में भी अन्यान्य सखियों की अपेक्षा विशाखा की एक श्रेष्ठ भूमिका देखी जाती है। श्रीपाद श्रीउज्ज्वलनीलमणि में लिखते हैं–

गिरो गम्भीरार्थाः कथमिव हितोस्तेन शृणूयाम्
निगूढो माम् किन्तु व्यथयति मुरारेरविनयः।
मयोल्लासात्तस्मै स्वयमुपहृता हन्त सखि या
कुरंगाक्षी–केशोरपि परिचिता सा स्रगधूना॥

(सखी प्र.–18)

सौभाग्य–पौर्णमासी तिथि का पूर्व दिन है। श्रीराधिका मानिनी हैं। बहुत सम्भव है कि विशाखा ने ही मान शिक्षा दी है। चम्पकलता विशाखा से कहती हैं– 'हे विशाखे, कल सौभाग्य–पूर्णिमा है आज श्रीराधा के मान की स्थिति तुम्हारी प्रतिपक्षा सखिगणों के सुख का कारण होगी। सो आज ही इस मान के प्रशमन की दरकार है। तब विशाखा चम्पकलता के प्रति कहती हैं– तुम्हारी यह युक्तिपूर्ण बात क्यों नहीं सुनूंगी, किन्तु मुरारी के गूढ़ अविनय ने मुझे बहुत व्यथा प्रदान की है। क्या आश्चर्य है! मैंने उल्लसित हो स्वयं ग्रथन कर जो माला श्रीकृष्ण को उपहार में दी थी, वही माला अब चन्द्रावली की सखी कुरंगाक्षी के केशों पर देख रही हूँ।' श्रीराधामाधव की लीलाओं में श्रीविशाखा का ऐसा असाधारण अधिकार जान कर। श्रीपाद कहते हैं– 'हे विशाखे! तुम मुझे निज प्रणयी श्रीराधामाधव का कृपा कटाक्ष प्राप्त कराओ।'

हे विशाखे! शुनियाछि तोमार वैभव।
गौर–नील–वंपु सेइ श्रीराधामाधव॥

युगलेर तुमि श्रेष्ठ प्रणयभाजन।
तव कृपाकणा याचे एई अभाजन॥
तोमार प्रणयी सेई युगल-रतने।
करुणा कटाक्ष सह कराउ दर्शने॥23॥
सुबल वल्लववर्य्यकुमारयो, द्रयितनर्मसखस्त्वमसि ब्रजे।
इति तयोः पूरतो विधुरम् जनम् क्षणममूम् कृप्यादय निवेदय॥24॥

अन्वयः (हे) सुबल! ब्रजे अस्मिन्! वल्लवर्वय्यकुमारयोः (राधामुकुन्दयो त्वम् दयितनर्मसखोहसि। इति (हेतोः) अद्य क्षणम् कृप्या तयोः (तत्-कुमारयोः) पुरतो (अग्रे) अमूम् (मल्लक्षणम्) जनम् विधुरम् (दुखितम्) निवेदय।

अनुवादः हे सुबल! इस ब्रजमण्डल में तुम श्रीराधामुकुन्द के प्रियनर्मसखा हो। अतएव आज मेरे प्रति किंचित् कृपा करो मेरा दुखवृतान्त उनके चरणों में निवेदन करो।

मकरन्दकणा व्याख्या।

दुःख-वृतान्त निवेदनः

(24) श्रीपाद कातर प्राणों से श्रीराधामाधव के प्रिय पार्षदगणों के निकट अन्तर की विरह-व्यथा निवेदन कर रहे हैं। साधक को स्वरूप जागृत कर समझना होगा। 'मैं श्रीराधामाधव की सेवा परायण किंकरी हूँ, कितना मधुर कितना मनोज्ञ है यह भाव। भाव ही मानव-मन की चिन्तन धारा को गाढ़ से गाढ़तर करता है। वस्तु जगत के विषयों के संग घात-प्रतिघात से सदा एक प्रकार के भाव का उदय होता है। किन्तु भक्ति जगत के चिन्मय विषयों के घात-प्रतिघात से जो भाव उदय होता है वह वस्तु जगत के विषयगत भावों से सम्पूर्णतः विलक्षण है। विषय के संग मानव-मन की तन्मयता को ही साधारणतः 'भाव' कहा जाता है। भगवत् रूप रस आदि के संग साधक-चित्त की तन्मयता को भगवद्-भाव कहा जाता है। इन अप्राकृत भगवद्-भावों के मध्य श्रीश्रीराधामाधव की सेवा परा किंकरी अथवा मंजरीगण का भाव सर्वोपरि है। श्रीश्रीराधामाधव के लीला गुण, रूप-रस आदि के सर्वाधिक आस्वादन में मंजरी भाव की ही उपजीव्यता है। श्रील गोस्वामीपादगण के

आनुगत्य में उनके भाव से विभावित चित्त हो साधक को इसका अनुभव प्राप्त करना होगा।

"महतेर भाव, भाविते भाविते, तदभावे हवे सर्व-विस्मरण।
अन्तर्बाह्य तबे, एकाकार हबे, महद-भावे रस हबे आस्वादन॥"

श्रीपाद इस श्लोक में श्रीराधामाधव के प्रिय-नर्म-सखा श्रीसुबल के निकट प्रार्थना ज्ञापन कर रहे हैं। ब्रज के प्रिय नर्मसखाओं के मध्य श्रीसुबल ही सर्वाधिक अन्तरंग एवं सबसे श्रेष्ठ है।

"सर्वेभ्यः प्रणयिभ्योहसौ प्रियनर्मसखो वरः।
स गोकुले तू सुबलस्तथा स्यादर्ज्जुनादिकः॥"

(उज्ज्वल नीलमणि-2/13)

अर्थात् श्रीकृष्ण के प्रणयी सखागणों के मध्य जो अतिशय प्रिय हैं उन्हें प्रियनर्मसखा कहा जाता है। गोकुल में सुबल एवं द्वारका में अर्जुन प्रियनर्म सखाओं में श्रेष्ठ हैं। श्रीश्रीराधामाधव के मिलन-कार्य में प्रियनर्म सखाओं के मध्य सुबल की रहस्यमय भूमिका रहती है।

पूर्वराग की भूमि है। श्रीराधा के सौन्दर्य-माधुर्य के आकर्षण से श्याम के मन की अवस्था कुछ ठीक नहीं है। मिलन के लिए व्याकुल मन में सतत ही प्रियाजी की स्मृति है। सखागण की प्रीति, माता-पिता का स्नेह कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा। आज गोचारण के लिए वन में आए हैं और सखागण को गोचारण का भार सौंप कर वन-शोभा दर्शन के छल से एकाकी दूर वन में प्रवेश कर गए हैं। वन प्रदेश निर्जन है। चारों ओर कदम्ब के वृक्षों की कतारे हैं।

पुष्पों की गन्ध से वन भूमि प्रमत्त है। श्याम हाथ में वेणु लिए वहाँ आए हैं। कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा। कुछ देर वहाँ रूके और फिर चल दिए। निकट ही माधवी कुंज है। कुंज में प्रवेश कर एक तमाल वृक्ष के तलदेश में बनी रत्नवेदी पर वे बैठ गए। मन में वही चिन्तन चल रहा है-

"अपरूप पेखलूँ रामा।
कनकलता अव- लम्बने उयल,
हरिणी हीन हिमधामा॥"

चिन्ता से मुखकमल मलिन है। नयन-युगल उदास हैं। बैठे-बैठे कुछ सोच रहे हैं। इतने में प्रियमर्म सखा सुबल वहाँ आते हैं। गोविन्द का मलिन मुख दर्शन कर सुबल का हृदय व्यथित हो जाता है। निकट बैठकर स्नेह भरे स्वर से जिज्ञासा करते हैं- 'सखा! आज तुम्हारा मुख इतना खिन्न क्यों दिख रहा है? गोचारण छोड़कर यहाँ एकाकी क्यों बैठे हो भाई? श्याम कहते हैं- 'नहीं भाई, कुछ भी तो नहीं।' सुबल- 'सखा और छुपाने की चेष्टा मत करो, मैं तुम्हारे भीतर तक देख रहा हूँ। क्या हुआ है- खुल कर सब बात कहो।' गोविन्द सुबल की बात सुन कर धीरे-धीरे उसका हाथ पकड़ कर अपने वक्ष पर रख लेते हैं। दो-चार अश्रु सुबल के हाथ पर गिर जाते हैं। वह देख कर तो सुबल अत्याधिक व्याकुल हो जाते हैं। यह क्या सखा! तुम रो रहे हो? तुम्हें इस प्रकार देख कर मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। तुम शीघ्र कहो तुम्हें क्या कष्ट है, मैं प्राण देकर भी तुम्हारा दु:ख दूर करने की चेष्टा करुँगा।' गोविन्द कहते हैं- 'सखा! तुमसे गोपन करने जैसा कुछ भी मेरे पास नहीं हैं। हृदय की गूढ़ बात कहता हूँ सुनो- प्रतिदिन वन में आते समय एक सुन्दरी रमणी मेरे नयनपथ पर आ खड़ी होती हैं। मैं उसे देख कर भी अनदेखा कर देता हूँ। मैं इस प्रकार उपेक्षा करता हूं तब भी वह चली आती है। कुछ समय से इसी प्रकार चल रहा है। वन में आता हूँ, धेनु चराता हूँ एवं वेणु बजाता हूँ। अनमना होकर उसे भूलने की चेष्टा करता हूँ किन्तु कुछ दिन से मैं समझ पा रहा हूँ कि मेरी वह चेष्टा व्यर्थ हो रही है। वह रमणी मेरे हृदय के भीतर प्रवेश कर गई है। अब ऐसा लग रहा है कि उसे छोड़कर मैं जीवित नहीं रह पाऊँगा। निश्चय ही वह कोई मोहिनी-विद्या जानती है- जिससे मेरे अन्तर में प्रवेश कर वह मुझे पागल किए दे रही है।'

सुबल जिज्ञासा करता है- 'सखा! कौन है वह रमणी, कैसी दिखती है? तुमने उसे कहाँ देखा, कहो तो? श्रीकृष्ण कहते हैं- वह कौन है, वह मैं नहीं जानता। वह कैसी दिखती है यह समझाने के लिए भी भाषा नहीं है। किसके संग उसकी उपमा दूं? उसकी उपमा वह स्वयं ही है। फिर भी कुछ कहता हूँ-

"तुंग मणि-मन्दिरे, थिर बिजुरी संचरे,
मेघ-रूचि वसन परिधाना॥"

तभी प्रथम दर्शन में तो समझ ही नहीं पाया कि वह मानवी है अथवा देवी है। कारण मानवी भी कभी ऐसी सौन्दर्यवती हो सकती है, यह किसी की धारणा में भी नहीं आ सकता।

"जनमिया देखि नाइ हेन नारी।
भंगिम रंगिम, धन से चाहनि
गले से मोतिम हारी॥"

सुबल हंस कर कहता है– 'सखा! तुम्हें और चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। मैं समझ गया हूँ कि वह कौन है। विद्युत के समान उसका वर्ण है, नील वसन के परिधान धारण किए है, गले में मोतियों की माला है, महल की अट्टालिका पर खड़ी रहती है– इन लक्षणों से ही समझ आ रहा है कि वह श्रीवृषभानु राजा की नन्दिनी विनोदिनी राधा हैं।' राधा नाम श्रवण करते ही श्याम और अधिक अधीर हो गए। सुबल उन्हें आश्वासन देते हैं– किसी भी प्रकार से श्रीराधा के संग तुम्हारा मिलन करवाऊँगा ही।

इस ओर पूर्वरागवती श्रीराधा की भी श्याम अनुराग में तीव्र उत्कण्ठा एवं चिन्ता से आहार–निद्रा सब समाप्त हो गई है। श्याम–संग की लालसा में वे कभी विरहिणी हैं, 'कभी योगिनी हैं और कभी पागलिनी हैं।

"विरति आहारे रांगावास परे
येमन योगिनी पारा।"

एक टक नवमेध की ओर निहारती रहती हैं, श्याम नाम का जप करती हैं, धुआँ के छल से रूदन करती हैं। "अब क्या करना है कुछ नहीं जानती" ठीक ऐसी ही अवस्था है। प्रीति ने सुख की आशा में छलांग मार दी थी, आगे–पीछे का कुछ सोचा ही नहीं। अब दहन से ज्वाला से प्राण जा रहे हैं। वापस जाने का भी उपाय नहीं एवं प्राप्ति की आशा तो बहुत दूर की बात है। आलोक का तो नाम ही नहीं, सम्मुख घना काला मेघ है– वे दिशाहारा हैं। श्रीराधा की दशा दर्शन कर सखियाँ उद्विग्न हैं। फिर अंत में सुबल की मध्यस्थता से एवं सखियों की सहायता से श्रीश्रीराधाश्याम का मधुर मिलन होता है।

श्रीपाद प्रार्थना करते हैं– 'हे सुबल! युगल मिलन कार्य में तुम्हारी अपूर्व भूमिका रहती है! अत: युगल तुम्हारे एकान्त वशीभूत रहते हैं। सो इस दीन

के प्रति कृपा कर इसका दु:ख-वृतान्त युगल चरणों में निवेदन करो।' श्रीराधामाधव निकट नहीं है बस यही दुख है, और कोई दुख नहीं। भजन निष्ठ साधक को भी इस अप्राकृत दुख की किंचित् अनुभूति होनी चाहिए। श्रीराधामाधव की सेवा ही सुख है- अन्य सभी कुछ दुखमय है, यह अनुभूति चाहता हूँ। यह दुख भी आनन्द से निर्मित है, यह आस्वाद्य दुख है। केवल अनुभवी ही यह जानते हैं, अन्य कोई नहीं जानता। प्रार्थना के रस में श्रीपाद का चित्त तन्मय है।

"हे सुबल! शुनियाछि एइ कथा आमि।
युगलेर प्रियनर्मसखा हउ तुमि॥
ब्रजेर वल्लव-वर्य कुमार गोविन्द।
सुकुमारी श्रीराधिका भानु-कुलचन्द्र॥
नवीन-युगल-पदे आमार वेदना।
निवेदन कर तूमि करिया करुणा॥
एई वृन्दावन-माझे आमि बड़-दुखी।
युगल दर्शन दाने कर मोरे सुखी॥24॥
शृणुत कृप्या हन्त प्राणेश्योः प्रणयोद्धुराः,
किमपि यदयम् दीनः प्राणी निवेदयति क्षणम्।
प्रवनितमनाः किम् यूष्माभिः समम् तिलमप्यसौ,
युगपदनयोः सेवाम् प्रेमणा कदापि विद्यास्यति?॥25॥

अन्वयः हन्त (खेदे, हे) प्राणेशयोः (तयोः) प्रणयोद्धूराः (प्रेमदृप्ताः किंकर्य्यः)! अयम् दीन प्राणी यत् किमपि निवेदयति (तच्च) कृप्या क्षणम् शृणुत (यूयम् किम् शृणुम इति चेत्तत्राह) असौ (प्राणी) प्रवणितमनाः (विनमितचितः सन्) युस्माभि समम् तिलमपि युगपत (एकस्मिन् काले) अनयोः (प्राणेशयोः) सेवाम् प्रेम्ना कदापि विद्यास्यति (करिष्यतीति किम्)?

अनुवादः हे मेरे प्राणेश्वर श्रीश्रीराधामाधव की किंकरीगण! यह दीन व्यक्ति विनम्र चित्त से जो निवेदन कर रहा है वह क्षणकाल के लिए श्रवण करो। मैं तुम्हारे संग मिलकर, थोड़े समय के लिए ही, क्या उनकी प्रेम सेवा कभी कर पाऊँगा?

मकरन्दकणा व्याख्या

प्रेमसेवा की लालसाः

(25) इस श्लोक में श्रीराधा किंकरीगण के निकट प्रार्थना कर रहे हैं। जो प्रणय के संग निशिदिन युगल के सेवा रस में निमग्ना हैं, उनकी कृपा के बिना युगल सेवा सौभाग्य लाभ नहीं होता। श्रीपाद साक्षात् ब्रज की रूप मंजरी होते हुए भी मंजरी भाव साधकगण के निकट स्वयं आचरण कर यह शिक्षा दे रहे हैं। इन्हीं श्रीरूप मंजरी की अध्यक्षता में श्रीयुगलकिशोर के सेवा-सौभाग्य प्राप्ति की बात श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशय कहते हैं-

"श्रीरूपेर कृपा येन सेई महाशय।
से पद् आश्रय याँर सेई महाशय॥
प्रभु लोकनाथ कबे संगे लैया यावे।
श्रीरूपेर पाद-पद्मे मोरे समर्पिवे॥

★ ★ ★

एई नव दासी बलि श्रीरूप चाहिवे।
हेनो शुभ क्षण मोर कतदिने हवे॥
शीघ्र आज्ञा करिवेन दासी! हेथा आय।
सेवार सुसज्जा-कार्य करह त्वराय॥
आनन्दित हैया हिया ताँर आज्ञा-बले।
पवित्र मनेते कार्य करिव तत्काले॥
सेवार सामग्री रत्नथालेते करिया।
सुवासित वारि स्वर्णझारिते पूरिया॥
दोंहार सम्मुखे लये दिव शीघ्रगति।
नरोत्तमेर दशा कबे हइबे एमति॥

★ ★ ★

श्रीरूप-पश्चाते आमि रहिव भीत हैया।
दोंहे पुनः कहिवेन आमा पाने चाईया॥
सदय-हृदय दोंहे कहिवेन हासि।
कोथाय पाइले रूप! एइ नव दासी॥

श्रीरूप मंजरी तवे दोंह वाक्य शुनि।
मन्जूलाली दिल मोरे एइ दासी आनि॥
अति नम्र-चित्त आमि इहारे जानिल।
सेवाकार्य दिया तवे हेयाय राखिल॥
हेन तत्त्व दोंहाकार साक्षाते कहिया।
नरोत्तमे सेवाय दिवे नियुक्त करिया॥"

सखीगण की अपेक्षा अधिक किसी विशेष सौभाग्य एवं सेवाधिकार प्राप्ता मंजरीगण के संग श्रीयुगलकिशोर की सेवा अभिलाषा व्यक्त कर रहे हैं श्रीपाद। श्रील रघुनाथदास गोस्वामी पाद ब्रजविलास स्तव में इनके अनन्य साधारण सेवा-सौभाग्य के विषय में कहते हैं-

ताम्बूलार्पण-पादमर्द्दन-पयोदानाभिसारादिभि-
वृन्दारण्यमहेश्वरीम् प्रियतया यास्तोषयन्ति प्रियाः।
प्राणप्रेष्ठसखीकुलादपि किलासंकोचिता भूमिकाः
केलीभूमिषू रूपमंजरीमुखास्ता दासिकाः संश्रये॥38॥

ताम्बूल दान, पादमर्द्दन, जलदान एवं अभिसार आदि कार्य द्वारा जो वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा का नियत संतोष विधान करती हैं, प्राण प्रेष्ठ ललिता आदि सखियों की अपेक्षा जो श्रीराधाकृष्ण की केलि भूमि पर गमनागमन में अधिक असंकुचित-चित्ता हैं- रूपमंजरी प्रमुखा उन्हीं राधादासीगण का मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ। यहाँ पर ही सखियों की अपेक्षा मंजरीगण का विशेषत्व है। "रंगणमाला प्रभृतयः परमप्रणयीसख्य अपि स्वाभिलषित-परिचरण विशेष लाभाय परिचारिका इव व्यवहरन्ति" (मुक्ताचरित-274 अनु) अर्थात् रंगण माला (रूप मंजरी का दूसरा नाम) प्रभृति परम प्रणयिनी सखी होने पर भी परिचारिका की तरह व्यवहार करती हैं, इसलिए ऐसी कोई अभीष्ट परिचर्या-विशेष लाभ करती है जो ललिता आदि परम प्रेष्ठ सखियाँ भी प्राप्त नहीं कर पाती। यह सब श्रीश्रीयुगलकिशोर की सेवा प्राणा है। विलास के अन्त में श्रीराधाकृष्ण की रहस्यमय सेवा ही इनका अभीष्ट है।

रतिरणे श्रमयुत, नागरी नागर, मुखभरि ताम्बूल जोगाय।
मलयज कुमकुम, मृगमद कर्पूर, मिलतहिं गात लागाय॥

अपरूप प्रिय सखी प्रेम।

निज प्राण कोटि, देई निर्मछई, नह तुल-लाख वान हेम॥
मनोरम माल्य, दूहूँ गले अर्पई, वीजइ शीत मृदु वात॥
सुगन्धि शीतल, करुजल अर्पण, यैछे होत दूँहू शांत॥
दूहूँक चरण पुन, मृदु सम्वाहन, करि श्रम करलहिं दूर॥
इंगिते शयम, करल दूहूँ सखीगण, सबहू मनोरथ पूर॥
कुसुम सेजे दूहूँ, निद्रित हेरइ, सेवन परायण सुख।
राधामोहन दास, किये हेरव, मेटव सब मनोदुख॥"

निभृत निकुंज में श्रीश्रीराधामाधव की रहस्यमय विलास माधुरी का कुंज रन्ध्रों पर नयनार्पण कर दर्शन एवं यथासमय निगूढ़ सेवा ही इनका जीवातू है। इसके अतिरिक्त सखीगण का जैसे कभी-कभी श्रीराधा की इच्छा से नायिकात्व भी होता है, इनके संग वैसा कभी नहीं होता।

अनन्य श्रीराधापदकमलदासैकरसधी
हरेः संगे रंगम् स्वप्नसमये नाहपि दधती।
बलात कृष्णे कृपासकभिदि किमप्याचरति का-
प्यूदश्रुर्मेवेति-प्रलपति ममात्मा च हसति।

(वृन्दावनमहिमामृतम्-16/94)

जो श्रीराधा पदकमलों के दास्य रस में ही अनन्य चित्ता हैं, स्वप्न में भी श्रीकृष्ण के संग रंग स्वीकार नहीं करती, श्रीकृष्ण यदि बलपूर्वक उनकी कंचुकी छिन्न-भिन्न कर कुछ आचरण करते हैं तो कोई मंजरी अश्रुयुक्त हो 'ना-ना' कहकर प्रलाप करती हैं एवं मेरी आत्मा अथवा प्राण-स्वरूपिनी श्रीराधा हंसती है।" मंजरी की भाव-निष्ठा देखकर ही श्रीमती का यह हास्य है। कुंज रंध्रों पर अर्पित नेत्रा मंजरी-गण को श्रीराधामाधव का विलास दर्शन कर एवं उनकी रहस्यमय सेवा से ऐसा विपुल एवं अनन्य साधारण आनन्द लाभ होता है कि वे उसे छोड़ अन्य कुछ भी कामना नहीं करती।

श्रीपाद मंजरीगण के श्रीचरणों में प्रार्थना ज्ञापन करते हैं- 'हे श्रीयुगल की प्रिय किंकरीगण! श्रीयुगल तुम्हारे ही सेव्य हैं। ऐसी कृपा करो कि तुम हरि संग मिलित हो उनकी प्रेम सेवा कर पाऊँ। मंजरी भाव के साधकगण। श्रील ठाकुर महाशय के प्रार्थना पद में देखा जाता है। सेवा परायण सखियों

के संग श्रीराधामाधव की सेवा लाभ की प्रार्थना उनके श्रीचरणों में भी ज्ञापन करते हैं।

प्राणेश्वरी! एईवार करुणा करो मोरे।
दशनेते तृण धरि, अंजलि मस्तके करि,
एइ जन निवेदन करे॥
प्रिय सचरी संगे, सेवन करिव रंगे,
अंगे वेष करिवेक साधे।
राख एइ सेवाकाजे, निज पद पंकजे,
प्रिय सहचरीगण माझे॥
सुगन्धि चंदन, मणिमय आभरण
कौषिक वसन नाना रंगे
एइ सब सेवा यार, दासी येन हउ ताँर,
अनुक्षण थाकि ताँर संगे॥
जल सुवासित करि, रतन भृंगारे भरि,
कर्पूर वासित गुया पान।
ए सव साजाइया डाला, लवंग मालती माला,
भक्ष्य-द्रव्य नाना अनुपाम॥
सखीर इंगित होवे, ए सव अनिव कवे,
योगाइव ललितार काछे।
नरोत्तम दास कय, एइ येन मोर हय,
दाँडाइया रहू सखीर पाछे॥"

श्रीमन्महाप्रभु की अनर्पितचरी करुणा का दान है यह रहस्यमयी राधादास्य। रसराज-महाभाव के मिलित विग्रह श्रीगौरसुन्दर की वांछात्रय की पूर्ति के उपरान्त इसी परम सुरसाल मंजरी-भाव में ही आस्वादन की चरम परिणती घटित हुई थी। इस भाव की उन्मादना में ही उनका अस्थि-संधि वियोग हुआ था। इसी रस के आस्वादन से ही वे कूर्माकृति हुए थे। श्रीपाद उन्हीं के अन्तरंग पार्षद हैं, तभी उनके प्राणों की प्रार्थना है-

एई निवेदन धर यतेक मंजरी।
युगल-प्रणय-पात्र प्रेमेर किंकरी॥

नतचित्ते भागे याहा एइ अकिंचन।
करुणा करिया सवे करह श्रवण॥
राधाकृष्ण प्राण मोर ईश्वर ईश्वरी।
युगलेर पाद पद्मे सेवार भिखारी॥
हेन दिन हइवे कि तोमादेर सने।
प्रेमसेवा करिव श्रीयुगल-चरणे?
सेइ शुभ लग्न कवे हइवे आभार।
श्रीरूप गोस्वामी कहे करिया फुत्कार॥25॥

क्व जनोऽयमतीव- पामरः, क्व दुरापम् रतिभागभिरप्यदः?
इयमुल्ललयत्यजर्जरा, गुरुरुत्तर्षधुरा तथापि माम्॥26॥

अन्वयः अयम् अतीव (अतिशयेन) पामरः जनः क्व, रतिभागभिः (जातभावैः भक्तैः) अपि दुरापम् (इदम् सेवा सौभाग्यम्) क्व (दुर्घटोऽनेन मे सम्बन्ध इत्यर्थः यदयप्येवम्। तथापि इयम् उत्तर्षधुरा (अति तृष्णा) माम् उल्ललयति (चपलयति कीदृशीयमित्याह) अजर्ज्जरा (नवीना, तथा) गुरुः (महतीत्यार्थः)।

अनुवाद- कहाँ अति पामर जीव मैं और कहाँ यह भक्तजन दुर्लभ प्रेम-सेवा? मेरे लिए यह प्रेम सेवा अत्यन्त दुर्लभ है किन्तु फिर भी इसकी अति महान एवं नित्य नवीन तृष्णा मुझे चंचल कर रही है।

मकरंदकणा व्याख्या

महान तृष्णाः

(26) श्रीपाद मंजरीगण के संग श्रीयुगलकिशोर की प्रेम सेवा प्राप्ति के लिए मंजरीगण के ही श्रीचरणों में प्रार्थना निवेदन कर रहे थे। सहसा विपुल दैन्य के उदय होने से, स्वयं की अयोग्यता स्फूर्ति होने पर हाहाकार कर उठे- "कहाँ वह भक्तजन दुर्लभ प्रेमसेवा और कहाँ मुझ जैसा पामर जीव!" भजनरस से विभावित महावाणी है। प्रेम की परिपक्व अवस्था में ही ऐसी मानसिक दशा का उदय होता है। श्रीपाद सर्वोत्तम होते हुए भी स्वयं को साधन-भजन शून्य पामर जीव ही समझ रहे हैं- साधनमय जीवन का ऐसा ही स्वभाव होता है। एक और तो दुर्वार लोभ प्राणों में आकर्षण जगाता है और दूसरी और विपुल दैन्य से अयोग्यता की स्फूर्ति रूदन कराती है।

"दैन्य" कहने से साधारणत: दरिद्रता, अकिंचनता, अथवा निरभिमानत्व आदि ही समझ आता है, किन्तु सर्वोत्कृष्ट होते हुए भी ऐसा मनोभ्ज्ञाव होना कि, मेरे जैसा अपकृष्ट विश्व में और कोई भी नहीं है, मेरी कुछ भी सामर्थ्य नहीं है, मैं सभी प्रकार से अयोग्य, अधम एवं पामर हूँ- इस प्रकार की बुद्धि एवं उससे उत्पन्न कातरता ही "दैन्य" शब्द का वास्तविक अर्थ है। जो ऐसी दैन्य-सम्पदा प्राप्त कर पाते हैं, वे सभी सद्‌गुणों से विभूषित होते हुए भी, शास्त्रों के विधि-निषेध पालन करते हुए भी स्वयं को सर्पापेक्षा अधम बुद्धि समझ पाते हैं एवं व्याकुल भाव से रोदन कर पाते हैं। वास्तव में इस प्रकार की व्याकुलता ही दैन्य है। इस प्रकार के दैन्य के अभाव में शरणागति सिद्ध नहीं होती। क्योंकि जो स्वयं को उत्कृष्ट या समर्थ समझते हैं वे अन्य किसी की शरण ग्रहण करने जाएँगे ही क्यों? जिसमें स्वयं के रक्षण के लिए व्याकुलता नहीं है, वह आत्म-समर्पण क्यों करेगा? वास्तव में यदि मन में दैन्य न हो तो प्रकृत शरणागति होती ही नहीं। अतएव दैन्य एवं शरणागति एक ही वस्तु है। दैन्य ही कृपा को आकर्षित करता है एवं दैन्य ही कृपा को स्थिर कर के रखता है। इसीलिए श्रीभगवान् एवं भक्तिदेवी की कृपा प्राप्ति के निमित्त श्रीमन्महाप्रभु नाम-साधक को "तृणादणि" श्लोक को जीवन में उतारने का उपदेश देते हैं।

"तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

(शिक्षाष्टकम्)

उत्तम हैया आपनाके माने तृणाधम"।
दुई प्रकारे सहिष्णुता करे वृक्षसम॥
वृक्ष येन काटिलेह किछु न बोलय।
शुकाइया मैले कारे पानी न मागय॥
येई ये मागय, तारे देय आपन धन।
धर्म्म वृष्टि सहे आनेर करये पोषण॥
उत्तम हैया वैष्णव हवे निरभिमान।
जीवे सम्मान दिवे जानि "कृष्ण अधिष्ठान"॥

एईमत हैया येई कृष्ण नाम लय।
कृष्णेर चरणे तार प्रेम उपजय॥

(चै.च.)

दैन्य की परिपाक दशा में प्रेम जितनी गाढ़ता को प्राप्त होता है, श्रीकृष्ण की प्रीति विधान के उद्देश्य से, उनके दर्शन तथा सेवा के निमित्त उत्कण्ठा भी उतनी ही वर्धित होती है। और इस उत्कण्ठा की परमोत्कर्षता के द्वारा ही प्रेम का परिपाक एवं उत्कर्ष भी प्रमाणित होता है। महाभाववती ब्रज सुन्दरीगण की श्रीकृष्ण विरह में दैन्य एवं उससे उत्पन्न उत्कण्ठा प्रेम के राज्य में अतुलनीय है। श्रीमत् जीव गोस्वामीपाद लिखते हैं-

दावत्रस्ता मृगदुहितरश्चन्द्रहीनश्चकोर्य्याः
सृस्ता वृक्षान्नवलतिका नीररिक्ताः शाफर्य्याः।
ऊर्ज्जप्रान्ताद्बहिरपगता हन्त नव्याब्जनाल्यो
यद्वद्दृष्टा हरिविरहिता राधिकाद्याश्च तद्वत्॥

(गोपालचम्पू-पूर्व 33/110)

दावानल के भय से मृग दुहिता की जो अवस्था होती है, चन्द्र विहीन होकर चकोरी की जैसी अवस्था होती है, वृक्ष से स्खलित नव लतिका की जैसी दुद्रशा होती है, जल के बिना मत्स्य की जैसी दुरवस्था होती है, छिन्न-मूल नवीन कमल की जैसी दशा होती है- हाय हाय! श्रीकृष्ण विरह में श्रीराधा आदि ब्रज सुन्दरियों की भी वैसी ही अवस्था हुई थी। वस्तुत: आत्मेन्द्रिय सुख वासना शून्य कृष्णेन्द्रिय सुख तात्पर्यवती ब्रज सुन्दरीगण में श्रीकृष्ण सेवा के अभाव के कारण ही ऐसे असाधारण दैन्य या उत्कण्ठा दशा का उदय होता है। श्रीराधा-किंकरियों में भी श्रीमति की कृपा से उनकी असाधारण भावदशा का संक्रमण होता है। अत: श्रीपाद उनके परमाभीष्ट श्रीश्रीराधामाधव के साक्षात् दर्शन एवं सेवा के अभाव से एक ओर तो जैसे निरतिशय दैन्य के उद्रेक से स्वयं को नितान्त अयोग्य मानते हैं तो दूसरी ओर विपुल लालसा से कहते हैं- "हेयमुल्ललयत्यजर्ज्जरा गुरुरुत्तर्षधुरा तथापि माम्" अर्थात् यह भक्तजन दुर्लभ श्रीश्रीराधामाधव की सेवा मुझ जैसे पामर जीव के पक्ष में अत्यन्त दुर्घट है किन्तु फिर भी नित्य नवीन एवं अति महती तृष्णा एवं आशा मुझे चंचल कर रही है। प्रगाढ़ तृष्णा से हृदय फटा जा रहा है किन्तु फिर भी

आशा का त्याग नहीं किया जाता। भक्त के चित्त में- मन में इष्ट प्राप्ति की आशा जैसे आसन बिछा कर बैठ जाती है। दैन्य से उत्पन्न स्वयं की अयोग्यता के कारण आशा त्यागने की चेष्टा करने पर भी आशा हृदय नहीं छोड़ती। श्रीमत् सनातन गोस्वामीपाद कहते हैं- यह आशा मुझे व्यथा देती है।

न प्रेमा श्रवणादिभक्तिरपि वा योगोऽथवा वैष्णवो,
ज्ञानम् वा शुभकर्म वा कियदहो सज्जातिरप्यस्ति वा।
हीनार्थाधिकसाधके त्वयि तथाप्यच्छेद्यमूला सती,
हे गोपीजनवल्लभ! व्यथयते हा हा मदाशैव माम्॥

हे गोपीजनवल्लभ! मुझमें प्रेम नहीं है, श्रवण कीर्तन आदि साधन भक्ति भी नहीं है, वैष्णवयोग (ध्यान, धारणा आदि) इत्यादि भी नहीं है, भगवन्निष्ठ ज्ञान, शुभ कर्म (भक्त परिचर्या आदि) अथवा परिचर्या के उपयोगी सत् मति भी नहीं है। तथापि तुम्हें दीन-अभाजन जन के समधिक प्रयोजन-साधक एवं परम-दयालु जानकर तुम्हारी प्राप्ति विषयक अच्छेद्यमूला आशा (जिसे किसी भी प्रकार त्याग न किया जा सके) ही मुझे अत्यधिक व्यथित कर रही है, मैं अब क्या करूं? आपना अयोग्य देखि मने पाऊं क्षोभ। तथापि तोमार गुणे उपजाए लोभ॥ (चै.च.)। श्रीपाद इसी नित्य नवीन एवं महती आशा की ताड़ना से चंचल हो गए हैं।

हाय हाय! आमि अति अधम पामर।
त्रिताप-ज्वालाय सदा ज्वलिछे अन्तर॥
विचार करिले देखि आमि वा कोथाय।
भक्त दुर्लभ प्रेमसेवा वा कोथाय॥
यद्यपि आमार किछु नाहि भक्ति बल।
तथापिह आशा मोरे करिछे चंचल॥
प्रेमोथित दैनय भरे मधुर प्रार्थना।
श्रीरूप गोस्वामीपाद करिला घोषणा॥26॥

धवस्तब्रह्ममरालकूजितभरैरूर्ज्जेश्वरीनृपुर-
क्वानैरूर्ज्जितवैभवस्तव विभो वंशीप्रसूतः कलः।
लब्धः शस्तसमस्तनादनगरीसाम्राज्यलक्ष्मीम् परा-
माराध्याः प्रमदात् कदा श्रवणयोर्द्रवन्द्वेन मन्देन मे?॥27॥

अन्वय:-(हे) विभो! तव वंशीप्रसूत: कल: (मधुरधवनि:) मे मन्देन श्रवणयोर्द्वन्द्वेन कदा प्रमदात् आराध्य: (भविष्यति, स कीदृश:) उर्ज्जेश्वरीनूपुरक्वाणै: (श्रीराधामंजीरधवनिभि:) उर्ज्जितवैभव: (समृद्ध, तत्क्वाणै: कीदृशे:) धवस्तब्रह्ममरालकूजितभरै: (अधकृतो चतुरास्यहंसस्य कूजितभरो यैस्ते, पुन: स कीदृश:) लब्ध: शस्तसमस्तनादनगरी साम्राज्यलक्ष्मीम् पराम् (शस्ता श्लाध्या या समस्ता नाद रूपा नगरी तस्याम् या साम्राज्य लक्ष्मीरधिकारसम्पत् ताम् पराम् लब्ध:, राधिकानूपुरझनत्कारै: सह रासे तव वेणुनादम् कदा श्रोष्यमीत्यार्थ:)।

अनुवाद:- हे विभो! मेरी यह विषयवार्ता-विदूषित श्रवणेन्द्रियाँ कब आनन्द से भरकर, श्रीराधा की ब्रह्म-मराल-निन्दि नूपुर ध्वनि के संग मिश्रित तुम्हारी समृद्ध वंशीध्वनि को सुन पाएंगी? अर्थात् रासमण्डल में श्रीराधिका नृत्य करेंगी, तुम वंशी बजाओगे, उसे श्रवण कर मैंने समस्त नादनगरी की आधिपत्य लक्ष्मी प्राप्त कर ली है- ऐसा मैं कब अनुभव करूंगा?

मकरन्दकणा व्याख्या।

नादनगरी की साम्राज्य-लक्ष्मी:

पूर्व श्लोक में श्रीपाद ने एक ओर स्वयं की अयोग्यता तो दूसरी ओर विपुल तृष्णा की बात व्यक्त की है। प्रबल तृष्णा से ही दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति के लिए दुरन्त लालसा जागृत हुई है। इस सूतीव्र लालसा से जीवन भरा है। यही भ्रजन का सौन्दर्य है। "तुम्हारी सेवा के अयोग्य होते हुए भी लोभ नहीं छोड़ पा रहा। अभीष्ट प्राप्ति के निमित्त तीव्र लालसा क्रमश: बढ़ती जा रही है। बाह्य जगत की कोई अनुभूति नहीं है। अत्यधिक तृष्णा से जब प्राण कण्ठ में आ जाते हैं तब लीला शक्ति श्रीपाद के सम्मुख एक अपूर्व लीला का स्फुरण जगा देती है। स्फूर्ति में श्रीपाद देख रहे हैं- रास हो रहा है। प्रेमरसास्वादन-लोलुप श्यामसुन्दर प्रेमघनमूर्ति ब्रजबालागण के प्रेम रस का कितनी उत्कण्ठा से आस्वादन कर रहे हैं। नृत्य परायणा रासनायिकागण के संग नृत्यशील रासविहारी श्रीश्यामसुन्दर के अतुलनीय माधुर्य से वृन्दावन उजलित है। "मण्डली बन्धे गोपीगण करने नर्तन। मध्य राधासह नाचे ब्रजेन्द्रनन्दन॥" (चै.च.) श्रुति के जो "रसो वै स:" हैं, वे ही परम घनीभूत अवस्था में 'शृंगाररसराजमय मूर्तिधर' होकर अपनी ही अन्तरंगा शक्तिगण के

संग निगूढ़ प्रेमरसास्वादन में विभोर है! रस स्वरूप होकर भी वे रसिक हैं- सुख स्वरूप होकर भी वे सुख के आस्वादक हैं। स्वरूप में जो रस नित्य अवस्थित है, उसे विशेष रूप से आस्वादन करने के लिए एवं जीव जगत को कृतार्थ करने के लिए ही प्रपंच के अन्तर्गत रासलीला की अवतारणा है। रसराज-रसिकेन्द्रमौलि श्रीब्रजेन्द्रनन्दन उनकी आनन्दिनी शक्ति-वरीयसी महाभाव स्वरूपिणी श्रीराधारानी एवं उनकी कायव्यूह रूपा अनन्त गोपी-मण्डली के संग महानन्द-नृत्य में जो रसास्वादन करते हैं- वही रासलीला है। निखिल शक्तियों की आश्रय स्वरूपा अखण्ड महाभाव स्वरूपिणी श्रीराधारानी ही इस लीला की मूल स्तमी हैं। वे ही रासेश्वरी हैं। "ताहा विना रासलीला नाहि भाय चित्ते" (चै.च.)। श्रीकृष्ण की रास रसास्वादन वांछा-पूर्ति रूप आराधना करती हैं- इसलिए उनका नाम 'राधिका' है। शत् कोटि गोपियों के संग नृत्य करते हैं किन्तु फिर भी मन का पूर्ण आवेश श्रीराधा में ही रहता है। दोनों ही परस्पर के प्रेम रसास्वादन में विभोर हैं।

"हरि हरि दुँहू जन, अति उलसित मन,
परम मोहन नृत्य करे।
अंग शोभा मनोरम, आन आन निरीक्षण,
अन्तरे आनन्द नाहि धरे॥
रसभरे दुँहू काय, ढलिया ढलिया याय,
शिखिलित भैगेल छरमे।
दुहूँक रातुल आँखि, लोहित ललित पाखि,
मुखशशी तितिल घरमे॥
चारिपाशे सखीगण, करे नाना सेवन,
दुँहू अंगभंगी निरखिया।
केहू गन्ध देय गाय, केहू केहू मन्दवाय,
केहू चले फूल वरषिया॥ (महाजन)

रास नृत्य में श्याम की मुरली के गान के संग-संग श्रीराधा के श्रीचरणों की नूपुर भी बज रही है। वंशी-गान की मधुरता को भी परास्त कर रही है नूपुरों की ध्वनि। वह भुवनमोहनकारी वंशी ध्वनि से भी अधिक मधुरतर है। मुरली की ध्वनि को समृद्ध कर रही है नूपुरों की ध्वनि। वह मुरली ध्वनि की

मधुरता को बढ़ा रही है। मुरली मुख पर है एवं नूपुर चरणों में हैं। ब्रह्ममराल-कूजन निन्दि अर्थात् ब्रह्मा जिस हंस के ऊपर आरोहण करते हैं उस हंस के कूजन से भी मधुरतर है श्रीमति के नूपुरों की ध्वनि-वह ध्वनि मुरली की कलध्वनि को सुन्दरतर बना रही है। जिन श्रीचरणकमलों से निरन्तर असीम भाव से महाभाव रूपी मकरन्द रस बहता रहता है- उन्हीं श्रीचरणों का आश्रय प्राप्त करके ही यह नूपुर कलानिधि श्याम के मन को मुग्ध करने में सक्षम हुए हैं। इन चरणों की कैसी अद्‌भुत माधुरी है, जिनके स्पर्श से आनन्दघन विग्रह श्यामसुन्दर के तापित प्राण भी सुशीतल हो जाते हैं। श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद लिखते हैं-

वृन्दावनेश्वरी तवैव पदारविन्दम् प्रेमामृतैक - मकरन्दरसौघपूर्णम्।
हृद्यर्पितम् मधुपतेः स्मरतापमुग्रम् निर्वापयत् परमशीतलमाश्रयामि॥

(राधारससुधानिधि-13)

हे वृन्दावनेश्वरि! रसिकेन्द्रमौलि श्रीकृष्ण प्रेमामृत-मकरन्दरस प्रवाह से पूर्ण तुम्हारे श्रीचरणकमलों को वक्ष पर धारण कर तीव्र मदन ज्वाला को शान्त करते हैं, तुम्हारे उन्हीं परम सुशीतल श्रीचरणकमलों का मैं आश्रय करता हूँ।

स्वामिनी के नूपुरों की ध्वनि के संग मुरली की ध्वनि ने समा बांध दिया था। सखि-मंजरियों के किस कारण से मुरली-गान अब जम नहीं रहा। न जाने कहाँ किस का अभाव है! श्याम चारों ओर देखते हैं- देखते हैं कि नृत्य के आवेश में श्रीमति के चरणों से एक नूपुर निकल गया है। श्याम नृत्य करते-करते ही, नृत्य का ही कोई अभिनव कला-कौशल विस्तार करते हुए, श्रीराधा के श्रीचरणमूल में बैइकर, श्रीचरण को अपने वक्ष पर विराजमान कर उसमें नूपुर पहना देते हैं। किसी को कुछ पता नहीं चलता, सभी इसे एक अभिनव नृत्य कौशल ही समझते हैं किन्तु श्रीरूप मंजरी श्रीमति की अभिन्नप्राणा हैं, उनके निकट श्रीयुगल का कुछ भी गोपनीय नहीं है। स्वामिनी की पा से रूप सभी कुछ समझ गईं। श्रीचरणों में रस का नूपुर झंकृत हो उठा! मुरली की ध्वनि पूर्ववत् समृद्ध हो उठी। श्रीरूप ने अनुभव किया- जैसे नादनगरी की साम्राज्य लक्ष्मी हो, अर्थात् कर्णानन्दी नाद की जो परकाष्ठा हो सकती है, उसकी सार-सम्पद श्रीराधा की नूपुर ध्वनि से समृद्ध श्याम की

यह वंशी-ध्वनि ही है। पुन: मोहन नृत्य आरम्भ हो गया। सखि-मंजरियों के आनन्द की सीमा न रही।

सखि हे! किये इह परम आनन्द।
श्रीराधामोहन, श्याम विमोहिनी,
नाचत अतुल प्रबन्ध॥
नागरि डाहिन, भुज विराजित,
श्याम वामभुज संगे।
नीलिम हेम, मृणाल कि खेलत,
आनन्द-सायरे तरंगे3
नटन वेगे यव, अन्तरित दुहूजन,
तवहिं मिलायत अंग।
करपद चालनि, कंगन-किंकिणी-ध्वनि,
करतहिं विविध तरंग॥
दुहूँ अंग माधुरी, दुहूँ अवलोकई,
दुहूँजन नयन विभोर। (महाजन)

स्वरूपाविष्ट श्रीपाद श्रीश्रीराधामाधव का नृत्य दर्शन कर एवं नाद माधुरी की आधिपत्य लक्ष्मी प्राप्त कर तन्मय हो गए। सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। वे हाहाकार कर उठे। व्याकुल प्राणों से श्रीमती की नूपुर ध्वनि से मिलित श्याम का वंशीनाद श्रवण करने के लिए प्रार्थना करने लगे- "यह विषय-वार्ता विदूषित कर्ण क्या परमानन्दमय उस नाद माधुरी की साम्राज्य-लक्ष्मी को प्राप्त कर पाऐंगे?"

श्रीरासमण्डले धनि, नाचे राधा विनोदिनी,
नृत्य कला अति अद्‌भुत।
ब्रह्म-हंस-नाद जिनि, चरणे नूपुर ध्वनि,
पदे पदे सिंचे परामृत॥
नूपुरेर ध्वनि साथे, सुमधुर वंशी नादे,
एक संगे मिश्रित हइल।
किवा सेइ कलध्वनि, सुधासार शिखरिणी,
अखिल भुवने वेयापिल॥

सेइ शब्द नाद-ग्राम, साम्राज्य लक्ष्मीर धाम,
आर कवे करिव श्रवण?
श्रीरूप गोस्वामी भणे, ए लालसा मोर प्राो,
कृपा कर उहे राधाश्याम॥27॥
स्तम्भम् प्रपंचयति यः शिखिपिच्छमौलि,-
वेणोरपि प्रवलयन् स्वरभंगमुच्चैः।
नादः कदा क्षणमवाप्स्यति ते महत्या,
वृन्दावनेश्वरि स मे श्रवणातिथित्वम्?॥28॥

अन्वयः (हे) वृन्दावनेश्वरि! ते (तव) महत्या (वीणायाः) स नादः मे (मर्म) क्षणम् श्रवणातिथित्वम् (कर्णगोचरताम्) कदा अवाप्स्यति? (स कीदृगित्याह) यः शिखिपिच्छमौलिवेणोः उच्चैः स्वरभंगम् प्रवलयन् (कुवर्वन्) स्तम्भम् प्रपंचयति।

अनुवादः हे वृन्दावनेश्वरि श्रीराधिके! श्रीकृष्ण की वंशी की स्वर-भंगकारी एवं स्तब्द्ध जनक तुम्हारी वीणा-ध्वनि कब मेरे श्रवण-गोचर होगी?

मकरन्दकणा व्याख्या।

वेणु की स्वरभंगकारी वीणा ध्वनिः

स्फूर्ति के विराम से श्रीपाद के प्राणों में हाहाकार जाग उठा। स्फुरण प्राप्त लीला के दर्शनों के लिए प्रार्थना करने लगे। जब स्वरूप से आकांक्षा उठती है तो सभी मायिक संस्कार मिट जाते हैं और क्रमशः नित्य संस्कार बद्धमूल हो जाते हैं। क्रमशः श्रीश्रीराधामाधव के रूप, गुण, लीला आदि का ध्यान स्वाभाविक हो जाता है। ध्यान करते-करते जब हृदय परिपक्व हो जाता है तब स्फूर्ति आती है। राग साधक का लीला आदि के श्रवण, कीर्तन एवं ध्यान का आस्वादन स्वप्रिय नाम-संकीर्तन के द्वारा उज्ज्वलतर हो उठता है।

तद्धि तत्तद्व्रजक्रीडा-ध्यानगान प्रधानया।
भक्त्या सम्पद्यते प्रेष्ठ-नामसंकीर्तनोज्वलम्॥

(बृ.भा.-2/5/218)

जिस भक्ति में ब्रजलीला का ध्यान एवं गायन प्रधान रूप से विद्यमान रहता है एवं जो प्रियतम के नाम संकीर्तन द्वारा उज्ज्वलीकृत होती है, उस

भक्ति से ही ब्रजजातीय प्रेम का उदय होता है। ध्यान निष्ठ साधक के ध्यान में विराम आ जाने पर, ध्येय वस्तु को साक्षात् प्राप्त करने के निमित्त जैसी तीव्र लालसा जागृत होती है, प्रेमिक के स्फुरण में विराम आने पर स्फूर्ति प्राप्त लीला के दर्शनों के लिए वैसी ही सुतीव्र उत्कण्ठा जागरित होती है। उत्कण्ठा से अधीर होकर श्रीपाद हाहाकार कर रहे थे तब श्रीश्रीराधामाधव की कृपा से लीला की स्फूर्ति प्राप्त हुई।

रासविहार में श्याम की मोहन वेणु के संग श्रीमति की वीणा मधुर स्वर लहरी का विस्तार करते हुए बज रही है। स्वर्ण-चम्पककलिका-निन्दि, रत्न मुद्रिकाओं से अलंकृत महाभाव की अंगुलिया वीणा की तारों पर कैसी मधुर झंकार कर रही हैं। प्रत्येक झंकार श्याम नागर के मन के ऊपर ही है। हृदय तन्त्री झंकृत हो उठी है।

नीरज नयनी लइल वीण
सकल गुणक अति प्रवीण
मधुर मधुर वाउइ ताल
मदनमोहन-मोहिनी।
झंकृत झकृत झनन झंक
चलत अंगुली लोलत अंग
कुटिल नयने करत भंग
भांग-भंगी शोहिनी॥
ललिता ललित धरत ताल
मोहित मदनमोहन लाल
कहतहि अति भालि भाल
राधा गुण-शालिनी॥
ललिता कहत मधुर वात
कानु नाचत राइ साथ
अंग भंग सरस रंगि
कहत शेखर तुहिनी॥

(पदामृत माधुरी)

वीणा की ध्वनि श्याम के चित्त को क्षुब्ध किए दे रही है। श्याम सिन्धु भाव की तरंगों से तरंगायित है। जैसे वंशी बजाने की शक्ति ही खो बैठे हैं। शिथिल हाथों में, अधरों में मुरली की ध्वनि प्राय: स्तब्ध है। उसका स्वर भंग हो गया है। श्रीराधा की वीणा के स्वर से जगत-मोहन भी मोहित है। स्थावर-जंगम को भी विमोहित करने वाली वेणु की दुद्रशा तो चरम पर है। श्यामसुन्दर स्तब्ध हैं। अद्‌भुत सात्विक विकारों से अभिभूत हैं। श्रीराधा का उत्कर्ष प्रकाशित हो रहा है। यह श्यामसन्दर का भी चरम काम्य है। श्रीराधारानी का उत्कर्ष स्थापित करने के लिए ही किसी किसी समय वेणु रव से वीणा के सुरों का अनुकरण करते हैं।

विपंचितसुपंचमम् रूचिरवेणुना गायता
प्रियेण सह वीणया मधुर गान विद्यानिधि:।
करीन्द्रवनसम्मिलन्मदकरिन्युदारक्रमा
कदा नु वृषभानुजा मिलतु भानुजा-रोधसि॥

(राधारससुधानिधि-58)

अर्थात् मधुर वीणागान-विद्या की निधि स्वरूपा, करीन्द्र के संग सम्मिलिता मदोन्मत्त करिणी की तरह, सुन्दर-गति-विशिष्टा श्रीराधा मनोहर वेणु मार्ग पर वीणा की तरह, पंचम स्वर संगीतकारी प्रियतम श्रीकृष्ण के संग कब सम्मिलित होंगी? साधक को निज स्वरूप जगाकर राधा-किंकरी भाव से श्रीराधा का उत्कर्ष अनुभव करना होगा। सिद्धदेह का चिन्तन करते हुए मानसिक निकुंज सेवा भावना में सिद्धदेह साधन के एकादश क्रम है।

अस्यैव सिद्धदेहस्य साधनानि यथाक्रमम्,
एकादश प्रसिद्धानि वक्ष्यतेऽति मनोहरम्।
नाम रूप वयो वेश सम्बन्ध यूथ एव च,
आज्ञासेवा पराकाष्ठा पाल्यदासी निवासक:॥

इन एकादश भावों को अंगीकार न करने से सिद्धदेह की परिपुष्टि नहीं होती। सद्‌गुरु का श्रीचरण आश्रय करने पर साधक श्रीगुरुदेव से इन एकादश भावों को प्राप्त करता है। यही साधक का नित्य-सिद्ध चिन्मय देह होता है। श्रीराधामाधव की परिचर्या आदि के चिन्तन द्वारा साधक में शीघ्र ही अपने भावों के अनुकूल गोप-किशोरी देह प्राप्त करने के लिए बलवती आकांक्षा

का उदय होता है। शुद्ध जीव स्वरूप में स्त्री, पुरुष का भेद नहीं होता। श्रुति में देखा जाता है–

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायम् नपुंसकः।
यद्यच्छरीरमाधत्ते तेन तेन स वक्ष्यते॥

(श्वेताश्वतर)

अर्थात् शुद्ध जीव का स्वरूप अणु-चैतन्य है, उसमें स्त्री-पुरुष का भेद नहीं है। जब जैसा भाव होता है, उस भाव के अनुसार ही शुद्ध जीव स्त्रीत्व, पुरुषत्व प्राप्त करता है। साधन-भजन के राज्य में भी उसी प्रकार शान्त भाव होने से अक्षमता का, मातृत्व अभिमानी होने से स्त्रीत्व का, पितृभाव एवं सखाभाव होने से पुरुष भाव का उदय होता है। मधुर भाव से स्त्रीत्व की प्राप्ति होती है। श्रुति में भी कहा गया है–

यथाक्रतुरस्मिल्लोके पुरुषो भवति तथेत्य प्रेत्य भवति। अर्थात् पुरुष साधन काल में जो चिन्तन करता है, साधन परिपक्व होने पर वही प्राप्त करता है।

श्रीपाद मंजरीभाव साधना के मूल आचार्य हैं। उनका राधाकिंकरी भाव का अव्यभिचारी अभिमान है। मंजश्रीरूप से स्फूर्ति के देवता का आस्वादन करते-करते सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। विपुल आर्ति के सहित प्रार्थना करने लगे– "हा राधे! कब उस वेणु का स्वर भंगकारी एवं स्तब्धकारी, तुम्हारी मधुर वीणा का संगीत क्षणकाल के लिए मेरे श्रवण पथ का अतिथि होगा?" अतिथि जैसे क्षणकाल के लिए ग्रहस्थ के घर अवस्थान करता है, उसकी सेवा ग्रहण करता है और फिर चला जाता है, उसी प्रकार तुम्हारा वह महामोहन वीणा संगीत कब क्षण काल के लिए मैं सुन पाऊँगा– यही प्रार्थना है।

हे वृन्दावनेश्वरि! राधा ठाकुराणि।
वीणार झंकार येन सुधा-तरंगिणी॥
वंशी स्वर भंगकारी वीणार झंकार।
स्तब्ध करे वीणा ध्वनि यत गर्व तार॥
तोमार से वीणा ध्वनि करिव श्रवण।
श्रीरूपगोस्वामी करे एइ निवेदन॥28॥

कस्य सम्भवति हा तदहर्वा, यत्र वाम् प्रभुवरो कलगीतिः।
उन्नमन्मधुरिमोर्म्मिसमृद्धा, दुष्कृतम् श्रवणयोर्विधुनोति?॥29॥

अन्वयः-(हे) प्रभुवरो! कस्य (जनस्य) तदहः (स दिवसः) सम्भवति (घटते किम्) वा (इति वाक्यालंकारे, यत्राहिं) वाम् (युवयोः) कलगीतिः (युगपदभ्युदिता) श्रवणयोः दुष्कृतम् विधुनोति? (सा किम्भुता) उन्नमन्मधुरिमोर्म्मिसमृद्धा (उन्नमता उच्चीभवता मधुरिमोर्म्मिणा माधुर्यतरंगेण समृद्धा)।

अनुवाद- हे प्रभुवर श्रीश्रीराधामाधव! क्या मेरे जीवन में ऐसा दिन कभी आएगा जिस दिन तुम दोनों का सुमधुर संगीत एवं उत्कृष्ट माधुर्य-तरंग पूर्ण वह गान श्रवण कर मेरी श्रवणेन्द्रियों की दुष्कृत राशि विदूरित होगी?

मकरन्दकणा व्याख्या

माधुर्य तरंगपूर्ण गानः

श्रीपाद ने स्फुरण में रासलीला के मध्य श्रीयुगल की वेणु एवं वीणा की नाद माधुरी का आस्वादन सौभाग्य प्राप्त किया है। स्फूर्ति के विराम में विपुल आर्ति है। कर्ण युगल तृष्णा से व्याकुल हैं। वीणा एवं वेणु की स्वर लहरी चित्त में विपुल आलोड़न जगा दिया है। अव्यभिचारी नित्य स्वरूप का उपभोग कर रहे हैं। राधाकिंकरी के रूप में स्फूर्ति एवं उसके विराम में मिलन एवं विरह की उच्छ्वासमयी आनन्द वेदना का भोग करते चल रहे हैं। इसका दृष्टान्त विश्व में कहीं नहीं मिलता। साधकगण को स्वरूप जागृत कर समझना होगा। साधक आर्त स्वर में प्रार्थना निवेदन करेंगे- तुम मेरा स्वरूप जागृत कर दो स्वामिनी, मैं और कुछ नहीं चाहता। तुम्हारी श्रीचरणसेवा के अयोग्य हूँ किन्तु फिर भी केवल इतना समझा दो कि तुम्हें छोड़ इस विश्व में मेरा और कोई नहीं है। तुम्हारे श्रीचरणयुगल ही मेरे सर्वस्व-सम्पद हैं।

सिद्धदेह से गोपीभाव के आनुगत्य में सेवा-अभिलाषा ही चित् की कठोरता को नष्ट कर सरसता सम्पादन करती है। जिस प्रकार क्षुधा ही आहार्य वस्तु के भोजन जनित सुख में सहायक होती है, उसी प्रकार किंकरी भाव के अनुगत सेवा अभिलाषा ही श्रीश्रीराधामाधव की लीला माधुरी के आस्वादन में सहायक होती है। जो भाव के आनुगत्य में सेवा-अभिलाषा करते हैं, उन्हें ही लीला-माधुरी का आस्वादन प्राप्त होता है। जो इस ओर

लक्ष्य न रखकर केवल विधिवत भाव से गतानुगतिक स्मरण-मनन आदि करते रहते हैं उन्हें लीला माधुरी का वैसा आस्वादन प्राप्त नहीं होता। साधक सिद्धदेह से जिस गोपी विशेष के भाव के अनुगत होकर युगल किशोर की प्रेम सेवा में प्रवृत्त होते हैं, उन्हें ही आनुगत्य सखी जान कर उन्हीं के आनुगत्य में सेवा करेंगे। गौड़ीय वैष्णवों का श्रीरूप मंजरी, रति मंजरी प्रभृति राधा स्नेहाधिका किंकरीगण के आनुगत्य में भजन होता है। जिन्हें भावानुगत्य एवं सिद्धदेह, लीला स्मरण आदि सुस्पष्ट रूप से नहीं होता अपितु कष्ट साध्य लगता है- उन्हें लीला स्मरण आदि के प्रति अति-आग्रह न करते हुए महाभागवतगण के श्रीमुख से श्रवण आदि करना चाहिए एवं उस श्रवण की सहायता से श्रवण-मनन रूप गोपीभाव का अनुशीलन करना चाहिए, गोपीभाव के महिमा व्यंजक ग्रन्थों का पाठ एवं उस भाव की प्राप्ति के निमित्त लालसामयी प्रार्थनाएँ करनी चाहिए, यही प्रशस्ततम भजन है। कारण लालसामयी प्रार्थना आदि के द्वारा ही लीला-स्मरण, मनन में अधिकार संजात होता है एवं निज सिद्धदेह का चिन्तन करते हुए युगलकिशोर की प्रेमसेवा की भावना भी सुष्ठु होती है। श्रीपाद सतत स्वरूपानन्द सिन्धु में सन्तरण करते हुए लालसामयी प्रार्थनाएँ कर रहे हैं। देखते-देखते उन्हें एक अभिनव लीला का स्फुरण प्राप्त हुआ।

श्रीपाद देख रहे- मधुरातिमधुर श्रीवृन्दावन की कैसी निरूपम शोभा है! वृक्ष-लताओं पर राशि-राशि कुसुम विकसित हैं। स्निग्ध समीर कुसुमों की मधु-गन्धवहन कर स्थावर-जंगम सभी के प्राणों में आनन्द पुलक जगा रहा है! कुसुमों के सौरभ से आकर्षित होकर मधु-लब्ध भ्रमर स्तवक-स्तवक पर मंडरा रहे हैं। भ्रमर-समूहों से जैसे वृन्दावन परिव्याप्त है। कोयलों की पंचम तान से एवं विविध पक्षियों के कल-कूजन से वनभूमि मुखरित है। यमुना के श्यामल जल में कुमुद, कमल, कल्हार फूट उठे हैं! प्रस्फुटित कमलीनी के वक्ष पर मधुप का रसविलास चल रहा है!! नाना प्रकार के जल-पक्षियों के कलकूजन से यमुना का नीर मुखरित है। श्रीश्रीराधामाधव परस्पर के स्कन्ध देश पर बाहु विन्यास कर, गौर-नील आलोक से यमुना तट को आलोकित करते हुए गायन करते-करते चले जा रहे हैं। कोई भी सखी उनके संग नहीं है, गजराज एवं करिणी के समान स्वच्छन्द विहार है। श्रीवृन्दावन की सुषमा

आस्वादन कर रहे हैं। मदन–गान गायन करते हुए चल रहे हैं। वह गान प्राणों को मथ रहा है, तभी मदनगान है। श्रीराधारानी गा रही हैं–

बन्धु तोमार गरवे गरविनी हाम
रूपसी तोमार रूपे।
हेन मने लय उदुटि चरण
सदा निये राखि बुके॥
आनेर आछये अनेक जना
आमारि केवल तुमि।
आमार पराण हइते शत शत गुणे
प्रियतम करि मानि॥
बन्धू शिशुकाल हइते मायेर सोहागे
सोहागिनी बड़ आमि।
सखीगण माने जीवन अधिक
पराण–बन्धूया तुमि॥
आमार नयनेर अंजन अंगेरि भूषण
तुमि से कालिया–चाँदा।
ज्ञानदास कहे– कालिया–पीरिति
आमार अन्तरे अन्तरे बाँधा॥

श्रीकृष्ण भी अनुरूप भाव से गाते हैं–

शुन राधे! एइ रस - आमि से तोमारि वश,
तोमा विने नाहि भाय मने।
जपिते तोमार नाम धैरय न धरे प्राण
तुया रूप करिये धेयाने॥
श्रीराधे श्रीराधे वाणी येदिगे यार मुखे शुनि
सेइ दिके धाय मोर मन।
चातक फुकारे येन घन चाहे वरिषण,
तेन हेरि उ चाँदवदन॥
खेने खेने मुख तुलि' घन डाकि राधा बुलि
तवे प्राण हय निवारण।

तोमा अनुसारे आसि' कुन्जेर भितर वसि'
तोमा लागि' एई वृन्दावन॥
करेते मुरली थाके घन राधा वलि डाके
यत क्षण न पाय देखिते।
तोमार नूपुर ध्वनि आपन श्रवणे शुनि
तवे मोर क्षमा हय चिते॥
राधाकृष्ण दुटि नाम ताहे तुमि आगुयान
आमि करि तोमार भरसा।
तवे से सफल तुया पद परशिव
दास वृन्दावनेर ए आशा॥

दोनों ही आस्वादन में उन्मत्त हैं। श्रीमती की गायन माधुरी को श्यामसुन्दर के आस्वादन के माध्यम से एवं श्याम सुन्दर की गायन माधुरी को श्रीमती के आस्वादन के माध्यम से स्वरूपाविष्ट श्रीपाद आस्वादन कर रहे हैं। उत्कृष्ट माधुर्य-तरंग पूर्ण गायन है। श्रीपाद का चित्-मन तन्मय है। सहसा स्फुरण में विराम आ गया। चक्षु माने धुंधला गए हों। पिपासा से प्राण कातर हो गए। "से अमृतेर एक कण, कर्णचकोर जीवन, कर्णचकोर जीये सेइ आशे। भाग्यवशे कभु पाय, अभाग्य कभु ना पाय, ना पाइले मरये पिपासे॥" (चै.च.) तुम्हारे विहार-कानन में पड़ा हूँ। गायन करते-करते पुन: एक बार इस पथ से निकल कर जाओ! एक बार तुम्हारे दर्शन कर धन्य हो जाऊँगा! गायन श्रवण कर कर्णो का कल्मष नष्ट हो जाएगा।

उहे श्यामसुन्दर! वृन्दावनेश्वरि।
राधाकृष्ण प्राण मोर किशोर किशोरि॥
दोहें मिलि मधुकण्ठे निकुन्ज कानने।
सुमधुर गान दोंहे करिवे निर्जने॥
माधुर्य तरंग पूर्ण रसामृत गान।
श्रवण करिया कवे जुड़ावे पराण॥
श्रवणेन्द्रियेर यत दुष्कृत आछय।
आर कवे दूर हवे करुणा निलय?
भागवत चूडामणि रसिक सुजन।

श्रीरूपगोस्वामी करे एइ निवेदन ॥29॥

परिमलसरनिर्वाम् गौरनीलांगराज,-
न्मृगमदधुसृणानुग्राहिणी नागरेशो।
स्वमहिमपरमाणुप्रावृताशेषगन्धा,
किमिह मम भवित्रि घ्राणभृंगोत्सवाय? ॥30॥

अन्वयः-(हे) नागरेशो! वाम् (युवयोः) परिमलसरणिः (सौरम्यपरम्परा) मम घ्राण-भृंगोत्सवाय भवित्रि किम्? (कीदृशी सेत्याह) गौरनीलांगराजन्मृगमदघुसृणानुग्राहिणी (गौरनीलयोरंगयो क्रमाद्राजतीये मृगमद-घुसृणे कस्तूरी कुम्कुमे तयोरनुग्राहिणी विचित्रसौरभदात्रीत्यार्थः तथा) स्वमहिमपरमानुवृताशेषगन्धा (समहिमपरमाणुमात्रेण आवृताशेषगन्धा यया सेत्यार्थः)।

अनुवादः-हे नागरराज श्रीकृष्ण! अयि नागरिमणि श्रीराधिके! जो निज महिमा द्वारा निखिल सुगन्धित द्रव्यों को पराभूत करती हैं ऐसी मृगमद एवं कुंकुम से सुवासित आपकी श्रीअंग गन्ध को आध्राण कर कब मेरा ध्राणेन्द्रिय रूप भ्रमर आनन्दित होगा?

मकरन्दकणा व्याख्या।

श्रीअंग-परिमल-धाराः

श्रीपाद स्फुरण में श्रीराधामाधव का माधुर्य आस्वादन करते चल रहे हैं। स्फूर्ति के विराम में आर्ति के साथ आस्वादित लीला के दर्शन की कामना और फिर पुनः स्फुरण- इसी प्रकार का क्रम चल रहा है। स्फुरण में स्वयं की कोई चेष्टा नहीं होती- स्फूर्ति स्वाभाविक होती है। उसी प्रकार साधक के अन्तर में भी स्वाभाविक भजन की आवश्यकता है। साधक को प्रथमतः सासंग भजन एवं भजन निरन्तरता का अवलम्बन करना होता है फिर बाद में भजन स्वाभाविक हो जाता है। भगवद्-भजन मायिक देह-इन्द्रियों एवं मन का कार्य नहीं है। श्रीगुरु वैष्णव एवं श्रीभगवान् की कृपा से मायाबद्ध मानव जब श्रीभगवान् के भजन की ओर उन्मुख होता है तब श्रीभगवान् की इच्छा से मानव की मायिक देह-इन्द्रियाँ एवं मन श्रीभगवान् की स्वरूप शक्ति के संग तादात्म्य प्राप्त कर भजन करने में समर्थ होती हैं। श्रीभगवान् के नाम रूप, गुण एवं लीला का श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि मनुष्य की जड़ इन्द्रियों

द्वारा ग्राह्य नहीं है। मायाबद्ध मानव की इन्द्रियाँ जब भगवद्-भजन की ओर उन्मुख होती हैं तो श्रीभगवान् की स्वरूप शक्ति के संग तादात्म्य प्राप्त कर कीर्तन, स्मरण आदि भजन में समर्थ होती हैं। निरन्तर साधन-भजन के फलस्वरूप साधक की देह-इन्द्रियाँ एवं मन शुद्ध हो जाती हैं तो स्वाभाविक विषयासक्ति अन्तर्हित हो जाती है एवं श्रीभगवान् के प्रति आसक्ति के उदय होने से फिर भजन स्वाभाविक हो जाता है। क्रमशः साधक के चित् में रति का आविर्भाव होता है और वह उसे स्फूर्ति के राज्य में ले जाता है। प्रेम का आविर्भाव होने से फिर स्फूर्ति में भी पूर्ववत् (रति दशा के समान) आनन्द प्राप्त नहीं होता, तब श्रीभगवान् के साक्षात् दर्शन एवं सेवा प्राप्त कर उनके सुख-विधान के लिए साधक के देह-इन्द्रियों एवं मन में तीव्र उत्कण्ठा वर्धित हो जाती है। श्रीपाद महाभाव के राज्य में हैं, अतः साक्षात् दर्शन एवं सेवा के निमित्त रोदन करते हैं। सहसा पूर्व-श्लोक की, श्रीश्रीराधामाधव की वन-भ्रमण लीला का पुनः स्फुरण प्राप्त होता है।

नागरराज एवं नागरीमणि विचित्र लीला माधुरी प्रकाश करते-करते चल रहे हैं। युगल की श्रीअंग से दिगन्त परिपूरित है। अंग परिमल की धारा स्थावर-जंगम के प्राणों में अद्भुत आनन्द पुलक जगा रही है एवं निज माधुरी द्वारा अखिल गन्ध माधुरी को पराभूत कर रही हैं। विलासी युगल का श्रीअंग मृगमद, कुंकुमे आदि गंध-द्रव्यों से चर्चित है। श्रीअंग के स्वाभाविक परिमल के संग मिलकर "यक्ष-कद्रमवत्"* कुंकुम, अगुरु, कस्तूरी, कर्पूर एवं चंदन के सम्मिश्रण से उत्पन्न सुगन्धित द्रव्य विशेष॥ अपूर्व गन्ध माधुरी का विस्तार कर रही हैं। श्रीपाद स्वरूप से राधाकिंकरी हैं अतः इस गंध के संग विशेष रूप से परिचित हैं।

जब महारास में श्रीकृष्ण श्रीराधा के संग अन्तर्हित हो गए तब शतकोटि गोप बालाएँ श्रीकृष्ण का अन्वेषण करने लगीं थी। वे वृक्ष लता आदि से श्रीकृष्ण वार्ता जिज्ञासा करने लगीं थीं। किन्तु उस समय श्रीराधा की सखियाँ अन्य गोपियों से अगोचर श्रीश्रीराधामाधव की अंग परिमल धारा का आघ्राण प्राप्त कर हरिणियों के निकट युगल-किशोर की वार्ता जिज्ञासा कर रही थीं-

अप्येणपत्युपगतः प्रिययेह गात्रेस्तन्वन्
दृशाम् सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः।

कान्तांगसंग कुच-कुम्कुम-रंजितायाः
कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः॥

(भा.-10/30/11)

हे सखि हरिणी! श्रीकृष्ण क्या अपनी प्रेयसी के संग यहाँ आए थे? और क्या उनके भुवनमोहन अंग दर्शनों से तुम्हारा नयनांनन्द वर्धन हुआ था? हमें लगता है कि निश्चय ही वे यहीं कहीं है। कारण उनकी कान्ता-कुचकुंकुम रंजित कुसुम माला की सुगन्ध से यह स्थान आमोदित है।

कह मृगि! राधासह श्रीकृष्ण सवर्वथा।
तोमाय सुख दिते आइला, नाहिक अन्यथा॥
राधा-प्रियसखी मोरा, नहि वहिरंग।
दूर हैते जानि ताँर यैछे अंग गन्ध॥
राधा-अंग संगे कुचकुम्कुमे भूषित।
कृष्ण-कुन्दमाला-गन्धे वायु सुवासित॥

(चै.च.)

राधाभाव में श्रीमन्महाप्रभु जगन्नाथवल्लभ उद्यान में वैशाख मास की पूर्णिमा की रात्रि में, श्रीवृन्दावन की उद्दीपना में, स्वरूप दामोदर के मुख से श्रीगीतगोविन्द का "ललितलवंगलता" आदि पद श्रवण का भावाविष्ट हो गए थे। श्रीकृष्ण के दर्शन प्राप्त करने के उपरान्त (कृष्ण के अन्तर्हित होने के उपरान्त) उनकी अद्‌भुत अंगगन्ध से समाकृष्ट हो प्रलाप करने लगे थे-

कस्तूरीलिप्त नीलोत्पल, तार येई परिमल,
ताहा जिनि कृष्ण-अंगगन्ध।
व्यापे चौद्द भुवने, करे सर्व-आकर्षणे
नारी गणेर आँखि करे अन्ध॥
सखि हे! कृष्णगन्ध जगत माताय॥
नारीर नासाय पैशे, सर्वकाल ताँहा वैशे,
कृष्ण-पाशे धरि लैया याय॥
नेत्र नाभि वदन, करयुग चरण,
एई अष्ट पद्म कृष्ण अंगे।
कर्पूरलिप्त कमल, तार यैछे परिमल,

सेइ गन्ध अष्टपदम् संगे॥
हेमकीलित चंदन, ताहा करि धर्षण,
ताहे अगुरु कुंमकुम कस्तूरी।
कर्पूरसने चर्चा अंगे, पूर्व अंगेर गन्ध संगे,
मिलि डाका येन कैल चुरि॥

(चै.च.)

ऐसी अपूर्व अंग-गन्ध पुनः श्रीराधा की अंग-गन्ध के संग मिश्रित है। जो अपनी अंग-गन्ध से सम्पूर्ण विश्व का मन हरण करते हैं उन श्यामसुन्दर का भी मन हरण करती है श्रीमती अपनी अपूर्व अंग परिमल द्वारा। "यद्यपि आमार गन्धे जगत सुगन्ध। मोर चित्, प्राण हरे राधा अंग-गन्ध॥" (वही) श्रीराधा का एक गुण है- "गन्धोन्मादितमाधवा" अर्थात् श्रीराधा अपनी अंग-गन्ध से माधव को उन्मादित कर देती हैं। श्रीगोविन्द श्रीमती की अंग परिमल माधुरी का आस्वादन करते हैं, श्रीमती श्रीगोविन्द की अंग परिमल माधुरी का आस्वादन करते हैं एवं सखि-मंजरियाँ श्रीयुगल की अंग परिमल धारा का आस्वादन करती हैं। स्फूर्ति में श्रीराधामाधव के अंग परिमल का आघ्राण कर श्रीपाद का चित् उन्मत्त था। सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। श्रीपाद जैसे आकाश से धरती पर आ गिरे। हाहाकार कर उठे। कहाँ है तुम्हारी वह प्राण-मन हरणकारी श्रीअंग परिमल माधुरी! मेरी नासिका भृंगी के समान उस सौरम्य-परम्परा आस्वादन के अभाव में म्रियमाण है। कब मेरी घ्राणेन्द्रिया उस सौरभ से उत्फुल्ल हो उठेंगी? कब मेरा घ्राणेन्द्रिय-मधुकर इस गन्ध से प्रमत्त हो उठेगा?

शुनहे नागरराज निकुंजविहारी।
ब्रजेर नागरी-श्रेष्ठा राधिका-सुन्दरी॥
निखिल सुगन्धि द्रव्य यत देखा याय।
पराजय कैल याहा निज महिमाय॥
से कुम्कुमे मृगमदे कत करि रंग।
विचित्रित हइयाछे गौर नील अंग॥
सेई नव युगलेर श्रीअंग-सौरभ।
मोर नासा-मधुकर कवे वा मातिवे?" ॥30॥

प्रदेशिनीम् मुखकुहरे विनिक्षिपन्,
जनो मुहुर्वनभुवि फुत्करोत्यसौ।
प्रसीदतम् क्षणमधिपौ प्रसीदतम्,
दृशोः पुरः स्फुरतु तडिदघनच्छविः॥31॥

अन्वयः - (हे) अधिपौ (श्रीराधामाधवो) असौ जनः वनभूवि (श्रीवृन्दावने) प्रदेशिनीम् (तर्ज्जनीम्, तर्ज्जनी स्यात् प्रदेशिनीत्यमरः) मुखकुहरे (मुखमध्ये) विनिक्षिपन् (अर्पयन्) फुत्करोति (अतः) प्रसीदतम् प्रसीदतम् तडिद्घनच्छविः दृशोः पुरः (मम नयन सम्मुखे) स्फुरतु।

अनुवादः हे नाथ श्रीकृष्ण! हे वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिके! मैं इस वृन्दावन में, मुख में तर्जनी अंगुली निक्षेप कर बारम्बार फुत्कार करते हुए रोदन कर रहा हूँ। तुम क्षण काल के लिए ही मेरे प्रति प्रसन्न हो जाओ। विघुतलता एवं नव-नीरद के समान तुम्हाश्रीरूप माधुरी मुझे दर्शन करवाओ।

मकरन्दकणा व्याख्या।

युगलरूप-दर्शन की इच्छाः

स्फूर्ति ही विरही साधक की प्राण रक्षा का अवलम्बन है। दैववश यदि स्फूर्ति में विलम्ब होता है या स्फूर्ति का अभाव होता है तो वह दुख सहन करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। श्रीपाद स्फूर्ति के अभाव में अपने मुख में तर्जनी अंगुली निक्षेप कर फुत्कार पूर्वक रोदन कर रहे हैं। श्रीश्रीराधामाधव का विरह-दुख असहनीय हो रहा है। रागमार्गीय रहस्यमय भजन के इतिहास में श्रीपाद गोस्वामीचरण की श्रीराधामाधव की दर्शन एवं सेवा आकांक्षा एक अपूर्व एवं अभिनव अंग है। विश्व के समस्त रसिक-भागवतगणों के लिए आदर्श है एवं अनुकरण योग्य है। श्रीपाद के इसी अलौकिक भावमय चरित्र की आलोचना करने से साधक राग-मार्ग का प्रदीप्त आलोक प्राप्त कर सकता है एवं उनकी विरह-व्याकुल उत्कण्ठा-विह्वल भजन प्रणाली का ध्यान करने से ब्रज प्रेम की अन्तरंग एवं निगूढ़ आकांक्षा को भी प्राप्त कर सकता है।

गौड़ीय-वैष्णवों का राग का भजन है, विधि का नहीं। इष्ट के प्रति स्वाभाविक प्रेममयी प्रगाढ़ तृष्णा का नाम "राग" है। जिस प्रेममयी तृष्णा से

इष्ट में परम-आवेश उत्पन्न होता है, उस रागमयी भक्ति को "रागात्मिका भक्ति" कहा जाता है।

इष्टे स्वारसिकी रागः परमाविष्टता भवेत्।
तन्मयी या भवेदभक्तिः सात्र रागात्मिकोदिता॥

(भ.र.सि. 1/2/272)

इष्टे गाढ-तृष्णा 'राग'-स्वरूप लक्षण।
इष्टे आविष्टता - तटस्थ लक्षण कथन॥

(चै.च.)

इष्ट के प्रति जो प्रगाढ़ तृष्णा है अर्थात् अभीष्ट को सेवा के द्वारा सुखी करने की जो प्रगाढ़ लालसा है, वही राग का स्वरूप लक्षण है। इस प्रकार की प्रगाढ़ लालसा के फलस्वरूप इष्ट में जो परम आवेश उत्पन्न होता है वह राग का तटस्थ लक्षण है।

आकृति प्रकृति दुइ स्वरूप-लक्षण।
कार्य द्वारा ज्ञान एइ तटस्थ-लक्षण॥

(चै.च.)

श्रीमत् जीव गोस्वामीपाद लिखते हैं- "तत्र विषयिनः स्वाभाविको विषय-संसर्गेच्छातिशयमयः प्रेमा रागः। यथा चक्षुरादिनाम् सौन्दर्य्योदौ, तादृश एवात्र भक्तस्य भगवत्यपि राग इत्युच्यते" (भक्तिसन्दर्भः-310)

अर्थात् विषयी व्यक्ति में विषय-संसर्ग लाभ के निमित्त जो स्वाभाविक अतिशय इच्छामय प्रीति विद्यमान रहती है, उसी का नाम 'राग' है। जैसे चक्षु आदि इन्द्रियों का समस्त सौन्दर्य आदि विषयों के प्रति स्वाभाविक आकर्षण देखा जाता है, उसमें जैसे किसी प्रेरणा की अपेक्षा नहीं रहती, उसी प्रकार श्रीभगवान् के प्रति भक्त की चित्-वृत्ति स्वाभाविक रूप से आकृष्ट होती है। तादृश आकुल पिपासामय जो प्रेम है, वही 'राग' नाम से जाना जाता है। इस रागमयी भक्ति को रागात्मिका भक्ति कहा जाता है।

रागत्मिका भक्तिमुख्या ब्रजवासीजने।
तार अनुगता भक्ति 'रागानुगा' नामे॥

(चै.च.)

गौड़ीय वैष्णवों का श्रीरूप, रघुनाथ के आनुगत्य में ही भजन होता है। यही उनके रागात्मिका भक्ति सम्पन्न अनुगम्य ब्रजजन हैं। इनकी प्रेममयी सेवा परिपाटी, व्याकुलता, उत्कण्ठा इत्यादि की कथा शास्त्र एवं साधु मुख से श्रवण कर रूचि के संग उनके राग का अनुगमन ही गौड़ीय वैष्णवों की रागानुगा भक्ति है।

श्रीपाद इस वृन्दावन धाम का आश्रय कर विरह कातर दशा में मुख में तर्जनी अंगुली अर्पण कर बारम्बार फुत्कार पूर्वक रोदन कर रहे हैं– "मात्र क्षणकाल के लिए ही मेरे प्रति प्रसन्न हो जाओ।" स्थिर विद्युतलता जड़ित नवनीरद कान्ति एक बार मेरे नयन गोचर करवाओ।" इन श्रीचरणों में जिनके प्राण समर्पित हैं, वे विश्व में कहीं भी शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते। सुशीतल चरण–रूपी छत्र की छाया ही उनका परम आश्रय हैं। श्रीपाद प्रार्थना कर रहे हैं– हे अधीश्वर–अधीश्वरि! श्रीश्रीराधामाधव! कृपा करो, तुम्हारी तड़ित–घन छवि मेरे नयनों के सम्मुख स्फुरित करवाओ।

कवे कृष्णधन पाव, हियार माझेरे थोव,
जुडाईव ए पाप-पराण।
साजाईया दिव हिया, वसाइव प्राणप्रिया,
निरखिव से चन्द्रवयान॥

(प्रार्थना)

एकवार पाइले देखा चरण-दुखानि।
हियार माझारे राखि जुडाव पराणि॥
ताँरे ना देखिया मोर मने वड ताप।
अनले पशिव किम्वा जले दिव झाँप॥ (वही)

अभीष्ट के विरह में इस प्रकार की अवस्था या इस प्रकार की आकुलता ही ब्रज भजन का आदर्श है। यदि विरह न हो तो मिलन का सुखास्वादन भी नहीं होता। क्षुधा–पिपासा विहीन व्यक्ति के निकट स्वादिष्ट व्यंजन भी सुखकर नहीं होते। गौड़ीय–वैष्णव आचार्यो ने विरह रस का ही भजन किया है। "पहले विरही बनो, फिर बाद में मिलन का सुखास्वादन करना"– यही उनकी शिक्षा है।

हे नाथ! श्रीगोविन्द! गिरिवरधारि!
हे राधे! गन्धर्विके! आमार ईश्वरी॥
मुखेते अंगुली दिया एइ वृन्दावने।
फुत्कार करिया आमि काँदि निशिदिने॥
क्षणकाल सुप्रसन्न हउ मोर प्रति।
करुणा नयाने चाह युगल-मूरति॥
अभिनव जलधरे स्थिर सौदामिनी।
दिव्य छवि दरशने जुड़ाव पराणि॥
अग्रेते दाँड़ाउ मोर युगल-रतन।
श्रीरूप गोस्वामी करे एई निवेदन॥31॥

ब्रजमधुरजनव्रजावतंसौ, किमपि युवामभियाचते जनोऽयम्।
मम नयनचमत्कृतिम् करोतु, क्षणमपि पादनखेन्दुकौमुदी वाम्॥

अन्वयः - (हे) व्रजमधुरजनब्रजावतंसौ (ब्रजे ये मधुर-जनसमूहाः तेषाम् शिरभूषणभूतौ) अयम् जनः युवाम् किमपि अभियाचते। (किम् याचसे? तत्राह) वाम् (युवयोः) पादनखेन्दुकौमुदी क्षणमपि मम नयनचमत्कृतिम् करोतु।

अनुवादः हे श्रीश्रीराधामाधव! तुम्हारी ब्रजमण्डल में उपस्थित मधुर मूर्ति समस्त नर-नारी की शिरोभूषण स्वरूप है, अतएव तुम्हारे निकट मैं कुछ प्रार्थना निवेदन करता हूँ- तुम्हाश्रीपाद-नखेन्दु छटा से मेरे नेत्र युगलों की चमत्कृति सम्पादित हो।

मकरन्दकणा व्याख्या।

श्रीश्रीपाद-नखेन्दु-छटाः

श्रीपाद का हृदय सिन्धु आलोड़ित है। परम अभीष्ट श्रीश्रीराधामाधव के दर्शनों के लिए नयन अधीर हैं। 'कब तुम मेरे नेत्र युगलों की चमत्कृति सम्पादन करोगे?' प्रेमिक भक्त आकांक्षा करता है- 'नयनों से तुम्हारा मधुर रूप देखूँगा और कानों से तुम्हारी वेणु एवं वीणा का मधुर संगीत श्रवण करुँगा।" श्रीबृहदभागवतामृत (2/2) में श्रीगोप कुमार के प्रति नवयोगीन्द्र में अन्यतम श्रीपिप्पलायन कहते हैं- "चक्षुओं के द्वारा इन्द्रियातीत श्रीभगवान् को नहीं देखा जा सकता, समाधि दशा में जो मानस-प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं-

वही यथार्थ दर्शन हैं। चित्त के अधिष्ठाता वासुदेव शुद्ध चित्त में ही स्फुरित होते हैं, चक्षु आदि अन्य इन्द्रियों में नहीं है।"

समाधत्स्व मनः स्वीयम् ततो दृक्ष्यसि तम् स्वतः।
सवर्वत्र बहिरन्तश्च सदा साक्षादिव स्थितम्॥
परमात्मा वासुदेवः सच्चिदानन्द विग्रहः।
नितान्तम् शोधिते चित्ते स्फुरत्येष न चान्यतः॥

यह शान्त भक्त के लिए कहा गया है। "शान्तेर स्वभाव कृष्णे ममता–गन्धहीन। परब्रह्म परमात्मा ज्ञानप्रवीण॥" (चै.च.)। इनके गुणों के अनुरूप अनुभवात्मक ईश सुख तो घटित होता है किन्तु दास आदि भक्तों की तरह मनोज्ञत्व (सौन्दर्य, सौकुमार्यादि) एवं लीला (गोवर्धन धारण, भक्तवश्यता आदि) माधुरी का अनुभव इन्हें नहीं होता, केवल मानस दर्शन ही प्राप्त होता है एवं इसमें ही यह कृतार्थता लाभ करते हैं।

तत्रापीशस्वरूपानुभवस्यैवोरूहेतुता।
दासादिवन्मनोज्ञत्व लीलादे र्न तथा मता॥

(भ.र.सि. – 3/1/6)

पिप्लायन द्वारा कथित सिद्धान्त गोपकुमार को प्रभावित न कर सका क्योंकि वे नयनों से श्रीभगवान् को देखने के लिए व्याकुल थे। बाद में जब वैकण्ठ पार्षद गणों के संग गोपकुमार का साक्षात्कार हुआ तब उन्होंने कहा–

श्रीकृष्णचन्द्रस्य महानुकम्पास्माभिः स्थिरा त्वय्यवधारितास्ति।
लीना न साक्षाद्भगवद्दिदृशा, त्वत्तस्तपोलोकनिवासिवाक्यैः॥
रूपम् सत्यम् खलु भगवतः सच्चिदानन्दसान्द्रम्,
योग्यैग्राह्यम् भवति करणैः सच्चिदानन्दरूपम्।
मांसाक्षिभ्याम् तदपि घटते तस्य कारुण्यशक्तया,
सद्यो लब्ध्या तदुचितगतेद्रर्शनम् स्वेहया वा॥
प्रभोः कृपापूरवलेन भक्तैः प्रभावतो वा खलु दर्शनम् स्यात्।
अतः परिच्छिन्नदृशापि सिध्येन्निरन्तरम् तन्मनसेव सम्यक्॥
न चेत् कथंचिन्न मनस्यपि स्यात्, स्वयम् प्रभस्येक्षणमीश्वरस्य।
घनम् सुखम् संजनयेत् कथंचिदुपासितः सान्द्रसुखात्मकोऽसो॥

(वृहद भागवतामृतम्)

अर्थात् 'हे गोपकुमार! हम समझ गए हैं कि तुममें श्रीकृष्ण की अचंचला महती अनुकम्पा विद्यमान है। क्योंकि तप-लोकवासी गण (पिप्पलायन आदि) के वाक्य भी तुम्हें प्रभावित नहीं कर सके एवं तुमने साक्षात् श्रीभगवान् के दर्शनों की इच्छा का त्याग नहीं किया। श्रीभगवान् का रूप सच्चिदानन्दघन, नित्य एवं परम सत्य है, किन्तु वह सच्चिदानन्द रूप योग्य इन्द्रियों (प्रेम विभावित) द्वारा ही ग्रहण किया जा सकता है। अतएव श्रीभगवान् की करुणा शक्ति के प्रभाव से दर्शन की योग्यता प्राप्त करने के उपरान्त ही चर्म-चक्षु उस अपरिच्छिन्न भगवत् स्वरूप के साक्षात् दर्शन कर सकते हैं। प्रभु की कृपा के प्रभाव से या भक्ति के प्रभाव से परिच्छिन्न बाह्य चक्षुओं के द्वारा भी भगवत् दर्शन होता है एवं वह दर्शन भी मानस नेत्रों के समान अपरिच्छिन्न एवं पूर्ण रूप से सिद्ध होता है। अत: प्रभु यदि कृपा न करें तो उन्हें मन के द्वारा, इन्द्रियों के द्वारा या अन्य किसी भी उपाय से देखना सम्भव नहीं है। कारण वे परमेश्वर हैं, वे स्वप्रकाश हैं एवं मनोनेत्रों के अगोचर हैं। अर्थात् वह प्रभु परम स्वतन्त्र एवं सर्वनियन्ता हैं, वे किसी भी रूप में थोड़ा भी उपासित होने पर अपरिसीम सुख प्रदान करते हैं।

विरही श्रीपाद श्रीश्रीराधामाधव की मधुरातिमधुर रूप माधुरी के दर्शनों के निमित्त व्याकुल हैं। कहते हैं- "हे ब्रजमधुरजनव्रजावतंसो! इस ब्रज में जो हैं, वे सभी मधुर हैं; प्रेम में, सौन्दर्य में, स्वभाव में, कारुण्य में, औदार्य में सभी निरूपम हैं। उनमें से तुम सभी के शिरोभूषण हो। तुम्हारा परम आकर्षक सौन्दर्य, माधुर्य सभी के मन-प्राण को उन्मादित कर देता है। तुम्हारा हृदय अपार करुणा रस से भरा है। दुखित जन की वेदना से तुम्हारा करुण चित्त विगलित है। इसी भरोसे के कारण शत-शत अयोग्यताएँ होते हुए भी तुम्हारे कृपा कण की प्राप्ति की आशा इस हृदय में भरी है। तुम प्रेममय एवं प्रेममयी हो, तुम इस ब्रज-विपिन में निरन्तर सुख-विलास रत हो। तुमसे अपना दु:ख निवेदन करने की इच्छा नहीं होती किन्तु क्या करूं मेरे प्राणों में अब और धैर्य शेष नहीं रहा। तुम्हारे विरहानल में मेरे मन प्राण निरन्तर दग्ध हो रहे हैं। अत: निवेदन किए बिना रह नहीं पाऊँगा। कृपा कर एक बार मुझे श्रीचरण दर्शन करवाओ।"

प्रार्थना की तरंगों में भासमान श्रीपाद के नयनों के सम्मुख युगल रूप स्फुरित हो उठा। उस स्थिर विद्युतलता जड़ित नवनीरद कान्ति से भुवन उजलित हो उठा। करुणा से पूर्ण श्रीमूर्ति है!! अमृत मधुर कण्ठ से स्वामिनी जैसे कह रही हैं– "रूपं! क्यों इतना रूदन करती हो? मैं तो सदा तुम्हारे निकट ही रहती हूँ।" आहा! मन–प्राण को विगलित कर देने वाला कैसा मधुर वचनामृत रस है! प्रत्येक अक्षर प्राणों में अमृत धारा उड़ेल रहा है। श्रीपाद का चित्त आनन्द से नृत्य करने लगा। प्रेमानन्द–पुलकित चित्त से श्रीचरणों की ओर दृष्टि गई तो नखेन्दु–कौमुदी का छटा से नयन चमत्कृत हो गए! प्रेमिक के प्रेम विभावित नेत्रों के समक्ष उस पद–नख माधुरी का आलोक क्या सामान्य है! श्रीकृष्ण की नखेन्दु–कौमुदी की छटा का वर्णन करते हुए महाकवि कर्णपूर लिखते हैं–

जय जय नन्दात्मज जय वृन्दावनरसकन्दातुलगुणवृन्दा–
धिकतरनन्दचिन्मकरन्द–स्वपदारविन्द–द्वयकुरूविन्द–
प्रभनखचन्द्रावलिभिरतन्द्रामलरूचिसान्द्राकृतिभिरलम्
द्रावितनिजलोक–व्यतिकरशोक स्फुरदस्तोक
प्रथितश्लोक श्रीधर धीर ब्रजवखीर
प्रकटाभीर–श्यामशरीर॥

(आनन्दवृन्दावनचम्पूः–15/220)

'हे श्रीनन्दनन्दन! तुम्हारी जय हो, जय हो! तुम विषय एवं आश्रय रूप में समस्त रसों के मूल कारण स्वरूप हो अथवा तुम वृन्दावन विषयक रस हो अर्थात् राग द्वारा सभी के सुख प्रदाता हो। तुम्हारे पदारविन्द–युगल अतुलनीय गुण–समूह से विभूषित हैं, अत्यधिक सुन्दर एवं समृद्धियुक्त चिद्–रूप मकरन्द विशिष्ट हैं। इन श्रीचरणों की नख रूपी चन्द्र श्रेणी पद्म राग मणि के समान प्रभाव युक्त है एवं अति अद्भुत, अखण्ड, निष्कलंक एवं निविड़ कान्ति द्वारा विराजित है। तुम जब अपने निजजन के संग मिलते हो तो अपने पदाम्बुज-द्वय की नखरूप चन्द्र मण्डली द्वारा उनके शोक अतिशय रूप से दूरीभूत करते हो। तुम्हारा प्रचुर विख्यात यश सर्वत्र स्फुरित हो रहा है। तुम असीम सौन्दर्य एवं सर्वप्रकार की सम्पत्ति को धारण करने वाले हो, तुम धीर

स्वभाव, ब्रज के श्रेष्ठ वीर एवं अखिल मोहन इस श्याम-गोप शरीर को प्रकट करते हो, तुम्हारी जय हो-तुम्हारी जय हो।

श्रीराधारानी के पद-नख-चन्द्र की कान्ति-माधुरी के वर्णन में श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद अद्वितीय हैं-

सुभगशिखरलक्ष्मी-कोटि-काम्यैकपादा
धृतनखमणिचन्द्रज्योतिरामोदमात्रा।
अतिमधुरचरित्राऽनंगलीलाविलासा
मम हृदि रसमूर्तिः स्फूर्तिमायातु राधा॥
नवरसमदघूर्णन्माधव प्राणकोटि-
प्रिय-नखमणिशोभा-सर्वसौभाग्यभूमिः।
स्फुरतु हृदि सदा मे कापि काश्मीररोचि-
र्ब्रजनगरकिशोरीवृन्द-सीमन्तभूषा॥
गोविन्द प्राणसर्वस्व-नखचन्द्रैकचन्द्रिका।
कापि प्रेमरसोदारा किशोरी मम जीवनम्॥ इत्यादि

(संगीत माधव-24-26)

जिनके श्रीचरण, सौभाग्यवती सुन्दरियों की शिरोमणि कोटि-कोटि लक्ष्मी की भी काम्य सम्पदा हैं, जो अपने नखमणि रूप चन्द्रमा की ज्योति के द्वारा साक्षात् आनन्द को धारण करती हैं, जिनका चरित्र अति मधुर है एवं जिनका लीला विलास पूर्णतः अनंगमय है, वही साक्षात् प्रेमरस की मूर्ति श्रीराधा मेरे हृदय में स्फुरित हों।

जिनकी नखमणियों की शेभा, नवरस के मद में सर्वदा घूर्णित चित्त माधव को कोटि-कोटि प्राणों की अपेक्षा अधिकतर प्रिय है, जो निखिल सौभाग्य की निवास स्थान हैं, वही कोई अनिर्वचनीया कुम्कुम तुल्य गौरकान्ति विशिष्टा, ब्रजवासिनी समस्त किशोरियों की शिरोमणि श्रीराधिका मेरे चित्त में निरन्तर स्फुरित हों।

जिनके नखचन्द्र की मात्र एक किरण-कणा गोविन्द का प्राण सर्वस्व है एवं जो प्रेम रस में सर्वोत्तमा हैं अथवा प्रेमरस दान के विषय में वदान्य-शिरोमणि हैं, वही कोई अनिर्वचनीया किशोरी श्रीराधिका मेरा जीवन स्वरूप हैं।

श्रीपाद की यह युगल छवि मधुर ब्रजजन की शिरोभूषण रूप में प्रतिभात हो रही थी। सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। आर्ति के साथ प्रार्थना करने लगे– "कब इन नयनयुगल की चमत्कृति सम्पादक तुम्हारी पदनखेन्दु छटा देख पाऊँगा ?"

हे वृन्दावनेश्वरि! श्रीमती राधिके!
हा कृष्ण करुणासिन्धु बलिहे तोमाकें॥
ब्रजेर मधुरमूर्ति यत नर नारी।
सवाकार शिरोमणि किशोर-किशोरी॥
ताइ त मिनति करि युगल-रूपेते।
वारेक दाँड़ाउ देखि आमार अग्रेते॥
युगलेर पाद पद्म-नखेन्दु-कौमुदी।
नयनेर चमत्कृति होक निरवधि॥
काँदिया काँदिया कुंजे दिवस रजनी।
एइ त प्रार्थना करे श्रीरूप गोस्वामी॥32॥
अतर्कितसमीक्षणोल्लसितया मुदा श्लिष्यतो-,
र्निकुन्जभवनांगनेस्फुरितगौरनीलांगयोः।
रूचः प्रचुरयन्तु वाम् पुरटयूथिकामंजरी-,
विराजदलिरम्ययोर्मम चमत्कृतिम् चक्षुषोः॥33॥

अन्वयः– निकुंजभवनांगने (कुंजमन्दिरचत्वरे) अतर्कित समीक्षणोल्ल-सितया (अतर्कितमाकस्मिकम् यन्मिथः समीक्षणम् तस्मादुल्लसितया प्रवृद्धया) मुदा श्लिष्यतोः (प्रीत्या आलिंगतोः पुरटयूथिका मंजरीविराजदलिरम्ययोः (स्वर्णयूथिका मंजरी च तस्याम् विराजन्नलिश्चतयोरिव रम्ययोः) स्फुरितगौरनीलांगयोः वाम् (युवयोः) रूचः (प्रभाः) मम चक्षुषोः चमत्कृतिम् प्रचुरयन्तु (प्रचुरा कुवर्वन्तु)।

अनुवादः – हे श्रीराधामाधव! निकुंज भवन में तुम परस्पर के दर्शनों से प्रचुर आनन्दित होकर प्रीति से भरकर परस्पर को आलिंगन करोगे तो स्वर्णयूथिका कुसुम पर स्थित भ्रमर के समान तुम्हारी गौर-नील अंग-शोभा मेरे नयनयुगल की समधिक चमत्कृति विस्तार करेगी।

मकरन्दकणा व्याख्या।

गौर-नीलांग-शोभा:

श्रीपाद स्फुरण में श्रीश्रीयुगलकिशोर की पदनखचन्द्र ज्योति की माधुरी का आस्वादन कर रहे थे। स्फूर्ति में विराम आ जाने पर उत्कण्ठा से चित्त व्याकुल हो गया तो प्रार्थना करने लगे- तुम्हारी पदनखचन्द्र-कौमुदी छटा मेरे नयनों की चमत्कृति विधान करे। स्वरूप आवेश की प्रार्थना है, स्वरूपोत्थ आकांक्षा से हृदय निष्पोषित है। जो श्रीचरण नखाग्र अफुरन्त मधु अथवा आनन्द धारा के मूल उत्स हैं- "विष्णो: पदे परममधव: उत्स:" (श्रुति)। जिस मधु या आनन्द की मात्र एक कणिका निस्यन्दित होकर इस दुखमय विश्व को भी सुन्दर एवं आनन्दित कर देती हैं- 'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' (श्रुति)। जिस सौन्दर्य के बिन्दु मात्र के अनुभव से मानव कुल विश्व के सुख, दुख, प्रिय, अप्रिय, लाभालाभ समस्त द्वन्द-धर्मो से अतीत हो पाता है, मुक्ति-पद उसे अति तुच्छ अनुभव होने लगता है, जिसके अनुभव से ब्रह्मा, शिव, नारद, सनक आदि अति गम्भीर होते हुए भी अपनी स्थिरता के रक्षण में समर्थ नहीं हो पाते, कोई प्रेमिक भक्त जब प्रेम विभावित नयनों से इस श्रीचरणनखमाधुरी का आस्वादन करता है तो वह किसी अपूर्व भाव दशा को प्राप्त करता है, यह सहज ही अनुमय है। श्रीपाद स्फूर्ति के आस्वादन में जैसे आनन्द से विह्वल हो गए थे, स्फूर्ति के विराम में वैसे ही विरह ज्वाला से अधीर हो गए। श्रीराधामाधव की कृपा से सहसा एक अपूर्व लीला का स्फुरण प्राप्त हुआ।

दिवाभिसार है। श्याम की वंशी ध्वनि से विमोहित होकर श्रीराधारानी उन्मादिनी की तरह वेग से भर कर अभिसार को जा रही हैं। किंकश्रीरूप मंजरी छाया की तरह श्रीमती के पीछे-पीछे चल रही हैं।

माथाहिं तपन, तपन-पथ-बालुक
आतप दहन विथार।
नोनिक पुतलि तनु, चरण कमल जनु,
दिनहिं कयल अभिसार॥
हरि हरि! प्रेमक गति अनिवार।
कानुक-परश-रसे परवश रसवती

विछुरत सबहुँ विचार॥
गुरुजन नयन पाशगण-वारण
मारूत मण्डल-धूलि।
ता संगे मेलि' चललि वर रंगिणि
पतिगेह-नीतहि भूलि'॥
यत यत विधिनि जितलि अनुरागिणी
साधलि मनसिज-मन्त्र।
गोविन्द दास कहइ अव समझउ
हरि संगे रसमयतन्त्र॥

वर्षा के जल से पुष्ट तरंगिणी जैसे उद्दाम तरंगों से पूर्ण होकर दुकुल (दोनों तटों) को प्लावित करती हुई, अपने ही भाव में विभोर होकर खरतर नाद करते हुए सागर मिलन को दौड़ी चली जाती है, उसी प्रकार कृष्ण अनुराग-पुष्टा श्रीराधा-सुरतरंगिणी आज दुकुल (पितृकुल एवं श्वसुरकुल) प्लावित करती हुई, अपूर्व रूप माधुर्य की तरंगों से पूर्ण होकर श्याम सिन्धु से मिलन के लिए सवेग चली जा रही हैं। रूप मंजरी उनका अनुसरण करते-करते कह रही हैं- 'हे राधे, बन्धु मिलन का पथ कंकड़-कंटकाकीर्ण है, इतनी तीव्रगति से गमन करना उचित नहीं, थोड़ा धीरे चलो। इन सुकोमल श्रीचरणों में आघात लगेगा।'

राधे! पथि मुंच सम्भ्रममभिसारे।
चारय चरणाम्बुरूहम् धीरम् सुकुमारे॥

(महाजन)

श्रीमती दूर से प्रसारित श्याम की अंग-गंध पाकर भृंगी की तरह उस गंध का अनुसरण करते हुए चली जा रही हैं। श्यामसुन्दर एक निर्जन कुंज के प्रांगण में एक रत्न वेदी पर उपविष्ट हैं। श्रीराधारानी के आगमन के विषय में चिन्तन कर रहे हैं। श्रीमती के चिन्तन में तन्मय हैं! सहसा कुंज प्रांगण में नूपुर ध्वनि सुनाई दी। चमकित नयनों से उस ओर देखा तो पाया कि रूप मंजरी के संग श्रीमती कुंज प्रांगण में आ उपस्थित हुई हैं। कुंज प्रांगण स्वर्ण आलोक से उद्‌भासित हो उठा। आनन्दमय के चित्त में आनन्द सिन्धु उच्छ्वसित हो उठा। परस्पर के दर्शन कर दोनों ही रससिन्धु में निमज्जित हो गए।

दुहूँ दोंहा दरशने उलसित भेल।
आकुल अमिया सागरे डुवि गेल॥
दुहूँ जन-नयन होयल यव थिर।
दुहूँ मुख दुहूँ हेरि ढरकत नीर॥

(गोविन्द दास)

सहज वाम्यवती, आज कितनी उदार हैं। प्रेमोच्छ्वास से परस्पर आलिंगन बद्ध हैं। स्वरूपाविष्ट श्रीपाद देख रहे हैं- वह गौर-नील अंग छवि स्वर्ण यूथिका पर मधुपान में रत भृंग की शोभा से भी अधिक रम्य है। कोई भी उपमान वस्तु उस रूप के तुल्य नहीं हो सकती।

दुहूँ मुख सुन्दर कि दिव तुलना।
कानु मरकतमणि राई काँचा सोना॥
नव गोरोचना गोरी कानु इन्दिवर।
विनोदिनी विजुरी विनोद जलधर॥
कनकेर लता येन तमाले वेड़िल।
नवधन माझे येन विजुरी पशिल॥
राइ-कानु रूपेर नाहिक उपाम।
कुवलय-चाँद मिलल एक ठाम॥
रसेर आवेशे दुहूँ हइला विभोर।
दास अनन्त पहूँ ना पाउल उर॥

उस युगल रूप के रस-सरोवर में श्रीपाद की नयन-शफरी सुख से सन्तरण कर रही है। आस्वादन का भार सहन न कर पाने के कारण नयन चमत्कृत हैं। यह चमत्कृति ही रस है। "रसे सारश्चमत्कारो यम् विना न रसो रस:" (अलंकार कौस्तुभ)। यह चमत्कारिता विस्मय उत्पन्न नहीं करती अपितु आनन्द को वहन कर ले आती है। आनन्द आकर अन्तर को पुलकित कर देता है। प्राण विभोर हो जाते हैं और इन्द्रिया अवश हो जाती हैं। तब चिद्-जगत मधुर, जड़-जगत मधुर, मधुर श्रीश्रीराधामाधव सर्वाधिक मधुर अनुभव होते हैं। 'मधुरम्, मधुरम् मधुरम् मधुरम्। आस्वादन की अतिशयता से स्वरूपाविष्ट श्रीपाद के नयन-मन विभोर थे। सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। रस सिन्धु से जैसे दु:ख के सागर में आ गिरे। नयन युगल जैसे धुधला

हो गए प्रार्थना करने लगे– "स्वर्ण यूथिका कुसुम–मंजरी पर स्थित भृंग के समान तुम्हारी गौर–नील अंग छवि मेरे नयनों की चमत्कृति सम्पादन करे।"

निकुन्ज अंगन माझे नवीन युगल।
अतर्कित दरशने आनन्द विह्वल॥
परस्पर आलिंगन गौर–नील तनु।
कनक यूथिका परे मधुकर जनु॥
सेइ श्रीराधामाधव युगल रतन।
नयनेर चमत्कृति करू सर्वक्षण॥33॥

साक्षात् कृतिम् वत ययोर्न महत्तमोऽपि,
कर्तुम् मनस्यपि मनाक् प्रभुतामुपैति।
इच्छन्नयम् नयनोः पथि तो भवन्तो,
जन्तुर्विजित्य निजगार भियम् ह्रियंच॥34॥

अन्वयः – वत (इति विस्मये) महत्तमः अपि (सर्व साधन सम्पन्नः साधुवर्य्योऽपि) मनसि अपि ययोः (ह्लादिनी–विज्ञानघनयोः सर्वेश्वरयोः) मनाक् (अल्पाम्) साक्षात्कृतिम् कर्तुम् प्रभुताम् न उपैति (समर्थो न भवति), तौ भवन्तौ नयनयोः पथि इच्छन् (नेत्रगोचरो चिकीर्षन्) अयम् जन्तुः (अति दुर्वासनामन्दधीः मल्लक्षणो जनः) भियम् ह्रियंच विजित्य निजगार (गिलित्वान्, निर्भयनिलर्ज्जश्चाहमित्यार्थः)।

अनुवादः– हे श्रीराधामाधव! कैसा आश्चर्य है! सर्वसाधन सम्पन्न महात्मागण भी जिनका मन में क्षण काल के लिए भी दर्शन करने में सक्षम नहीं होते, उस स्थान पर अति दुर्वासना–ग्रस्त मन्द बुद्धि जन मैं तुम्हारे दर्शनों की इच्छा कर रहा हूँ। अहो! मैं क्या भय–लज्जा आदि को सभी को एक संग खाकर शेष कर चुका हूँ?

मकरन्दकणा व्याख्या।

दुराशाः

श्रीपाद ने युगल रूप–माधुर्य से नयनों की चमत्कृति सम्पादन की प्रार्थना निवेदन की है। साधक आवेश में अपनी अयोग्यता के अनुभव से हाहाकार कर उठे। दैन्य प्रेम को उत्पन्न करता है एवं प्रेम दैन्य को उत्पन्न करता है, दोनों ही परस्पर के कार्य एवं कारण हैं। विशेषतः विरह जनित परम

दैन्य ब्रज जातीय प्रेम की प्रशस्तता सूचित करता है। दैन्य से उत्पन्न व्याकुलता ही भक्ति के प्राण हैं, वही भगवत् कृपा को आकर्षित कर ले आती है। गोस्वामीपाद गण नित्य परिकर होते हुए भी जीव को शिक्षा प्रदान करने के लिए साधक की भूमिका ग्रहण कर इस जड़ जगत में उतर कर आए हैं एवं जिस प्रकार की आर्ति एवं दैन्य उन्होंने प्रकाशित की है वह साधक के नयनों के सम्मुख आज भी विद्यमान है एवं अनन्त काल तक साधकगण को अभीष्ट-वस्तु की प्राप्ति के लिए महाव्याकुलता से अनुप्राणित करती रहेगी।

श्रीपाद कहते हैं- "सर्वसाधन सम्पन्न महात्मागण क्षणकाल के लिए, ध्यान में भी जिनका दर्शन करने में सक्षम नहीं होते, ऐसे सुदुर्लभ हैं श्रीश्रीराधामाधवचरण।" श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती लिखते हैं-

यो ब्रह्म-रुद्र-शुक-नारद-भीष्ममुख्यै,-
रालक्षितो न सहसा पुरुषस्य तस्य।
सद्योवशीकरण-चूर्णमनन्तशक्तिम्,
तम् राधिका-चरणरेणुमनुस्मरामि॥

(राधारससुधानिधि-4)

"ब्रह्मा, महादेव, शुक, नारद, भीष्म प्रमुख महाभागवतगण भी सहसा जिनका साक्षात्कार करने में समर्थ नहीं होते, उन परम पुरुष स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के पूर्ण वशीकरण-विषय में अनन्त शक्ति सम्पन्न, सिद्ध वशीकरण चूर्ण के समान श्रीराधा की श्रीचरणरेणु की मैं नित्य वन्दना करता हूँ।" तात्पर्य यह है कि बाल्य, पौगण्ड अवस्था में लीला परायण श्रीकृष्ण के दर्शन, ब्रह्मा, नारद आदि को कदाचित् हो भी जाएँ किन्तु ब्रज सुन्दरियों के संग लीला विलासी परम पुरुष श्रीकृष्ण के दर्शन उनके लिए सुदुर्लभ हैं। कारण पुरुष-अभिमानी सिद्ध या साधकगण के लिए वे सर्वथा दुर्लक्ष्य हैं। ब्रज की उपासना शुद्ध माधुर्य की उपासना है। ऐश्वर्य भाव से माधुर्य-मूर्ति ब्रजेन्द्रनन्दन को प्राप्त करने की कोई सम्भावना नहीं है। "ऐश्वर्य ज्ञाने ना पाय ब्रजे ब्रजेन्द्रनन्दन।" "रागभक्त्ये ब्रजे स्वयं भगवान् पाय। विधि भक्त्ये पार्षद देहे वैकुण्ठे याय॥" (चै.च.)। द्वितीयत: ब्रज में भी एकमात्र सखिगण के अतिरिक्त दास्य वात्सल्य आदि रसो के उपासकगण भी श्रीराधागोविन्द के दर्शन लाभ में सक्षम नहीं होते। "सबे एक सखीगणेर इहाँ अधिकार" (चै.च.

) सुबल आदि सखागण भी दर्शन कर पाते हैं क्योंकि वे सखीभाव समाश्रित हैं।

और अधिक क्या कहा जाए, श्रीभगवान् की द्वारका एवं मथुरा लीला के नित्य पार्षद श्रीउद्धव महाशय भी जब माथुर–विरही ब्रज–जन की सान्त्वना के लिए श्रीकृष्ण द्वारा ब्रज में भेजे गए तो श्रीराधा आदि ब्रज सुन्दरियों के, कोटि–कोटि महासिन्धु की उच्छ्वासमयी तरंग मालाओं के समान, प्रेम सिन्धु की तरंगोच्छ्वास दर्शन कर वे भी सानन्द चमत्कार से स्तब्ध हो गए थे एवं स्वयं को इस अद्‌भुत प्रेम के सर्वथा अयोग्य मान कर ब्रज सुन्दरीगण के मध्य, उनकी मात्र चरण रेणु प्राप्ति की कामना से ब्रज में तृण–गुल्म आदि के जन्म की प्रार्थना करने लगे थे।

आसामहो चरणरेणुजुषामहम् स्याम्
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजम् स्वजनमार्यपथंच हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीम् श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

(भा.–10/47/61)

"अहो! मैं अति दुर्लभ विषय की कामना कर रहा हूँ। इस वृन्दावन में जो सब तृण, गुल्म, लता औषधि आदि हैं, वे सभी परम सौभाग्यवान एवं सौभाग्यवती हैं। क्योंकि वे सब इन ब्रजांगनाओं की चरण रेणु को अनायास ही अपने मस्तक पर धारण कर पाती हैं। यदि इन तृण, गुल्म, लता, औषधि आदि के मध्य कोई भी जन्म लाभ कर पाऊँ तो मैं भी अनायास ही इन ब्रजांगनाओं की श्रीचरणरेणु प्राप्त कर धन्य हो पाऊँगा। यह ब्रजांगनाएँ दुस्त्यज स्वजन, आर्य पथ आदि का त्याग कर भजन करती हैं अर्थात् जो लोक मर्यादा, वेद मर्यादा श्रीलक्ष्मी प्रभृति के लिए भी दुस्त्यज है, क्योंकि वे (लक्ष्मी आदि) श्रीभगवान् का सर्वलोक सर्व महावेद पुरुषार्थसार आदि बुद्धि से भजन करती हैं अत: उनमें श्रीभगवान् के लिए उत्कट राग नहीं होता। किन्तु ब्रजांगनाए नन्दनन्दन बुद्धि से, प्रगाढ़ अनुराग के आवेग से स्वजन, आर्यपथ आदि का त्याग कर जिस मुकुन्द पदवी का अवलम्बन करती हैं, श्रुति गण भी उसका अन्वेषण करती हैं किन्तु निर्देश नहीं कर पातीं।" इस कथा का अभिप्राय यह है कि, श्रील ब्रजांगनागण जिस प्रीति पूर्ण आकुल

पिपासा के आवेग से श्रीकृष्ण को प्राप्त करती हैं, वह वेद विधि एवं उद्धव आदि महा मनस्वीगण के भी अगोचर है। वेद शास्त्र एवं तद्-अनुगत महाजनगण जीव को कर्तव्य पथ का ही उपदेश दे पाते हैं क्योंकि ऐसी रागमयी विशाल पिपासा की खबर वे जान ही नहीं पाते।

उन ब्रजांगनाओं की शिरोमणि श्रीराधारानी एवं उनके प्राणनाथ श्रीगोविन्द के दर्शन की कामना कितनी सुदुर्लभ वस्तु है इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। वस्तुत: अन्यान्य युगों में भी श्रीराधामाधव की उपासना शास्त्र, श्रुति एवं महाजनगणों के लिए इसी प्रकार सुदुर्लभ ही होती है। ब्रह्मा के एक दिन में अर्थात् कल्पान्त में जब द्वापर में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण अवतीर्ण होते हैं एवं उसके परवर्ती कलियुग में ब्रज लीला की असम्पूर्ण तीन वांछाओं के प्रति प्रलुब्ध होकर श्रीराधारानी का भाव एवं कान्ति ग्रहण कर ब्रजेन्द्रनन्दन जब नवद्वीप में श्रीगौरसुन्दर के रूप में अवतीर्ण होते हैं तब वे ही इस रहस्यमयी युगल उपासना का प्रचार करते हैं। महाजन लिखते हैं-

यदि गौर न हत, कि मेने हइत,
केमते धरिताम दे।
राधार महिमा, प्रेमरस सीमा,
जगते जानात के?
मधुर वृन्दा-, विपिन माधुरी,
प्रवेश चातुरी सार।
बरज युवती, भावेर भक्ति
शकति हइत कार?

श्रीपाद साक्षात् ब्रज की रूप मंजरी हैं। मंजरी भाव साधना को जीव जगत में प्रवर्तित कर जीव को धन्य करने के लिए श्रीमन्महाप्रभु के संग अवतीर्ण हुए हैं। श्रीपाद ने उस विशाल, विपुल मंजरी-भाव साधना का आचरण कर साधकों को पथ दिखाया है एवं वह सम्पदा निज-प्रणीत ग्रन्थों में भी सुरक्षित रख गए हैं। भक्त के भूषण दैन्य, आर्ति एवं उत्कण्ठा का आदर्श भी उन्होंने प्रस्तुत किया है। तभी कहते हैं- "महामहत्गण जिनका मन में भी दर्शन करने में समर्थ नहीं होते, मेरे जैसा दुर्वासना ग्रस्त मन्दबुद्धिजन

उनके दर्शन की कामना कर रहा है? अहो! मेरी कैसी दुराशा है! हाय! मैं क्या भय लज्जा को एक संग खा कर शेष कर चुका हूँ।"

हे गोविन्द रसिकेन्द्र-चूडामणि!
हे वृन्दावनेश्वरी! राधा ठाकुराणी!
योगीन्द्र मुनीन्द्र आदि यत महाजन।
ताँहादेरउ सुदुर्लभ युगल-दर्शन॥
सेइ स्थाने मन्दबुद्धि आमि अकिंचन।
साक्षात् करिते चाहि युगल-चरण॥
असम्भव प्रार्थनाते आमि लज्जा भय।
सब जय करियाछि हेन मने लय॥34॥

अथवा मम किम् नु दूषणम्, वत वृन्दावनचक्रवर्त्तिनौ।
युवयोर्गुणमाधुरी नवा, जनमुन्मादयतीह कम् न वा?॥35॥

अन्वय: - (हे) वृन्दावनचक्रवर्तिनौ (श्रीश्रीराधामाधवौ) वत (निघरि) अथवा मम नु (अनुनये) किम् दूषणम्, इह (वृन्दावने। युवयो: नवा (नित्य नवीना) गुण माधुरी (दीनोद्धारकता पतितपावनतादीनाम् गुणानाम् रूचिरता) कम् वा जनम् न उन्मादयति? (रंकस्य लोभो वस्तुरम्यत्वहेतुक इति भाव:)।

अनुवाद:- हे श्रीश्रीराधामाधव! अरे इस विषय में मेरा दोष ही क्या है? तुम्हारी नित्य नवीन गुण माधुरी किस व्यक्ति को उनमादित नहीं करती?

मकरन्दकणा व्याख्या

नित्य नवीन गुण-माधुरी:

पूर्व श्लोक में श्रीपाद महामहत्गण के लिए भी दुष्प्राय अथवा दुर्लक्ष्य श्रीश्रीराधामाधव के श्रीचरणों के दर्शन की लालसा के लिए स्वयं को धिक्कार रहे थे। सहसा श्रीयुगल की गुण माधुरी के स्फुरण से चित्त, आशा के आलोक से प्रदीप्त हो उठा। 'तुम्हारे दीनोद्धारका, पतितपावनता आदि गुण किसे उन्मादित नहीं करते? "आपना अयोग्य देखि मने पाऊँ क्षोभ। तथापि तोमार गुणे उपजाय लोभ॥ (चै.च.)"

प्राचीनानाम् भजनमतुलम् दुष्करम् शृन्वतो मे,
नैराश्येन ज्वलति हृदयम् भक्तिलेशालसस्य।

विश्वद्रीचीमधहर तवाकर्ण्य कारुण्यवीची,
माशाबिन्दूक्षितमिदमुपैत्यन्तरे हन्त शैत्यम्॥

(स्तवमाला)

"हे अधहर! शुक, अम्बरीष आदि प्राचीन महात्मागण के दुष्कर भजन साधन के विषय में श्रवण कर, भक्तिलेश शून्य मेरा हृदय निराशावश अनुतप्त हो रहा है। किन्तु ब्रह्मा आदि से लेकर दीन-हीन पामर पर्यन्त गामिनी तुम्हारी कृपा लहरी के विषय में साधु-शास्त्रों के मुख से श्रवण कर हृदय आशा बिन्दु से सुशीतल हो रहा है।"

करुणामय श्रीगोविन्द ने पूतना राक्षसी को धात्री गति प्रदान की थी, इस पतितपावनी गुण या लीला का श्रवण कर उनकी कृपा प्राप्ति के लिए किसके हृदय में आशा का संचार नहीं होता? "आरम्भादेव लीलया वकीधात्रीगतिप्रद:। कृष्ण: स्वगुणमाधुर्ये तृष्णयामास वैशणवान्॥" (वैष्णवतोषणी)। श्रीनन्दनन्दन ने पूतना राक्षसी का वध कर अपनी करुणा की लीला का सूत्रपात किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने अपने पतितपावनत्व एवं भक्त वात्सल्य आदि गुण माधुर्य के प्रति अपने भक्तों में लालसा उत्पन्न करने के लिए ही राक्षसी को जननी-गति प्रदान करने की लीला की। जिनके भक्त के वेश एवं भाव का अनुकरण मात्र करने से राक्षसी को भी जननी-गति प्राप्त हो जाती है, यदि वास्तव में उनका भक्त होकर, सर्वोपरि ब्रजजन के आनुगत्य में भजन किया जाए तो न जाने और भी क्या कुछ प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिए गो-वत्स हरण लीला में श्रीब्रह्मा श्रीकृष्ण-स्तव प्रसंग में कहते हैं-

एषाम् घोषनिवासिनामुत भवान् किम् देव रातेति न-
श्चेतो विश्वफलात् फलम् त्वदपरम् कुत्राप्ययन्मुह्यति।
सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता
यद्धामार्थसुहृतप्रियात्मतनय-प्राणाशयास्तवत्कृते॥

(भा॰ - 10/14/35)

'हे देव! पूतना राक्षसी जिन ब्रजवासी गोपरमणीगण के वेश मात्र का अनुकरण करने से अपने भ्रातगण सहित आपके श्रीचरणों का आश्रय प्राप्त कर कृतार्थ हुई थी, उन ब्रजवासीगण को, जिनके ग्रह, धन, मित्र प्रभृति सर्वविध प्रीत्यास्पद वस्तुएँ एकमात्र आपके ही सुख के लिए हैं, उन ब्रजवासीगण

को आप क्या देंगे (क्या वस्तु देने से उनके प्रेम के अनुरूप होगा), वह मैं भुक्ति, मुक्ति, सिद्धि से आपके श्रीचरणों की प्राप्ति पर्यन्त सर्वविध फलों का विचार करके भी उनमें से कौन सी वस्तु उनके प्रेम के उपयुक्त प्रतिदान होगा- उसकी मैं धारण भी नहीं कर पा रहा। अत: उनके प्रेम में आपको चिरकाल के लिए ऋणी ही रहना होगा।'

श्रीउद्धव महाशय ने भी इन गुणों की बात का उल्लेख करते हुए उनकी शरणागति की प्रयोजनियता का वर्णन किया है-

अहो वकीयम् स्तनकालकूटम् जिघांसयापाययदप्यसाधवी।
लेभे गतिम् धाक्रयचिताम् ततोऽन्याम् कम्वा दयालुम् शरणं ब्रजेम्॥

(भा. 3/2/23)

"अहो! पूतना राक्षसी जिसने प्राणों के विनाश की वासना से श्रीकृष्ण को अपने स्तनों से क्षरित उग्र विष का पान करवाया था, उसने भी वही धात्री-सदृशी गति लाभ की थी। अर्थात् श्रीकृष्ण ने उसके मात्र भक्त वेष का दर्शन कर उसे सद्‌गति प्रदान की थी- उनके अतिरिक्त अन्य कौन दयालु है जिसकी शरण ग्रहण करूँ?"

श्रीराधारानी के करुणा-गुण की तो कोई तुलना ही नहीं है, करुणा से उनकी देह विगलित हो जाती है। प्राणी मात्र का दुख-लेश भी वे सहन नहीं कर पाती। श्रीपाद उज्ज्वल नीलमणि ग्रन्थ में श्रीमती के करुणा गुण का दृष्टान्त लिखते हैं-

तार्णसूचिशिखयापि तर्णकम्, विद्धवत्तमवलोक्य सास्त्रया।
लिप्यते क्षणमवाप्तवाधया, कुम्कुमेन सहसास्या राधया॥

श्रीवृन्दा श्रीपौर्णमासीदेवी से कहती हैं- "हे देवि! श्रीराधारानी के जैसी करुणामयी और कोई नहीं देखी। एक बार एक गो-वत्स के मुख को तृण से चोटिल देखा तो सहसा उसके चक्षुओं से अश्रुपात होने लगा एवं दु:ख से कातर होकर उसने कुम्कुम-पंक द्वारा क्षत स्थान पर लेप लगा दिया। इस श्लोक की टीका में श्रीमत् जीव गोस्वामी पाद लिखते हैं- "तर्णकोऽम् स्वकान्तायोपहरणीयदुग्धया धेनोरिति ज्ञेयम्" अर्थात् इस गोवत्स को श्रीराधा निजकान्त श्रीकृष्ण की ही प्रिय धेनु का वत्स जान रही थीं। तात्पर्य यह है कि जहाँ-जहाँ श्रीकृष्ण की सेवा एवं सुख का सम्पर्क है वहाँ-वहाँ श्रीराधा का

हृदय करुणा से अधिकतर विगलित होता है। अतः श्रीकृष्ण सेवा के लिए जो अधीर रहते हैं, उनके प्रति श्रीराधा की करुणा का अन्त नहीं है। श्रीपाद कहते हैं "तुम्हारी कृपा पतितपावनी है, मैं भी पतित हूँ अतः कृपा का योग्य पात्र हूँ। तुम्हारी पतितपावनी कृपा मेरे जैसे पतित का उद्धार कर सफल हो।" दैन्यता की खान श्रील रूप-सनातन ने भी श्रीमन्महाप्रभु के निकट ऐसी ही प्रार्थना की है-

आमा उद्धारिते वली नाहि त्रिभुवने।
पतितपावन तुमि - सवे तोमा विने॥
आमा उद्धारिया यदि देखाउ निजवल।
पतितपावन नाम तवे से सफल॥
सत्य एक बात कहों - शुन दयामय।
मो - विनु दयार पात्र जगते न हय॥
मोरे दया करि कर स्व-दया सफल।
अखिल ब्रह्माण्ड देखुक तोमार दया-बल॥

(चै.च.)

श्रीपाद कहते हैं- 'हे श्रीराधामाधव! तुम्हारी नित्य नवीन गुण-माधुरी किसे उन्मादित नहीं करती? तुम्हारी कृपा योग्यता-अयोग्यता का विचार ही हृदय में नहीं आने देती। जो उन्मत्त हो जाता है उसमें फिर विचार-शक्ति ही कहाँ रह जाती है। अतः मुझ जैसा अयोग्य-अधम यदि तुम्हारी करुणा की कामना करता है तो निश्चय ही यह दोष का विषय नहीं है। रम्य वस्तु के प्रति दरिद्र का लोभ होना, यह तो वस्तु का ही गुण है, वस्तु की रमणीयता ही उसका कारण है। इसमें दरिद्र का क्या दोष है? तभी यह दुरन्त प्रत्याशा प्राणों में जागती है।' जैसे श्रील सरस्वतीपाद ने कहा है-

न देवैब्रह्माद्यैर्न खलु हरिभक्तैर्न सुहृदा,-
दिभिर्यद्वै राधामधुपति-रहस्यम् सुविदितम्
तयोर्दासीभूत्वा तदुपचितकेलीरसमये,
दूरन्ताः प्रत्याशा हरि हरि दृशोर्गोचरयितुम्॥

(राधारससुधानिधि - 149)

जिन श्रीराधामाधव का रहस्य ब्रह्मा आदि देवगण को, हरि भक्तगण को, यहाँ तक कि सुहृदगण को भी निश्चित रूप से विदित नहीं है, हरि! हरि! उन श्रीराधामाधव की दासी बनकर उनकी रसमयी निकुंज-केलि के दर्शनों के निमित्त मेरी दुरन्त प्रत्याशा है।

मोर किछु दोष नाई कहि सत्य करि।
उन्मादित करे सवे युगल-माधुरी॥
पतितपावनता गुणे विमत्त ये आमि।
एइ त प्रार्थना करे श्रीरूप गोस्वामी॥35॥

अहह समयः सोऽपि क्षेमो घटेत नरस्य किम्,
व्रजनटवरो यत्रोद्दीप्ता कृपासुधयोज्ज्वला।
कृतपरिजनश्रेणिचेतश्चकोरचमत्कृति,-
व्रंजति युवयोः सा वत्तेन्दूद्वयी नयनाधवनि?॥36॥

अन्वयः - (हे) व्रजनटवरौ (श्रीराधामाधवौ) अहह! सोऽपि क्षेमः समयः नरस्य (माम्) किम् घटेत? यत्र उद्दीप्ता कृपासुधया उज्ज्वला कृतपरिजनश्रेणीचेतश्चकोरचमत्कृतिः युवयोः सा वत्तेन्दुद्वयी (मम) नयनाधवनि ब्रजति।

अनुवादः- हे ब्रज नटवर श्रीश्रीराधामाधव! एक दिन अति सुन्दर कृपा-पीयूष पूर्ण सखी-चित्त-चकोर के चमत्कृतिप्रद तुम्हारे वदनचन्द्र-द्वय, मेरे नयन पथ के पथिक होंगे, ऐसा शुभावसर क्या मुझे प्राप्त होगा?

मकरन्दकणा व्याख्या

वदनचन्द्रद्वयः

श्रीयुगल की गुण माधुरी की स्फूर्ति से प्रदीप्त आशा के आलोक से श्रीपाद का नैराशय-अंधकार नष्ट हो गया। इस श्लोक में पुनः श्रीश्रीराधाश्याम के वदनचन्द्र के माधुर्य आस्वादन की लालसा व्यक्त कर रहे हैं। श्रीश्रीराधामाधव निरन्तर श्रीपाद के अन्तर में विराजते हैं। युगलनिष्ठा ने पूर्णरूप से आत्मा को निगल लिया है।

स्मरण में, स्वप्न में, स्फुरण में निरन्तर दर्शन प्राप्त करते हैं किन्तु फिर भी तृप्त नहीं होते; साक्षात् चाहते हैं। बाह्य दशा में श्रीयुगल का तीव्र अभाव अनुभव करते हैं, श्रीमुखचन्द्र दर्शन की आशा में हृदय विदारक विलाप करते

हैं! इस प्रेम के प्रवाह में कहीं विराम नहीं है, कहीं विश्राम नहीं है। प्रेम-तटिनी का अविराम प्रवाह अनन्त आशा की तरंगी से व्याप्त होकर श्रीराधामाधव-सिन्धु की ओर निरन्तर दौड़ता चला जा रहा है। श्रीपाद श्रीमन्महाप्रभु के प्रिय पार्षद हैं, उनमें भी श्रीमन्महाप्रभु की दिव्योन्मादलीला के ब्रजरससुधार्णव की उत्ताल-तरंगमालाओं का यत्किंचित् संक्रमण हुआ है। वही-

काँहा करों काँहा पाँऊ व्रजेन्द्रनन्दन।
काँहा मोर प्राणनाथ मुरलीवदन॥
काहारे कहिव के वा जाने मोर दुःख।
व्रजेन्द्रनन्दन विना फाटे मोर वुक॥ (चै.च)

हमारे श्रीपाद युगलमाधुरी आस्वादन के लिए पागल हैं। श्रीराधामाधव की कृपा से सहसा एक मधुर लीला का स्फुरण जगा। श्रीवृन्दावन में यमुना के तट पर, अपूर्व नैसर्गिक शोभा के परिवेश में, एक विस्तृत मणिमय वेदी के ऊपर कुछेक सखियों से घिरे श्रीश्रीराधाश्याम विराजमान है। गौर-नील कान्ति से दिगन्त उज्ज्वल है। रूप सुधा अजस्र-भाव से झर-झर कर गिर रही है। सखीगण के नयन चकोर आस्वादन में निमग्न हैं। युगल-माधुरी के दर्शन कर सखियों के मन में श्रीराधाश्याम के युग्म-नृत्य दर्शन की आकांक्षा जागी। सखियों के मन की बात जानकर श्रीराधाश्याम ने उसी विस्तृत मणि-वेदिका पर मधुर नृत्य आरम्भ कर दिया। माधुर्य सिन्धु में कल्लोलित तरंग मालाएं उच्छ्वसित हो उठी। सखियों के नयन-मीन उस सिन्धु के वक्ष पर तरंगों-तरंगों में महासुख से सन्तरण करने लगे।

कनक केतकी राई, श्याम मरकत काँई,
दरप दरप करु चूर।
नटवर शेखरिणी, नटिनीर शिरोमणि,
दुँहू गुणे दुँहू मन झूर॥
श्रीमुख सुन्दर वर हेम-नील कान्ति घर,
भाव भूषण करू शोभा।
नील पीत वास घर, गौरी श्याम मनोहर,
अन्तरेर भावे दूँहू लोभा॥

(प्रेमभक्तिचन्द्रिका)

स्वरूपाविष्ट श्रीपाद युगल की मुख छवि का आस्वादन कर रहे हैं। प्रदीप्त मुखचन्द्रद्वय कृपा सुधा से उज्ज्वल हैं। वदन चन्द्र की सुधा पान कर सखियों के नयन चकोर आनन्द से चमत्कृत एवं विभोर हैं! कैसे अपूर्व नैसर्गिक शोभा परिवेश में मोहन श्रीयुगल का विश्व-विमोहन नृत्य है! शारदीय ज्योत्स्ना के आलोक से वृन्दावन उद्‌भासित है। भ्रमरों के गुंजार से, कोकिलाओं के कूजन से वनभूमि मुखरित है। मल्लिका, मालती, जाति, यूथि आदि पुष्पों की गन्ध से दसों दिशाएँ आमोदित हैं। चन्द्रमा की स्निग्ध किरणें शीतल वृन्दावन की प्रकृति के वक्ष पर अविराम झर-झर कर गिर रही हैं। मृदुल मलय पवन के झोंके मल्लिका-मालती के हृदय में सिहरन जगा कर उन्हें आन्दोलित किए दे रहे हैं! यमुना के वक्ष पर कुमुद, कमल कल्हार आदि पुष्प अपने वक्ष पर स्थित मकरन्द के भण्डार से मधुकर श्रेणी को आप्यायित कर रहे हैं। यमुना के जल कणों को वहन करने वाली समीर जैसे श्रीश्रीराधामाधव के नृत्य भ्रम को दूर करने वाली सुन्दर व्यजनी है।

राई कानु विलसये रंगे।
किवा रूप-लावणि, वैद्‌गधि खनि घनी,
मणिमय आभरण अंगे॥
राइर दक्षिण कर, धरि प्रिय गिरिधर
मधुर मधुर चलि जाय।
आगे पाछे सखीगण, करे फूल वरिषण,
कोन सखी चामर ढुलाय॥
परागे धूसर स्थल, चन्द्र करे सुशीतल,
मणिमय वेदीर ऊपरे।
राइ कानु करजोडि नृत्य करे फिरि फिरि
परशे पुलके तनु भरे॥
मृगमद चंदन, करे करि सखिगण
वरिषय फूल गन्धराजे।
श्रमजल बिन्दु बिन्दु शोभा करे मुख-इन्दु,
अधरे मुरली नाहि वाजे॥
हास-विलास रस, सरस मधुर भाष,

नरोत्तम मनोरथ भरू।
दुँहूक विचित्र वेश, कुसुमे रचित केश,
लोचन-मोहन लीला करू॥

(प्रार्थना)

कृपा सुधा से उज्ज्वल एवं सखिगण के नयन चकोरों का चमत्कारित्व सम्पादक होने के कारण ही चन्द्र के संग इन मुख-चन्द्रद्वय की तुलना की गई है, नहीं तो इन मुखचन्द्रद्वय के निकट आकाश के चन्द्र की क्या समता! श्रीपाद बिल्वमंगल ठाकुर कहते हैं-

वदनेन्दुविनिर्जितः शशी
दशधा देव पदम् प्रपद्यते।
अधिकाम् प्रियमश्नुतेतराम्
तव कारुण्य विजृम्भितम् कियत्॥

(श्रीकृष्णकर्णामृतम्-17)

'हे देव! तुम्हारे वदनेन्दु के उदय होने पर शशी स्वयं को पराजित मानता है और दस खण्डों में विभक्त होकर तुम्हारे श्रीपाद पद्मों की शरण ग्रहण करता है, ऐसा करने से वह अधिक श्रीलाभ करता है। तुम्हारे कारुण्य विलास की कहीं तुलना नहीं है।' सारंगरंगदा टीका का मर्म इस प्रकार है- श्रीलीलाशुक श्रीकृष्ण के अपार सौन्दर्य के दर्शन कर जब उसकी तुलना के लिए विश्व में कुछ भी नहीं देख पाते तो हत्वाक् होकर अवस्थान करते हैं! श्रीकृष्ण लीलाशुक के प्रेम सिक्त वर्णन की श्रवण लालसा में कहते हैं- "लीलाशुक! तुम चन्द्र, पद्म आदि के संग तुलना देकर मेरी मुख शोभा का वर्णन क्यों नहीं करते?"

लीलाशुक क्षणकाल के लिए नीरव रहकर कुछ चिन्तन कर कहते हैं- 'हे देव! आपका मुखचन्द्र अखण्ड, निर्मल एवं उज्ज्वल है। आपके श्रीमुखचन्द्र दर्शन से पराजित होकर (कविगण चन्द्र के संग आपके श्रीमुख की तुलना देते हैं इस लज्जा से) चन्द्र दस खण्डों में विभक्त होकर आपके श्रीचरण नखों की सेवा करता है। श्रीकृष्ण कहते हैं- "ठीक है, तो फिर मेरे पद-नखों के संग ही चन्द्र का दृष्टान्त देकर वर्णन करो।' इसके उत्तम में कहते हैं- "ना, ना वह भी किस प्रकार होगा? आपके श्रीचरण-नख-छटा में कितनी करुणा

है! वह क्या चन्द्र में है? आपके नख-चन्द्र निष्कलंक है- चन्द्रमा सकलंक है। अत: दोनों के मध्य प्रभूत वैशम्य है।" श्रीकृष्ण कहते हैं- "यदि ऐसा है तो पूर्व के कवियों ने क्यों चन्द्र, पद्म आदि के साथ मेरे मुख आदि का दृष्टान्त दिया है?" यह सुनकर लीलाशुक कहते हैं-

शुश्रूषसे शृणु यदि प्रणिधानपूवर्वम्
पूववैंपूवर्वकविभिर्न कटाक्षितम् यत्।
नीराजने-क्रम-धुराम् भवदाननेन्दो-
र्निर्व्याजमर्हति चिराय शशीप्रदीपः॥

(वही-98)

यदि इस प्रश्न का उत्तर सुनना चाहते हो तो सुनो बताता हूँ- पूर्व के कवियों ने मनोयोग पूर्वक देखा ही नहीं, अर्थात् उन्होंने केवल कवि स्वभाव से वर्णना की है। केवल "मुख" या "चरण" न कहकर "मुखचन्द्र" या "चरणकमल" कहने से वर्णन सुचारू होता है, केवल इसीलिए कहा है। उपमा देने के उद्देश्य से नहीं। वस्तुत: यह चन्द्र तुम्हारे मुखचन्द्र निर्मंछन के प्रदीप के समान ही है। उस प्रदीप के द्वारा तुम्हारे मुखचन्द्र का निर्मंछन किया जाएगा एवं उसके पश्चात् उसे दूर फैंक दिया जाएगा वह इसी योग्य है।" श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती श्रीराधा के वदनचन्द्र के सम्बन्ध में लिखते हैं-

राकानेकविचित्रचन्द्र उदितः प्रेमामृतज्योतिषाम्
वीची।भः परिपूरयेदगणित - ब्रह्माण्डकोटिम् यदि।
वृन्दारण्यनिकुंजसीमनि तदाभासः परम् लक्ष्यसे
भावेनैव यदा तदैव तुलये राधे तव श्रीमुखम्॥

(राधारससुधानिधि-126)

"हे राधे! यदि एक ही समय में आकाश में अनेकों विचित्र प्रेममय चन्द्रमा उदित होकर अपनी प्रेमामृत-ज्योति-तरंगों से अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों को पूर्ण कर दें, तो भी वह, इस निकुंज सीमा में उदित तुम्हारे मुखचन्द्र की तुलना में आभास मात्र ही होगा। अत: केवल कवि-स्वभाव से ही मैं तुम्हारे मुखचन्द्र की तुलना आकाश के चन्द्र से कर रहा हूँ।"

श्रीपाद का चित्त नटवर श्रीश्रीराधामाधव की वन-शोभा रस में तन्मय था, सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। विपुल आर्ति के साथ प्रार्थना करने

लगे– "वह शुभावसर मुझे कब प्राप्त होगा, जिस दिन कृपापीयूषपूर्ण सखियों के नयन चकोरों के चमत्कृति सम्पादक तुम्हारे वदनचन्द्रद्वय मेरे नयनपथ के पथिक होंगे ?"

हे ब्रजनटवर श्यामगुणमणि।
नटिनीर शिरोमणि राधाठाकुराणी॥
कृपा सुधा परिपूर्ण उ चाँदवयान।
सखिचित्त चकोरेर प्रेमानन्दधाम॥
परम सुन्दर सेइ युगल वदन।
मोर भोग्य आर कवे हवे दरशन ? ॥36॥

प्रियजनकृतपार्ष्णिग्राहचर्य्योन्नताभिः,
सुगहनघटनाभिर्वक्रिमाडम्बरेण।
प्रणयकलहकेलिक्ष्वेलिभिर्वामधीशौ,
किमिह रचयित्व्यः कर्णयोर्विस्मयो मे ? ॥37॥

अन्वयः– (हे) अधीशौ! इह (वृन्दावने) प्रियजनकृतपष्णिग्राहचर्य्योन्नताभिः (परिजनैः कृता या पार्ष्णिग्राहचर्य्या साहाययक्रिया तयोन्नताभिः प्रवृद्धाभिः तथा) सुगहनघटनाभिर्वाक्रिमाडम्बररेण (वक्रिमाडम्बरेण सुगहनघटनाभिः नैविइयाम् नीताभिरित्यार्थः) वाम् (युवयोः) प्रणयकलहकेलिक्ष्वेलिभिः (प्रणयकलहरूपायाः केलिा क्ष्वेलयः कौतुकानि ताभिरित्यार्थः मे कर्णयोः किम् विस्मयम् रचयितव्यः ?

अनुवादः– हे नाथ श्रीकृष्ण! हे श्रीमति राधिके! तुम परस्पर का पक्ष लेकर थोर विवाद करोगे एवं परस्पर के प्रति वक्रोक्ति कहोगे जिसका मर्म अति दुर्ज्ञेय होगा, एवं प्रियजनों की सहायता से जो अतिशय आनन्द वर्धन करेगा। इस प्रकार तुम्हारे प्रणय-कलह रूपी केलि-कौतुक का श्रवण करवा कर तुम कब मेरी श्रवणेन्द्रियों को चमत्कृत करोगे ?

मकरन्दकणा व्याख्या

प्रणयकेलि-कौतुकः

स्फूर्ति में श्रीपाद ने श्रीयुगल के युग्म-नृत्य के समय कृपापीयूषपूर्ण वदनचन्द्रद्वय के माधुर्य आस्वादन का सौभाग्य लाभ किया था। स्फूर्ति के विराम में दुर्विसह विरह वेदना का अनुभव कर रहे हैं। स्फूर्ति के देवता एक

बार दर्शन देकर तुरन्त अन्तराल में चले जाते हैं, इस प्रकार एक अपूर्व आनन्द–वेदना की परम्परा चल रही है। भक्त की जीवन धारा भी इसी प्रकार मिलन एवं विरह आलोक एवं छाया से युक्त रहती है। प्रार्थना की तरंगों में डूबता–उतरता श्रीपाद का चित्त पुनः लीला राज्य में चला गया। उन्होंने एक रहस्यमय लीला का स्फुरण प्राप्त किया है।

गोवर्धन के तट पर दान लीला की स्फूर्ति प्राप्त हुई है। श्रीवसुदेव महाशय की इच्छा से श्रीकृष्ण बलदेव के मंगल के निमित्त गोवर्धन तट स्थित श्रीगोविन्द कुण्ड में श्रीभागुरी प्रभृति ऋषिगण यज्ञ में नियुक्त हुए हैं। "यज्ञ में घृत दान करने वाली गोपियों का अभीष्ट लाभ सुनिचित है" यह बात ब्रज में सर्वत्र प्रचारित हुई है। "सूक्ष्मधी" नामक सारिका के मुख से यह वार्ता श्रवण कर श्रीराधा, ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता प्रभृति सखिगण भी रूप आदि किंकरियों के संग उत्तम वस्त्र एवं आभूषणों से सुसज्जिता होकर, छोटे–छोटे स्वर्ण कलशों में ताजा घृत भर कर उन्हें अपने मस्तक के ऊपर लाल रेशम के बेड़े पर रखकर चली हैं। अंग छटा से पथ आलोकित है। घृत–दान के छल से श्यामसुन्दर के दर्शनों की निकली हैं। प्राणों की आकांक्षा है- 'दान छले भेटिवो कानाई।' नयन युगल विघूर्णन कर चारों दिशाओं में देख रही हैं- "कहाँ हैं प्राणनाथ।"

दूसरी ओर "सखियों के संग श्रीराधारानी यज्ञ में घृत–दान के लिए इसी ओर आ रही हैं" शुक के मुख से यह संवाद पाकर गोपेन्द्रनन्दन ने महासुख से सुबल, मधमंगल आदि प्रियनर्मसखाओं से वेष्टित होकर, गिरिराज के ऊपर विराजमान विशाल श्याम वेदी पर खड़े होकर निरूपम दान घाटी की रचना की एवं दानी के वेश में अवस्थान करने लगे।

इधर उत्कण्ठित चित्ता श्रीराधारानी सखियों के संग मानस गंगा के निकट पहुँच गई। मानस गंगा में प्रफुल्लित कमल–वन में भ्रमरों की मधुर झंकार श्रवण कर श्रीराधा को श्याम का उद्दीपन हुआ। उसी समय दान घाटी से श्यामसुन्दर की अति मधुर कमनीय वंशी ध्वनि श्रुति–गोचर हुई। श्रीमति की देह लतिका में कितने ही भाव कुसुम विकसित हो गए। प्रेम पूर्ण अलस चित्त से, मंथर गति से सभी कृष्ण कथा कहती हुई चली जा रही हैं। वृन्दा

राधारानी को पर्वत के ऊपर श्याम रूप दिखाती हैं। श्याम रूप दर्शन कर श्रीमती विमोहित हैं। वृन्दा से कहती हैं–

प्रपन्नः पन्थानाम् हरिरसकृदस्मन्नयनयो–
रपूवर्वोऽम् पूर्वम् क्वचिदपि न दृष्टो मधुरिमा।
प्रतीकेऽप्येकस्य स्फूरति मुहूरंगस्य सखि या
श्रियस्तस्याः पातुम् लवमपि समर्था न दृगियम्॥

(दानकेलिकौमुदी)

"सखि! श्रीकृष्ण बहुत बार मेरे नयनगोचर हुए हैं, किन्तु ऐसा अपूर्व माधुर्य तो कभी नहीं देखा। उनके एक अंग से जो प्रभूत लावण्य स्फुरित हो रहा है, उसकी लवमात्र शोभा भी मेरे नयन पान करने में सक्षम नहीं है।" परस्पर के माधुर्य से दोनों ही विमोहित हैं। और सखियाँ युगल रूप–माधुरी के आस्वादन में मग्न हैं। परस्पर कह रहे हैं–

देख सखि! अपरूप रंग।
निरूपम प्रेम- विलास रसायन
पिवइते पुलकित अंग॥
दुर सने दरशन अनिमिथ लोचन
वहतहिं आनन्दनीर।
आनन्द सायरे डुबल दुँहू जन
बहुक्षणे भैगेल थिर॥
अतिशय आदर विदगध नागर
राइ नियडे उपनीत।
इह यदुनन्दन निरखये दुँहू जन
अति सुखे निमगन चित॥

नागर का अपूर्व दानी वेश है। सुबल, मधुमंगल आदि के संग श्रीमती और उनकी सखियों के रास्ते में आकर खड़े हो गए हैं। "घाटी से होकर जा रही हो, ओ गवालिन! अरे दान दिए बिना ही जा रही हो? सुबल ने कहा। भ्रूक्षेप भी नहीं किया, गर्विनियाँ दर्प सहित बाहे हिलाती हुई चली जा रही हैं। श्रीमती का प्रत्येक पद विन्यास श्याम नागर के मन पर है। आभूषणों की ध्वनि श्रवणों में अमृत का सिंचन कर रही है! मुग्ध नागर दौड़े चले आ रहे

हैं। मोहनिया दानी। मुख पर हंसी है, हाथों में वंशी है, नयनों में कटाक्ष है! युगल माधुर्य के प्रवाह में सखी-मंजरियों के मनोमीन सुख से सन्तरण कर रहे हैं। सामने आकर, पथ अवरोध कह-कह रहे हैं- "मुझे दान देकर जाओ। श्रीमती के नयनों की कैसी शोभा है! किलकिंचित् भाव का प्रकाश है।

गरवहिं सुन्दरी चललहिं आनत
नागर पन्थ आगोर।
कहतहिं वात दान देह मझु हात
आनछले काँचली तोर॥
अपरूप प्रेम तरंग।
दान-केलि-रस कलित महोत्सव
वर किलकिंचित् रंग॥
अलप पाटल भेल अथिर दृगंचल
तहिं जलकण परकाश।
धुनाइत भुरू धनु पुलक पूरल तनु
अलखित आनन्द-हास॥
ऐछन हेरि चरित पुन तैखने
बाहूडल पद दुई चारि।
राधा माधव दुहूँ कर पदतले
राधामोहन बलिहारि॥

श्रीराधा गम्भीर हैं, मौन हैं। प्रथमतः सखियों के संग ही बात हो रही है। परस्पर का पक्ष लेकर सखा एवं सखिगणों में घोर विवाद हो रहा है।⋆ ⋆दानकेलिकौमुदी एवं दानकेलिचिन्तामणि दृष्टव्य है। प्रणय-केलि-कलह में परस्पर की वक्रोक्तियों का मर्म अति दुर्ज्ञेय है। स्वरूपाविष्ट श्रीपाद की श्रवणेन्द्रियाँ चमत्कृत हैं। श्यामसुन्दर पुनः पुनः स्वामिनी को स्पर्श करने की चेष्टा करते हैं। स्वमिनी की दर्पित भ्रृकुटि की कैसी अपूर्व शोभा है! जैसे कोटि मन्मथों का धनुष हो!! स्वामिनी अवज्ञा कर चली जा रही हैं। श्याम कहते हैं- "मेरी अवज्ञा कर चली जा रही हो। देखो मुझे अधिक उकसाओ नहीं।'

कृष्णाकुण्डलिनश्चण्डी कृतम् घटनयानया।
फुत्कृति क्रीययाप्यस्य भवितासि विमोहिता॥

(दानकेलिकौमुदी)

"हे चण्डी! काले सर्प को डसने की आवश्यकता ही नहीं है उसकी फुत्कार मात्र से ही तुम विमोहित हो जाओगी।" अन्य अर्थ में- "कुण्डलधारी श्रीकृण के चुम्बन मात्र से ही तुम विमोहित हो जाओगी।" श्रीमती दर्प सहित भ्रू संचालन करती हुई कहती हैं-

घर्षणे नकुलस्त्रीणाम् भुजंगेशः क्षमः कथम्।
यदेता दशनैरेष दशनाप्नोति मंगलम्॥ (वही)

"महासर्प नकुल स्त्री के घर्षण में किस प्रकार सक्षम होगा?" क्योंकि यदि वह उन्हें दंशन करने जाएगा तो वे भी दंशन करेंगी। अतः इस चेष्टा से सर्प का कोई मंगल नहीं होगा। अन्य अर्थ में- "घर्षणेन कुलस्त्रीणाम्" कुलस्त्रीगण के घर्षण में तुम क्यों समर्थ नहीं होंगे? आज का परस्पर मिलन ही मंगल एवं सुखमय है।" स्वरूपाविष्ट श्रीपाद स्फुरण में लीलारस का आस्वादन कर रहे हैं। प्रणय-कलह में परस्पर के वाक्यों का मर्म दुर्ज्ञेय है। कैसी अपूर्व रसमय नर्मलीला वैदग्धी है! जैसे श्याम वैसी ही स्वामिनी। समस्त सुचतुर सखियाँ युगल लीला की पुष्टिकारिणी हैं। पथ अवरुद्ध कर खड़े हैं दानी। स्वामिनी की ओर देखते हुए कहते हैं- "यदि अभी तुम्हारे पास अर्थ नहीं है, तो इसे मेरे पास अभी तुम्हारे पास अर्थ नहीं है, तो इसे मेरे पास गिरवी रख जाओ, बाद में घाटी का अर्थ देकर इसे छुड़ा कर ले जाना। यह बात कहकर श्रीमती को स्पर्श करने की चेष्टा करते हैं। सखियाँ कहती हैं-

एइ मने वने दानी हइयाछे
छूइते राधार अंग।
राखाल हइया राजकुमारी संगे
किसेर रभस रंग॥
एमन आचर नाहि कर डर
धनाइया आसिछ काछे।
गुरुवर आगे करिव गोचर
तखन जानिवे पाछे॥

छूँइउ ना छूँइउ ना निलज कानाइ
आमरा परेर नारी।
पर पुरुषेर पवन परशे
सचेले सिनान करि।
गिरि गिया यदि गौरी आराघह
पान कर कनक-घूमे।
काम सागरे कामना करह
वेणी बद्रिकाश्रमे॥
सूरय उपरागे सहस्र सुन्दरी
ब्राह्मणे करह सात।
तवु हये नहे तोमार शकति
राइ अंगे दिते हात॥
गोविन्द दासेर वचन मानह
ना कर एमन ढंग।
याइ नागरी उ रसे आगरि
करह ताहार संग॥

सखियों की सरस परिहासमय वाणी श्रवण कर श्याम भी अति सरस निगूढ़ वाक्यों में श्रीमती के प्रति कहती हैं-

तोहारि हृदये वेणी बद्रिकाश्रम
उन्नत कुच-गिरि कोर।
सुन्दर वदन-छवि कनक धूम पिवि
ततहिं तपत जीउ मोर॥
सुन्दरि! तोहारि चरण-युग छाडि।
गौरी आराधने काँहा चलि याउव
तुँहू से तीरिथमय गौरी॥
सिन्दूर सुन्दर मृगमदे परशल
एहि सूरय-ग्रह जानि।
तुया पदनख द्विज राजहिं सोपलुँ
सुन्दरि सहस्र पराणी॥

काम सागरे हाम सहजइ निमगन
काम पूरवि तुहूँ राइ।
श्यामर वलि अव चरणे ना ठेलवि
गोविन्द दास मुख चाई॥

श्यामसुन्दर ने विनय वचनों से श्रीमती की स्तुति की एवं कातर प्राणों से नयनों के इंगित से सखियों से श्रीमती के संग मिलनेच्छा व्यक्त की। तब सखियों ने गुप्त रूप से श्रीमती के प्रति कहा–

सुन्दरि! अलखिते हउ तिरोधान।
गिरिवर कुन्ज कुटिरे अति गोपते
याइ राखह निज मान॥
इह अति चपल चरित वर गिरिधर
किये जानि करू विपरीत।
शुनि उह सुवचन भीतहिं जनु जन
राइ करल सोइ नीत॥
बूझि पुन नागर सव गुण आगर
अलखिते तँहि उपनीत।
राधामोहन पुन देखि सुनायरि
आनन्दे निमगन चित॥

सखि–मंजरियाँ उस कुंज कुटीर के लता–रन्ध्रों पर नेत्र अर्पण कर स्वाभीष्ट युगल–विलास रस माधुरी आस्वादन करने लगीं।

परशहिं गद गद नहि नहि वोल।
तनु तनु पुलकित आनन्द–हिलोल॥
को करू अनुभव दुहूँक विलास।
एक मुखे सीतकार एक मुखे हास॥
निमीलित नयन नयन अरू थिर।
मणि तरलित मणि मंजु मंजीर॥
नागरी देउल धन रसदान।
राधामोहन पहूँ अमिया सिनान॥

स्फूर्ति में श्रीपाद लीला रस का आस्वादन कर रहे थे। स्फूर्ति में विराम आने पर पुनः लीला के दर्शन एवं रसमय वाक्य परिपाटी श्रवण के लिए युगल चरणों में प्रार्थना ज्ञापन करते हैं।

हे राधे! गान्धर्विके! मदन मोहन।
दु'जनार पक्ष लैया दुँहू परिजन॥
परस्पर वक्रोत्तिते ये कलह करे।
अतीव दुर्ज्ञेय मर्म बूझिते के पारे॥
ये सव प्रणय-केलि-कौतुक-विलास।
श्रवणे दर्शने मोर चिर अभिलाष॥
श्रीरूप गोस्वामी भणे दुँहू कृपावले।
चमत्कृत करिवे कि श्रवण-युगले?॥37॥

निभृतमपहृतायामेतया वंशिकायाम्,
दिशि दिशि दृशमुत्काम् प्रेर्य्या संप्रच्छमानः।
स्मितशवलमुखीभिर्विप्रलब्धः सखीभि-,
स्त्वमघहर कदा मे तुष्टिमक्ष्नोर्विघत्से?॥38॥

अन्वयः (हे) अघहर! कदा त्वम् मे (मम) अक्ष्नोः तुष्टिम् विघत्से (कविष्यसि), कीदृशः सन्नियपेक्ष्याह) निभृतम् (यथास्यात्तथा) एतया (श्रीराधया) वंशीकायाम् अपहृतायाम् (सत्याम्) दिशि दिशि (प्रतिदिशम्) उत्काम् दृशम् प्रर्य्य (कदा मे वंशी हृतेति) संप्रच्छमानः (परिपृच्छन्, तत्र र्यया वंशी न हृता ताम् सूचयन्तीभिः) सखिभिः विप्रलब्धः (वंचितः, कीदृशीभिः) स्मितशवलमुखिभिः (स्मितेन शवलानि चित्राणि मुखानि यासाम् ताभिरित्यार्थः)।

अनुवाद- हे अघहर! श्रीकृष्ण! श्रीराधिका तुम्हारी वंशी अपहरण कर लेंगी तो तुम (मेरी वंशी किसने ली है, किसने मेरी वंशी चुरा ली है इस प्रकार) जिज्ञासा करते-करते इधर-उधर वंशी अन्वेषण करोगे। उस समय श्रीराधा के पक्ष की सखियाँ (तुम्हारी वंशी इसने ली है कहकर) किसी अन्य सखी की ओर इंगित कर देंगी। उस समय तुम उनके संग कलह करोगे। सखियाँ 'आज धूर्त को ही ठग लिया गया' कहकर हास्य करेंगी, उस समय के तुम्हारे भाव दर्शन कर कब मेरे नयन-युगल परितृप्त होंगे?

मकरन्दकणा व्याख्या।

वंशी विनोदः

स्वरूपाविष्ट श्रीपाद को स्फूर्ति प्राप्त होती है, स्फूर्ति में विराम आता है, फिर पुनः स्फूर्ति प्राप्त होती है, इसी भाव से क्रम चल रहा है। रहस्यमयी दान लीला का स्फुरण प्राप्त हुआ था। ससखी श्रीराधामाधव के अपूर्व प्रणय केलि-कौतुक रस में चित्त मग्न हो गया था। स्फुरण के विराम में विरह विधुरा-दासी अभीष्ट के निमित्त व्याकुल प्राणों से रूदन करने लगी। ब्रज-रस-निष्ठ उपासक का चित्त स्वभाव से ही कुसुम कोमल होता है! कुसुम-कोमल वृत्ति के प्रभाव से ही मानवात्मा ब्रजवाला के भाव से विभावित होता है। जीव श्रीगोविन्द पाद-पद्मों की विस्मृति के कारण ही अपनी विशुद्ध प्रकृति से भ्रष्ट होकर माया के अनित्य सुख-दुख के जाल में फंस जाता है। साधु-गुरु एवं शास्त्रों के उपदेश से ही यह भ्रम तिरोहित होता है एवं जीव की विशुद्ध प्रकृति प्रकाशित होती है। गौड़ीया-वैष्णव सम्प्रदाय के मतानुसार जीव स्वरूपतः श्रीराधा की दासी है। दीक्षा के समय श्रीगुरुदेव इस स्वरूप का ही परिचय प्रदान करते हैं। अतः साधक जीव का विशुद्ध स्वभाव जागरित होने से माधुर्य मूर्ति श्रीश्रीराधाकृष्ण की स्मृति प्रबल हो जाती है एवं उनका नित्य संगी होने की बात मन में स्थिर हो जाती है। युगल कितने सुन्दर हैं, कितने मधुर हैं, कितने रसमय हैं- जब इस अनुभव की स्फूर्ति होती है तब श्रीराधामाधव की विरह-व्याकुलता का सूत्रपात होता है। विरह-विधुरा अनुरागमयी प्रणयिनी जैसे प्रियतम के लिए व्याकुल होती है, उसी प्रकार साधकात्मा भी ब्रज रमणी के भाव में प्राणों के चिर सुहृद सौन्दर्य-माधुर्यवारिधि श्रीश्रीराधामाधव के साक्षात् दर्शन एवं सेवा के लिए व्याकुल हो उठता है। श्रीपाद नित्य परिकर हैं अतः उनका विरह एवं व्याकुलता भी चरम है। क्रन्दन कर रहे थे कि सहसा एक अपूर्व लीला का स्फुरण प्राप्त हुआ। मध्यानलीला में श्रीराधाकुण्ड के तट पर प्रथम मिलन के समय वंशी विनोद लीला की स्फूर्ति हुई।

श्रीराधा के मादन रस-रंजित कटाक्ष बाणों से बिद्ध श्रीकृष्ण के हाथ से मुरली गिर गई और वह मुरली श्रीराधा ने गोपन कर ली। श्रीमती एवं साखियों के संग बहुत समय तक लीला विनोद के बाद भी जब कृष्ण को

वंशी की स्मृति न हुई और एक लीला विशेष में श्रीकृष्ण ने श्रीराधा के मुख चुम्बन की इच्छा व्यक्त की तो श्रीराधा ने विमुखी हो श्रीकृष्ण से कहा– "हे शठ! यदि तुम्हारी चुम्बन की इच्छा है तो परस्त्री को त्याग कर निज–प्रिया वंशी को चुम्बन करो।

श्रीराधा का वाक्य श्रवण कर श्रीकृष्ण को मुरली का स्मरण हुआ– "हाय! मेरे हाथ से गिर कर मेरी मुरली कहाँ गई?" यह बात कहकर, क्षण काल के लिए विस्मित होकर, जिज्ञासु दृष्टि से कुन्दलता के मुख की ओर देखने लगे। कुन्दलता ने चंचल नयन भंगी से श्रीराधा की ओर इंगित कर दिया। कुन्दलता का इंगित समझ कर श्रीराधा ने गुप्त रूप से मुरली तुलसी के हाथों में दे दी। तुलसी ने सयत्न मुरली को गोपन कर लिया एवं श्रीललिता–श्रीविशाखा के पीछे जाकर खड़ी हो गई। श्रीकृष्ण श्रीराधा के निकट आकर उन्हें धारण करने के इच्छुक होकर कहने लगे– "हे चोरि! मेरे काम आदि क्षोभ से रहित निर्मल को भी जब तुम काम–कटाक्ष रूपी अंकुश द्वारा बिद्ध कर देती हो, तब तुम मेरी वंशी का भी हरण कर सकती हो, इसमें क्या आश्चर्य है? मैं तुम्हें अपने बाहू–पाश द्वारा बाँध कर तुम्हारे वसन–भूषण निकाल लूंगा एवं कुंज–कारागार में ले जाकर कन्दर्प के हाथों में तुम्हें समर्पित कर दूंगा। श्रीराधा श्रीकृष्ण की परिहास वाणी से निरतिशय रूप से भाव–बिद्ध हो गई किन्तु फिर भी अवज्ञा के साथ उनकी ओर देखती हुई, "मुझे स्पर्श मत करना" कहती हुई दूसरी ओर चल दीं। श्रीकृष्ण ने उन्हें अपने बाहु–पाश में बांध लिया और कहने लगी– "हे चौरि! मेरे बाहु–पाश से मुक्त होने की वृथा चेष्टा मत करो। जब तक वंशी नहीं दोगी तब तक इस बन्धन से तुम्हारी मुक्ति नहीं होगी।"

इसके उपरान्त श्रीललिता मिथ्या रोष प्रकट करती हुई, इषत् हास्यान्वित गर्वित मुख से श्रीकृष्ण के सम्मुख उपस्थित होकर गर्व भरे वचनों से कहने लगीं– हे परांगना–संगम–पूत–मूर्ते! हे सती व्रत ध्वंसन! दूर हट जाओ, सूर्य पूजा के लिए स्नाता एवं पवित्र श्रीराधा को स्पर्श मत करना। हे शठ! तुम जब उस धृष्टा शैव्या की अघर–सुधा का पान कर उन्मादित हो गए थे, तब उस शैव्या ने ही कुसुम सरोवर पर तुम्हारी वंशी अपहरण कर ली थी, इस

विषय में तुलसी साक्षी है, उससे जिज्ञासा करो।" यह बात कहकर नेत्र संचालन द्वारा तुलसी को दिखा दिया।

तुलसी इंगित समझ गई और श्रीरूप मंजरी के हाथों में वंशी अर्पण कर पलायन की चेष्टा करने लगी किन्तु श्रीकृष्ण द्वारा बलपूर्वक पकड़ लिए जाने पर पुलकितांगी एवं कम्पितांगी होकर दीन भाव से कहने लगी– 'हे कृपालु! हा, हा, मुझ अयोग्या को छोड़ दो! मैं तुम्हारी दासी हूँ। जिसके लिए तुम्हारा इतना आग्रह है वह वंशी मेरे पास नहीं है, मैंने आज ही उसे शैव्या के पास देखा था।' यह बात कहकर रूप मंजरी की ओर इंगित कर दिया। तुलसी को परित्याग कर श्रीकृष्ण जैसे ही रूप मंजरी के निकट आए, इंगितज्ञा रूप मंजरी तत् क्षणात ललिता के निकट वंशी रखकर साधु व्यक्ति की तरह अवस्थान करने लगी। श्रीकृष्ण अलक्षित गति से रूप मंजरी के निकट गए और उन्हें बाहु–पाश में बांध कर उनकी काचुंली में वंशी अन्वेषण करते हुए कहने लगे– "हे तस्करी! वंशी कहाँ गोपन कर रखी है।" रूप मंजरी श्रीकृष्ण को निवारण करते हुए कहने लगी– "मैं चोर हूँ? यह तुम्हारा परम सौभाग्य है कि मेरे निकट वंशी अन्वेषण करने का तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ है। इसी उद्देश्य से ही तो तुमने अपनी वंशी स्वयं छुपाई है और अब उसके अन्वेषण छल से अपनी वासना पूर्ण कर रहे हो।" यह बात कहकर नयन भंगी द्वारा ललिता की ओर इंगित कर दिया। श्रीकृष्ण ने रूप मंजरी को त्याग कर ललिता की ओर गमन किया तो ललिता ने गुप्त रूप से वंशी कुन्दलता के निकट रख दी और गर्व पूर्ण वाक्यों से कहने लगी– "दूर रहो। जिसके लिए तुम मेरे निकट आ रहे हो, वह वंशी मेरे पास नहीं है। यदि धृष्टतापूर्वक आगमन किया तो स्मरण रखना समुचित फल भी पाओगे। हे शठ! श्रीराधा की जो सखियाँ चिन्तामणि को अपने पैर द्वारा भी स्पर्श नहीं करतीं, वे क्या तुम्हारी एक शूद्र वंशी का हरण करेंगी? अहो, कितने दुख का विषय है! हस्त–परिमित, शुष्क, सछिद्र, बहु–दोषयुक्त एक बाँस का टुकड़ा ही गोकुलेश्वर श्रीकृष्ण की सर्वस्व सम्पद है। हाय! किसने उसका हरण कर लिया?" इसी प्रकार सभी सखियों के निकट वंशी अन्वेषण चलने लगा। एक नील मराल जैसे स्वर्ण–पद्मिनीगण की माधुरी आस्वादन कर रहा हो। जिसके निकट वंशी नहीं है उसी की ओर इंगित कर देती हैं, श्रीकृष्ण जब

खोजने पर भी नहीं पाते तो उनकी मुख-माधुरी देखकर सखियाँ "धूर्त को खूब अच्छा ठगा है" कहकर तालियाँ बजा-बजा कर हास्य करती हैं। अपूर्व लीला विनोद स्वरूपाविष्ट श्रीपाद स्फूर्ति में लीला रसास्वादन में तन्मय थे। स्फूर्ति में विराम आ गया तो पुनः लीला दर्शन के लिए अभीष्ट चरणों में वासना निवेदन करने लगे।

हे अघहर हरि करह श्रवण।
प्रियाजी तोमार वंशी करिले हरण॥
मोर वंशी छल करि के करिल चूरि?
जिज्ञासा करिवे तूमि अन्वेषण करि॥
हेनकाले श्रीराधार यत सखिगण।
अन्यजने देखाइया वलिवे तखन॥
एइ त चतूरा सखि करि चतूराली।
हरण करिल आजि तोमार मूरली॥
एत शुनि तार संगे कलह करिवे।
ठेकिल ये धूर्त आज सखीर समीपे॥
एत वलि निकून्जेते सखिगण मिलि।
उच्चैस्वरे हासिवेक दिया करतालि॥
तोमार एछन भाव करिया दर्शन।
परितृप्त हइवे कि आमार नयन?॥38॥
क्षतमघरदलस्य स्वस्य कृत्वा त्वदाली,
कृतमिति ललितायाम् देवि कृष्णे भ्रूवाणे।
स्मितशवलदृगन्ता किंचिदुत्तम्भितभ्रू,
र्मम मुदमुपधास्यत्यास्यालक्ष्मीः कदा ते?॥39॥

अन्वयः- (हे) देवि (श्रीराधे) स्वस्य अधरदलस्य (स्वदशनाभ्याम्) क्षतम् कृत्वा ललितायाम् त्वदालीकृतमिति (त्वदाल्या राधयैतत् क्षतम् कृतमिति) कृष्णे भ्रूवाणे (कथयति सति), ते (तव) आस्यलक्ष्मीः (मुखशोभा) मम मुदम् कदा उप (समीपे) आघास्यति (मयि तामर्पयिष्यतीत्यार्थः, कीदृशी सा) स्मितशवलदृगन्ताः (स्मितेन शवलश्चित्रो दृगन्तो यस्याः सा) किंचिदुत्तम्भित भ्रूः (इति मृदुभाषिणि तस्मिन् कोपश्च व्यज्यते)।

अनुवादः- हे देवी श्रीराधिके! जब श्रीकृष्ण स्वयं अपने दातों द्वारा अपना अघर-बिम्ब क्षत कर लेंगे और ललिता से कहेंगे कि, हे ललिते! देख तुम्हारी सखी श्रीराधा ने मेरा अघर क्षत कर दिया है, यह श्रवण कर तुम मृदु हास्य के साथ भ्रूकुटि युक्त कटाक्ष द्वारा श्रीकृष्ण के दर्शन करोगी, तुम्हारी उस मुख-श्री का अवलोकन करा कर मुझे कब आनन्दित करोगी?

मकरन्दकणा व्याख्या

श्रीराधा की मुखश्रीः-

स्वरूपाविष्ट श्रीपाद की स्फुरण धारा अविराम रूप से चल रही है। लीला के स्रोत में चित्त-मन प्रवाहित है। ऐसी अवस्था में किस प्रकार की दशा का उदय हो जाता है वही इस उत्कलिकावल्लरि में प्रकाशित हुआ है। जो श्रीराधा के रहोदास्य को प्राप्त करने के लिए लालायित हैं उन्हें कैसी उत्कण्ठा, व्याकुलता, दैन्य आदि का आश्रय कर अन्तरंग भजन परायण होना होगा, श्रीपाद की प्रार्थनाओं के मर्म में उसका इंगित पाया जाता है। निखिल विषय व्यापार से विरक्त होकर, प्राण प्रेष्ठ श्रीश्रीयुगलकिशोर के विरह में रसिक भक्तों के संग उनके नाम, गुण, लीला आदि के श्रवण, कीर्तन, स्मरण परायण होकर काल यापन करना ही राग-भक्त का कर्तव्य है- यही श्रीपादगणों की शिक्षा है। मन यदि अखण्ड भाव से अभीष्ट चरणों में लग्न न हो तो लीला रसास्वादन सम्भव ही नहीं होता।

राधाकृष्ण-सेवन, एकान्त करिया मन,
चरण कमल बलि जाऊँ।
दोंहार नाम गुण शुनि, भक्त मुखे पुनि पुनि,
परम आनन्द सुख पाऊँ॥
हेम-गौरी तनु राई, आँखि दरशन चाई,
रोदन करिव अभिलाष।
जलधर ढर ढर, अंटा अति मनोहर,
रूपे भुवन परकाश॥
सखीगण चारि पाशे, सेवा करि अभिलाषे,
से सेवा परम सुख घरे।

एइ मन तनु मोर, एइ रसे सदा भोर,
नरोत्तम सदाइ विहरे ॥

(प्रेमभक्तिचन्द्रिका)

वंशी–विनोद लीला की स्फूर्ति में विराम आने पर श्रीपाद रूदन करने लगे थे। उत्कण्ठा में प्राण कातर हो गए थे। तभी श्रीपाद के भाव नेत्रों के सम्मुख एक अभिनव लीला की छवि फूट उठी।

श्रीराधाकुण्ड के तट पर कुंज कानन में श्रीश्रीराधाश्याम विहार परायण हैं। अपूर्व नैसर्गिक शोभा का परिवेश है। वृक्ष लताओं पर राशि–राशि कुसुम विकसित हैं एवं उन कुसुमों से क्षरित मकरन्द से मंजरी–दल सिक्त हैं। कुंज का शिखर देश मधुकरों की झंकार से झंकरित है। कोकिलाओं के कुहू नाद से एवं नाना पक्षियों के कल कूजन से श्रीकुण्ड तट मुखरित है। श्रीकुण्डारण्य युगल के चित्त में कितनी ही मधुमयी लीलाओं की स्मृति जगा रहा है। श्रीश्रीराधाश्याम के मन में विलास वासना का उद्दीपन देख कर सुचतुरा सखीगण ने कुशलता से एक निभृत निकुंज में श्रीयुगल का मिलन सम्पादन करवाया है। किंकश्रीरूप कुंज रन्ध्रों पर नेत्र अर्पित कर अपूर्व युगल विलास माधुरी का आस्वादन कर रही है। विलास के अन्त में श्रीयुगल विलास शैय्या पर उठकर बैठ गए। श्रीरूप ने अन्य दो–तीन सहचरियों के संग श्रीयुगल की जलदान, ताम्बूलदान, पादमद्रन, वीजन आदि सेवाओं का सौभाग्य प्राप्त किया है। विलास के अन्त में श्रीयुगलकिशोर की अपूर्व शोभा है। "उत्फुल्लेन्दीवरकनकयो: कान्तिचौरम् किशोरम् ज्योतिर्द्वन्द्वम् किमपि परमानन्दकन्दम् चकास्ति" (राधारससुधानिधि) प्रफुल्लित इन्दीवर एवं स्वर्णकमल की कान्ति चोर, किशोरीकृति कोई अनिर्वचनीय परमानन्दकन्द ज्योति: युगल शोभा पा रही हैं।'

उसी समय वस्त्र से अपना मुख आवृत कर हंसते–हंसते श्रीललिता–विशाखा आदि सखिगण कुंज में प्रवेश करती हैं। श्रीमती तत्क्षणात संयत भाव से उठकर कान्त के वाम पार्शव में कुछ दूर होकर बैठ जाती हैं। श्रीललिता कहती हैं– "राधे! हम तुम्हें कितना खोज रहीं थीं। यह धृष्ट तुम्हें कहाँ मिला? इसके संग तुम यहाँ आकर निश्चित होकर बैठी हो? और उधर सूर्य पूजा का समय निकला जा रहा है।" श्रीललिता की बात श्रवण कर

श्रीकृष्ण ने पीताम्बर से अपना मुख आवृत किया और निज दंशन द्वारा निज अधरों पर क्षत रचना कर ललिता से कहने लगे- "हे ललिते! मैं धृष्ट हूँ या तुम्हारी सखी धृष्टा है यह तुम स्वयं विचार करो। यह देखो तुम्हारी सखी ने दंशन कर मेरा अधर क्षत कर दिया है।'

श्याम की बात श्रवण कर सखियाँ हंसने लगीं। उस समय श्रीमती की शोभा का कैसा अपूर्व विकास है! मुख पर मृदु हास्य एवं रोष एक संग ही प्रकाशित हो रहे हैं। भ्रू-धनु को वक्र कर श्रीकृष्ण के मुख की ओर कटाक्षपात कर रही हैं। कैसी अपूर्व वदन शोभा है। सखियों के संग श्यामसुन्दर उस शोभा सिन्धु में सन्तरण कर रहे हैं। स्वरूपाविष्ट श्रीपाद उस शोभा-रस-सरोवर में निमज्जित हैं। श्रीमती ललित-अलंकार अलंकृता हैं।

विन्यासभंगिरंगानाम् भ्रूविलासमनोहरा।
सुकुमारा भवेदयत्र ललितम् तदुदीरितम्॥

(उज्ज्वल नीलमणि)

जिससे समस्त अंगों की विन्यास भंगी, सौकुमार्य एवं भ्रूविलास का मनोहारित्व प्रकाशित होता है- वही ललित-अलंकार है। श्रीपाद का चित्त तन्मय था, सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। आर्ति सहित प्रार्थना करने लगे- "तुम्हारी वह मुख श्री पुनः कब देख पाऊँगा?

हे देवि! श्रीराधिके! आमार ईश्वरी।
तोमार चरण पद्मे निवेदन करि॥
शठ धृष्ट सुकपट ब्रजेन्द्रनन्दने।
क्षत करि निजाधर आपन दशने॥
ललितार सन्निकटे वलिवे श्रीहरि।
देख देख तुया सखी राधिका सुन्दरी॥
निभृत-निकुंज माझे निज इच्छा मत।
आमार अधर बिम्ब करिल ये क्षत॥
श्रवण करिया मात्र एछे रस वाणी।
इषत्-मधुर-हास्य कुंज विलासिनी॥
भ्रूकुटि कटाक्ष-पाते गोविन्द-वदन।
प्रेम-पुलकित-भरे करिवे दर्शन॥

सेइ दिव्य चन्द्रानन देखाये आमाके।
परितृप्त करिवे कि ए दीना दासी के? ॥39॥
कथमिदमपि वांछितुम् निकृष्टः, स्फुटमयमर्हति जन्तुरूत्तमार्हम्।
गुरुलघुगणनोज्झितार्त्तनाथौ, जयतितरामथवा कृपाद्युतिर्वाम्॥40॥

अन्वयः- (हे) आर्तनाथा! अयम् निकृष्टो जन्तुः इदम् (ईदृशम्) उत्तमार्हम् (परमभागवतानाम् वांछनीयम् सेवा-सौभाग्यम्) स्फुटमपि कथम् वांछितुम् अर्हति? अथवा वाम् (युवयोः) कृपाद्युतिः जयतितराम् (कीदृशी सेत्याह) लघुगुरुगणनोज्झित (उत्कृष्टापकृष्टगणनारहितेत्यर्थः, यघप्ययमध-मस्तथापि तव कृपयैवेवम् प्रवर्त्त्यत इतिभावः)।

अनुवादः- हे आर्तनाथ श्रीश्रीराधामाधव! यद्यपि यह अधम व्यक्ति उत्तम भागवतगणों के योग्य तुम्हारी प्रेम सेवा की आशा करने के लिए सर्वथा अयोग्य है, तथापि तुम्हारी करुणा योग्य-अयोग्य का विचार ही नहीं करती, ऐसा जानकर मुझमें प्रार्थना की प्रवृत्ति जागी है!

मकरन्दकणा व्याख्या

दीनगामिनी कृपाः-

स्फूर्ति ही प्रेमिक भक्त का अवलम्बन है। स्फूर्ति आने में विलम्ब होता है तो आर्ति, उत्कण्ठा की कोई सीमा ही नहीं रहती। दैन्य सिन्धु उच्छ्वसित हो उठता है। पूर्व श्लोक में स्फुरण में एक सरस-लीला माधुरी का आस्वादन प्राप्त किया था और फिर स्फूर्ति में विराग आने पर लीला दर्शन के निमित्त युगल चरणों में प्रार्थना निवेदन की थी। पुनः स्फूर्ति आने में विलम्ब होने पर श्रीपाद दैन्य सागर में निमज्जित हो गए। प्रेमिक भक्त का प्रेमामृतमय दैन्य आत्मा के स्वरूप अविर्भाव की स्वाभाविक अवस्था है। जीव स्वतन्त्र तत्त्व नहीं है, वह आत्मा के आधीन तत्त्व है, और फिर इस विश्व में सतत काल, कर्म आदि के द्वारा नियन्त्रित है। मायाबद्ध दशा में जीव नश्वर देह-देहिक आदि में मैं-मेरा बुद्धि रखता है एवं सतत नाना प्रकार के मायिक अभिमान पोषण करता हुआ संसार दुखों का भोग करता है। साधु-गुरु कृपा से भक्ति-पथ का आश्रय होने पर, आत्म ज्ञान का उदय होने के संग-संग स्वयं के स्वाधीन कर्तव्य आदि के अभाव बोध से स्वयं को सर्व विषयों में असमर्थ एवं अयोग्य मानता है एवं सर्व कर्मों में ईश्वर के प्रबल कर्तव्य की उपलब्धि कर पूर्ण भाव

से उनके शरणागत हो जाता है। क्रमश: जैसे-जैसे मायिक अभिमान का लोप होता जाता है वैसे-वैसे ही सर्वत्र परमेश्वर के कर्तव्य का अनुभव प्राप्त करता है एवं उस कर्तव्य सिन्धु में स्वयं के समस्त कर्तत्व का विसर्जन कर जीवन मुक्ति दशा लाभ करता है। यही भक्त के आत्म समर्पण यज्ञ की पूर्णाहुति है। श्रीपाद नित्य परिकर हैं, अत: उनके दैन्योत्थित आत्म समर्पण की पराकाष्ठा है। कहते हैं- 'हे आर्तनाथ श्रीश्रीराधामाधव'! सम्बोधन में उनके अन्तर की व्याकुलता मूर्त हो रही है। भक्त की व्याकुलता को वर्धित करने के लिए ही वे स्वयं भक्त का विरह सहन करते हुए भी अन्तराल में अवस्थान करते हैं। कारण इस आर्ति या व्याकुलता से ही भक्त के हृदय में क्रमशः उच्च से उच्चतर भाव समूह प्रकाश पाते हैं। जो प्राणों की व्याकुलता लेकर परम अनुराग से उनका भजन करते हैं, उन निष्किंचन भक्तों की आकुलता से वे स्थिर नहीं रह पाते। क्या विरह में और क्या मिलन में, वे पूर्ण भाव से उनके वशीभूत हुए रहते हैं।

हे श्रीराधामाधव! तुम्हारी सेवा उत्तम एवं परम भागवतगणों द्वारा वांछनीय है। सखी या मंजरी भाव के साधकों के अतिरिक्त अन्यान्य परम भागवतगणों द्वारा वांछनीय तो है किन्तु प्राप्तव्य नहीं है। श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद लिखते हैं-

न देवैर्ब्रह्मद्यैर्न खलु हरिभक्तैर्न सुहृदा,
दिभिर्यद्वै राधामधुपति-रहस्यम् सुविदितम्।
तयोर्दासीभूत्वा तदुपचितकेलीरसमये
दुरन्ताः प्रत्याशा हरि हरि दृशोर्गोचरयितुम्॥

(राधारससुधानिधि-149)

'श्रीराधामाधव का जो रहस्य ब्रह्मा आदि देवगणों को, हरि भक्तों को, यहाँ तक कि सुहृदगणों को भी निश्चित रूप से सुविदित नहीं है; हरि! हरि! उन श्रीराधामाधव के रसमय निकुंज केलि दर्शन के निमित्त मेरी दुरन्त प्रत्याशा है।' मंजरी भाव से श्रीश्रीयुगलकिशोर की उपासना श्रीमन्महाप्रभु की अनर्पितचरी करुणा का अवदान है। इस गौर लीला में उन्होंने स्वयं आस्वादन किया है एवं वितरण भी किया है।

आपन करि आस्वादने, शिखाइल भक्तगणे,
प्रेमचिन्तामणिर प्रभु धनी।
नाहि जाने स्थानास्थान, यारे तारे कैल दान,
महाप्रभु दाता-शिरोमणि॥
एइ गुप्तभाव सिन्धु, ब्रह्मा न पाय यार बिन्दु,
हेन धन विलाइल संसारे।
एछे दयालु अवतार, एछे दाता नाहि आर,
गुण केहो नारे वर्णिवारे॥
कहिवार कथा नहे, कहिले केहो न बुझये,
एछे चित्र चैतन्येर रंग।
सेइ से बुझिते पारे, चैतन्येर कृपा यारे,
ताँर हय दासानुदास संग॥

(चै.च.)

श्रीपाद दैन्य से भरकर कहते हैं– "मैं अति निकृष्ट दीन जन हूँ, तुम्हारी प्रेम सेवा प्राप्त करने की मेरी आकांक्षा एक भिक्षुक की राज्य प्राप्त करने की कामना के समान हास्यास्पद है। किन्तु फिर भी मैं इस आशा का त्याग नहीं कर पा रहा क्योंकि तुम्हारी कृपा योग्य-अयोग्य का विचार नहीं करती। तुम्हारी करुणा की द्युति सर्वोत्कर्ष के साथ विराज रही है। उसी सर्वोत्कृष्ट करुणा की ओर देख रहा हूँ। मन में बड़ी अभिलाषा है कि तुम्हारी दासी होकर, तुम्हारा हृदय जान कर तुम्हारी प्रेम सेवा कर पाऊँ।" श्रीपाद अपने चाटु-पुष्पांजलि-स्त्व में श्रीराधारानी के श्रीचरणों में प्रेम सेवा के लिए प्रार्थना करते हुए लिखते हैं–

अपारकरुणापूर-पूरितान्तर्मनोहृदे।
प्रसीदास्मिन् जने देवि निजदास्यस्पृहाजुषि॥
कच्चित्वम् चाटुपटुना तेन गोष्ठेन्द्रसूनुना।
प्रार्थ्यमानचलापांग-प्रसादाद्द्रक्ष्यसे मया?
त्वाम् साधु माधवीपुष्पैर्माधवेन कलाविदा।
प्रसाध्यमानाम् स्विद्यन्तीम् वीजयियाम्यहम् कदा?
केलिविस्रमसिनो वक्रकेशवृन्दस्य सुन्दरि।

संस्काराय कदा देवि जनमेतम् निदेक्ष्यसि?
कदा बिम्बोष्ठि ताम्बूलम् मया तव मुखाम्बुजे।
अर्प्यमाणम् ब्रजाधीशसूनुराच्छिद्य भोक्ष्यते?

(17-21)

हे श्रीराधे! तुम्हारा मानस ह्रद अपार करुणा निर्झरों से भरा है। तुम्हारे दास्याभिलाषी इस दीनजन के प्रति प्रसन्न होवो। हे देवि! चाटु वचन रचना में दक्ष ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण जब चाटु वाक्यों से तुम्हारा मान शिथिल कर तुम्हारे संग मिलन की प्रार्थना करेगा और तुम प्रसन्न होकर अपांग-भंगी द्वारा दृष्टिपात करोगी- इस प्रकार तुम्हें मैं कब देख पाऊँगा? शिल्प कार्य में सुनिपुण श्रीकृष्ण द्वारा तुम उत्तम माधवी कुसुमों से अलंकृता होगी एवं उनके कर स्पर्श से सात्विक भावोदय के कारण धर्माक्त कलेवर हो जाओगी, मैं तब तालवृन्त से तुम्हारे श्रीअंगों को वीजन कब करुँगा? हे देवि! हे सुन्दरि! कृष्ण के संग विलास के उपरान्त तुम्हारे कुटिल विपुल केशपाश आलुलायित (उलझ) हो जाएँगे तो उन्हें पुनः सुसंस्कृत करने के लिए इस दीनजन को कब आदेश करोगी? हे बिम्बोष्ठि! मैं तुम्हारे मुखाम्बुज में ताम्बूल अर्पण करुंगी तो श्रीकृष्ण उसे तुम्हारे मुख से लेकर स्वयं भक्षण करेंगे, तुम दोनों के ऐसे भाव को मैं कब देख पाऊँगा?" श्रीपाद अभीष्ट की करुणा की स्मृति में स्वयं की योग्यता-अयोग्यता की बात भूल कर करुणा के माधुर्य में तन्मय हैं!

उहे आर्तनाश कृष्ण! श्रीमती राधिके!
निवेदन करे दीन चरण-अन्तिके॥
भागवतजन प्रार्थनीय तव सेवा।
ए निकृष्टजन तार योग्य हय किवा?
तोमादेर कृपा योग्यायोग्य नाहि माने।
ताई त प्रवृत्ति मोर जागियाछे मने॥40॥
वृत्ते दैवादब्रजपतिसुहृन्नन्दिनीविप्रलम्भे,
संरम्भेनोल्ललित ललिताशंकयोद्भ्रान्तनेत्रः।
त्वम् शारीभिः समयपटुभिद्रागुपालभ्यमानः,
कामम् दामोदर मम कदा मोदमक्ष्णोर्विधाता?॥41॥

अन्वय:-(हे) दामोदर त्वम् कदा कामम् (यथेच्छम्) मम अक्ष्णो: मोदम् विधाता (विधानकर्त्ता भविष्यति? कीदृशम् सन्नित्याह) ब्रजपतिसुहृन्नन्दिनीविप्रलम्भे (श्रीराधिकाया: विरहे) दैवाद्वृत्ते (सति) संरम्भणे (क्रोधेन) उल्ललिता (जाज्वल्यमाना या) ललिता (तस्या:) शंकया (भीत्या) उद्भ्रान्तनेत्र: (उद्भ्रान्ते एस्ते नेत्रे यस्य स:) समयपटुभि: शारीभि: द्रागुपालभ्यमान: (शीघ्र-मुपलभ्यमान:, परमसुन्दररूपस्य ते राजपुत्रस्यापि, धीसौन्द्रयम् नास्ति; यदेतामनुपरमरूपगुणानाम् तदेकतानाम् राजपुत्रीम् वंचयसीति निर्भर्त्स्यमान: सन्नित्यार्थ:)।

अनुवाद:- हे दामोदर! दैवात् श्रीराधिका की विप्रलम्भ दशा उपस्थित होगीं एवं तुम ललिता के भय से उद्भ्रान्त-नयन होंगे, उस समय निकुंज में उपस्थित सारिकागण "राजनन्दिनी श्रीराधा की तुम अकारण ही वंचना कर रहे हो" कहकर कितना तिरस्कार करेंगी। तुम्हारी तत्कालिक वदन माधुरी दिखा कर कब मेरा नयनानन्द विधान करोगे?

मकरन्दकणा व्याख्या

नयनानन्द-विधान:

श्रीपाद का चित्त दैन्य के आवेग से उच्छ्वसित है! स्वयं की अयोग्यता की स्फूर्ति से तीव्र व्याकुलता की सृष्टि की थी। अब इष्ट की निरतिशय करुणा माधुरी ने चित्त में आशा का आलोकपात किया है। "तुम्हारी करुणा-माधुरी योग्य-अयोग्य का विचार भूलकर तुम्हारी सेवा-लाभ के निमित्त चित्त को अधीर कर रही है। कब तुम्हारी सेवा प्राप्त कर धन्य होऊँगा बताओ?" सहसा श्रीपाद श्रीराधामाधव की करुणा से एक मधुर लीला का स्फुरण प्राप्त करते हैं-

वर्षा काल है, दुर्योग भरी रात्रि है। ललिता-विशाखा आदि सखियों के संग श्रीमती कुंज अभिसार को जा रही हैं। श्रीपाद किंकश्रीरूप में अन्यान्य कुछेक किंकरियों के संग सेवा-सामग्री वहन कर पीछे-पीछे चल रहे हैं।

रयनि काजर वम भीम भुजंगम
कुलिस परए दुखार।
गरज तरज मन रोसे वरिस धन
संशय पड अभिसार॥

सजनि, वचन छडइते मोहि लाज।
जो होए से होअउ वरू सवे हमे अंगिकुरू
साहस मन देल आज॥
आपन अहित-लेख कहइते परतेख
हृदयक न पाइअ उर।
चाँद हरिण-वह राहू कवल सह
प्रेम पराभव थोर॥
चरण वेधिल फणि हित कत्र मानिल र्धाने
नेपुर न करत्र रोरा
सुमुखि पुछओ तोहि स्वरूप कहसि मोहि
सिनेह कतदूर उर॥
ठामहि रहिए धूमि' परशे चिहिअ भूमि
दिगमग उपजु सन्देह।
हरि हरि शिव शिव तावे जाईह जिव
जावे न उपजु सिनेह॥
भणइ विद्यापति- शुनह सुचेतनि
गमन न करह विलम्बे।
राजा शिवसिंह रूपनयात्रन
सकल-कला-अवलम्बे॥

श्रीमती शत-सहस्र बाधा-विपत्तियों को अतिक्रम कर संकेत कुंज-कुटीर में आ पहुंची हैं। श्याम भी संकेतानुसार श्रीमती के कुंज में आ रहे थे, दैववश चन्द्रावली की सखी पद्मा ने उन्हें देख लिए और उन्हें चन्द्रावली के कुंज में ले गईं। "दैव" किसे कहते हैं? जिस घटना पर किसी का नियंत्रण नहीं होता, अन्य-रूप आकांक्षा एवं चेष्टा होने पर भी जो घटनाक्रम घट जाता है, उसे ही "दैव" कहते हैं। श्रीराधामाधव की मधुमयी लीलाओं का काल, कर्म, गुण, दैव आदि के संग कोई सम्पर्क नहीं होता। श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण इस श्लोक की व्याख्या में लिखते हैं- "उज्ज्वलाख्य: श्रीकृष्णसख: स्मरो देवस्तस्येदम् कर्म्म दैवम् तस्मात्तदिच्छात इत्यार्थ:। लीला विस्तारार्था खलु तदिच्छैवम् प्रवर्तते।" अर्थात् उज्ज्वल नामक श्रीकृष्ण सखा ही श्रीराधामाधव

की लीला पुष्टि के निमित्त कन्दर्प देव हैं, उनका यही कार्य है। लीला-रस पुष्टि के निमित्त उन्हीं की इच्छा से यह सब घटनाक्रम घटता है।" श्रीमत् जीव गोस्वामीपाद "दैवोपहतचेतस:" (भागवत) पद की व्याख्या में लिखते हैं- "देव" शब्द का अर्थ श्रीभगवान् है एवं उनकी लीला-शक्ति वैभव को दैव कहा जाता है। भगवत् स्वरूप के ऊपर स्वरूपभूता लीलाशक्ति या योग-मायाशक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी का भी कर्तत्व नहीं होता। श्रीराधा के संग श्रीगोविन्द की लीला रस पुष्टि के लिए चन्द्रावली आदि प्रतिपक्ष हैं। श्रीकृष्ण यदि चन्द्रा के कुंज में न जाएँ तो श्रीराधा की खण्डिता, मान, कलहान्तरिता प्रभृति रसमयी अवस्थाओं का उदय होना सम्भव नहीं होगा। श्रीराधा के वैचित्रीपूर्ण रसास्वादन के निमित्त ही अन्यान्य गोपिकाए हैं। "राधा सह क्रीडारस वृद्धिर कारण। आर सब गोपीगण रसोपकरण॥" (चै. च.)

श्रीमती सखियों के संग संकेत कुंज में उपस्थित हुई हैं। सखियों के संग कुंज सज्जा कर श्यामसुन्दर की प्रतीक्षा में बैठी हैं। संकेत समय अतिक्रान्त हो गया तो श्रीमती उत्कण्ठा से अधीर हो उठीं। रूदन करते-करते सखी से कहती हैं-

ए घोर रजनी मेघ गरजनी
केमने आउव पिया।
शेज बिछाइया रहिलुँ बसिया
पथपाने निरखिया॥
सेई, कि करव, कह मोरे।
एतहूँ विपद तरिया आइलुँ
नव-अनुराग-भरे॥
ए हेन रजनी केमने गोऊव
बँधुर दरश विने।
विफल हईल मोर मनोरथ
प्राण करे उचाटने॥
दहये दामिनी घन झनझनि
पराण माझारे हाने।

ज्ञानदास कहे- शुनह सुन्दरि
मिलवि बन्धुर सने॥

सखियाँ सान्त्वना दे रही हैं, किन्तु हाय! उन विरह विधुर प्राणों में सान्त्वना का पथ ही कहाँ है? इसी प्रकार विरह-दु:ख में सारी रात्रि निकल गई। प्रभात के समय चन्द्रावली के सम्भोग-विलसित नायक श्रीमती के कुंज-द्वार पर आ उपस्थित हुए। खण्डिता श्रीमती रोष से भर कर कुटिल वाक्यों का प्रयोग करती हुई कहती हैं-

भाल हैल आरे बन्धु आइला सकाले।
प्रभाते देखिलुँ मुख दिन यावे भाले॥
बन्धु, तोमार शुकायेछे मुख।
के साजाले हेन साजे हेरि वासि दु:ख॥
बन्धु, तोमाय बलिहारि याई।
फिरिया दाँडाउ तोमार चाँद-मुख चाई॥
आई आई पडयाछे मुखे काजरेर शोभा।
भाले से सिन्दूर-बिन्दु मुनि मन लोभा॥
खर-नख दशनेते अंग जर जर।
भाले से कंकण-दाग हियार ऊपर॥
नील पाटेर शाटी कोंचार बलनि।
रमणी रमण हैया वंचिला रजनी॥
सुरंग यावक-रंग उरे भाल साजे।
एखन कह मनेर कथा आइला किबा काजे॥
चारि पाने चाहे नागर, आँचरे मुख मोछे।
गोपाल दासेर लाज धुइले ना धुचे॥

अभिसार के दु:ख कष्ट एवं राज-नन्दिनी की सम्पूर्ण रात्रि की विपुल वेदना की स्मृति से एवं उसके ऊपर अपराधी नायक के दर्शन से ललिता क्रोध से लाल हो उठी। जहाँ मदीयतामय प्रेम की निविडता होती है वही ऐसा आघात लगता है। क्रोध से लाल हुई ललिता को देख कर श्यामसुन्दर भय से उद्भ्रान्त नेत्र हो इधर-उधर देखने लगे- इसी आशंका से कि जाने ललिता अब कितनी भर्त्सना करेगी।

उसी समय कुंज की सारिकाएँ श्याम की भर्त्सना करने लगीं– 'ओ रे लम्पट शिरोमणि! सुकुमारी राजनन्दिनी को कुंज में अभिसार करा कर तुम इतना दुख दे रहे हो। हाय! तुम्हारे विच्छेद–दुख में कातर राजनन्दिनी सारी रात विलाप करती रहीं और उन्हें देख कर कुंज के पशु–पक्षी, वृक्ष–लताएँ भी रूदन कर रही थीं। प्रथम तो ऐसी प्रेममयी की वंचना की और फिर प्रात:काल ही अन्य नायिका के भोग चिह्न लेकर ज्वाला के ऊपर और ज्वाला देने आ गए हो! तुम परम सुन्दर राजपुत्र तो हो किन्तु तुम्हारा मन बहुत मलिन है– तुम्हारी बुद्धि का कुछ भी सौन्दर्य नहीं है।'

सारिकाओं की तिरस्कार वाणी श्रवण कर ललिता से भयभीत श्याम के उद्भ्रान्त नयन और भी व्याकुल हो गए। स्वरूपाविष्ट श्रीपाद श्याम की तत्कालिक भावमाधुरी एवं रूप माधुरी देखकर सुखी हो रहे थे। नयनयुगल में आनन्द जैसे मूर्त हो रहा था! श्रीराधारानी एवं उनकी सखियों के भय से भीत श्रीकृष्ण की माधुश्रीराधा किंकरियों को बहुत प्रिय है। इनके निकट श्रीकृष्ण तभी सबसे अधिक सुन्दर होते हैं जब वे श्रीराधा के भय से कातर, उनके वशीभूत एवं उनके लिए व्याकुल होते हैं। श्रीमत् रूप गोस्वामी पाद लिखते हैं–

क्वचन च दर–दोषाद्दैवतः कृष्ण जातात्
सपदि विहितमाना मौनिनी तत्र तेन।
प्रकटित–पटु–वाटु प्रार्थ्यमानप्रसादा
क्षणमणि मम राधे नेत्रमानन्दय त्वम्॥

(प्रेमपूराभिर्घस्तोत्रम्–8)

'हे राधे! किसी समय दैववश श्रीकृष्ण का स्वल्प अपराध दर्शन कर तुम मानिनी हो जाओगी और मौन धारण कर लोगी, तब श्रीकृष्ण तुम्हारी प्रसन्नता के निमित्त विविध चाटु वचनों से तुम्हारे निकट प्रार्थना करेंगे, उस अवस्था में तुम क्षण–काल के लिए मेरा नयनानन्द विधान करना।'

श्रीकृष्ण के तादृश दर्शनों से परम सुखी किंकश्रीरूप मंजरी ने किसी कौशल विशेष का अवलम्बन कर ललिता को प्रसन्न किया और युगल मिलन सम्पन्न कराया। सहसा स्फुरण में विराम आ गया। हाहाकार सहित प्रार्थना करने लगे–

उहे दामोदर हरि! प्रियाजीर सने।
दैवात् विच्छेद हैले निकुन्ज कानने॥
ललितार भये तुया उद्भ्रान्त नयन।
भर्त्सना करये पाछे धृष्टता कारण॥
समय रसज्ञा यत निकुन्जेर शारि।
तिरस्कार बलिबेक 'शुनह श्रीहरि॥
कुन्जे त्वदधीना राजपुत्री राधिकाय।
केन वा वंचना कैले शठ् श्यामराय॥'
शारिर वचन शुनि तत्कालोचित।
तोमार तादृश भाव अति अद्भुत॥
दर्शन कराये मोर तृषित नयन।
आनन्दित करिवे कि मदनमोहन?
श्रीरूप मंजरी देवी श्रीरूप गोस्वामी।
भजनेर गूढ तत्त्व प्रकाशे आपनि॥41॥
रासारम्भे विलसति परित्यज्य गोष्ठाम्बुजाक्षी,-
वृन्दम् वृन्दावनभुवि रहः केशवेनोपनीय।
त्वाम् स्वाधीनप्रियतम्पदप्रापणेनार्चितांगीम्,
दूरे दृष्टवा हृदि किमचिरादर्पयिष्यामि दर्पम्? ॥42॥

अन्वय:-(हे राधे) वृन्दावन भुवि त्वाम् दूरे दृष्टा अचिरात (शीघ्रम्) हृदि किम् दर्पमर्पयिष्यामि? (त्वाम् कीदृशीमित्याह) विलसति रासारम्भे गोष्ठाम्बुजाक्षीवृन्दम् परित्यज्य (सर्वा: कान्ता: विहाय) रह: (निर्जनम्) उपनीय केशवेन (कर्त्रा) अर्चितांगी (कृत-सर्वांगकुसुमवेशाम्। केशवेन कीदृशेनेत्याह) स्वाधीन प्रियतमपद प्रापनेन (स्वाधीनस्य प्रियतमस्य यत् पदम् कुसुमालंकार-निर्माणादिरूपोव्यवसायस्तत् प्राप्नोतीति तेन त्वदाज्ञानुवर्तिनेत्यार्थ:)।

अनुवाद:- हे श्रीमती राधिके! श्रीवृन्दावन में रास क्रीड़ा आरम्भ होने पर श्रीकृष्ण अन्यान्य ब्रज सुन्दरीगण को परित्याग कर केवल तुम्हारे संग निर्जन में गमन करेंगे, वहाँ तुम्हारे आज्ञाधीन होकर नानाविध कुसुमों द्वारा तुम्हाश्रीरूप सज्जा में निरत होंगे, यह सब दूर से दर्शन कर कब गर्व से मेरा हृदय भर उठेगा?

मकरन्दकणा व्याख्या

राधाकिंकरी का गर्व:-

श्रीपाद स्फूर्ति के विराम में रूदन करते हैं, हृदय में विपुल उत्कण्ठा है। सूतीव्र लालसा से लीला की स्फूर्ति होती है एवं उस स्फुरण के भीतर माधुर्य का आस्वादन करते हैं। उसी के रसोद्गार को भावोद्वेलित कमनीय-काव्य-कला लालित्य में प्रकाशित कर उन्होंने रसिक समाज को रस-साधना का उपहार दिया है। श्रील ठाकुर महाशय लिखते हैं-

जय सनातन रूप, प्रेमभक्ति-रसकूप,
युगल उज्ज्वलमय तनु।
जाँहार प्रसादे लोक, पासरिल सब शोक,
प्रकट कल्पतरु जनु॥
प्रेमभक्ति रीति जत, निज ग्रन्थे सुवेकत,
लिखियाछेन दुई महाशय।
जाहार श्रवण हैते, प्रेमानन्दे भासे चित्ते,
युगल मधुर रसाश्रय॥
युगलकिशोर प्रेम, लक्षवाण जेन हेम,
हेन घन प्रकाशिल जाँरा।
जय रूप! सनातन! देह मोरे प्रेमधन,
से रतन मोर गले हारा॥

(प्रेमभक्तिचन्द्रिका)

श्रीपाद स्फूर्ति के अभाव में रूदन कर रहे थे तो उन्हें पुन: स्फुरण प्राप्त हुआ। इस बार महारास की स्फूर्ति हुई। वंशी नारद से आकृट गोप सुन्दरीगण का श्रीकृष्ण के निकट आगमन होता है तो श्रीकृण उनके प्रति उपेक्षा वचन कहते हैं एवं उन्हें श्रवण कर गोपियाँ प्रार्थना करती हैं तो कृष्ण उनसे मिलते हैं। किन्तु शतकोटि गोपियों के संग समान प्रेम व्यवहार देख कर श्रीराधारानी मानिनी हो जाती हैं। रास के आरम्भ में ही ब्रज सुन्दरीगण का सौभाग्य गर्व एवं श्रीराधारानी का मान प्रकट होता है। एक साथ इस गर्व एवं मान के प्रशमन एवं प्रसादन के लिए श्रीकृष्ण श्रीमती को संग लेकर अन्तर्हित हो जाते हैं।

तासाम् तत् सौभगमदम् वीक्ष्य मानचं केशवः।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत॥

(भा.- 10/29/48)

"श्रीकृष्ण ब्रजसुन्दरीगण का सौभाग्यगर्व एवं मान दर्शन कर उसके प्रशमन एवं प्रसादन के लिए उस विहार स्थली से अन्तर्हित हो गए।" श्रीपाद शुकदेव मुनि प्रायशः महारास में नायिकाभाव का ही वर्णन किया है। किन्तु सखीभाव का कुछ भी वर्णन न किया हो ऐसा नहीं है। "अप्येनपत्न्युपगतः" इत्यादि (भाः-10/30/11) श्लोक में श्रीराधा की सखियों ने हरिणी के निकट जो श्रीश्रीराधाकृष्ण की वार्ता जिज्ञासा की है, उससे यह स्पष्ट ही जाना जाता है। इस श्लोक की तोषणी टीका में लिखा है- "अत्राखण्डस्य वाक्यस्य निखिलपदानामपानुमोदनव्यंजक एवार्थः प्रतिपद्यते। ततः सख्यमेवासाम् तन्मिथुनमनुलक्ष्यते तद्दर्शनोत्कण्ठा च तत्र वाक्यार्थः।" अर्थात् इस श्लोक की समस्त कथा नायिका की रति अनुमोदन व्यंजक या तद्‌भावेच्छात्मिका सखी भाव की हैं। अतः यह स्पष्ट ही जाना जाता है कि, श्रीराधिका की सखियाँ ने श्रीश्रीराधाकृण की दर्शनोत्कण्ठा से अधीर होकर हरिणी से उनकी वार्ता जिज्ञासा की थी। महारास में मंजरियाँ उपस्थित थी या नहीं, यह श्रीमद्‌भागवत की महारास की आलोचना से स्पष्ट नहीं होता। मंजरिया भी एक प्रकार की सखी हैं। श्रीमन्महाप्रभु के आविर्भाव से पूर्व सखियों एवं मंजरियों में कोई भेद है, यह किसी ने भी उल्लेख नहीं किया। सर्वप्रथम श्रीमत् रूप गोस्वामीपाद ने श्रीश्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका ग्रन्थ में अष्टादश मंजरियों के नामों का उल्लेख किया है। अतः मंजरी भाव साधना का रहस्य श्रीमन्महाप्रभु एवं उनके श्रीचरणाश्रित आचार्य पादगणों का ही आविष्कार है। श्रीरूप सनातन आदि आचार्यपद गण ब्रज की मंजरियाँ ही हैं। मंजरी भाव साधना का आदर्श प्रचार करने के लिए श्रीमन्महाप्रभु के संग आए हैं। श्रीपाद द्वारा वर्णित इस श्लोक से जाना जाता है कि महारास में मंजरिया उपस्थित थीं एवं सखियों की अपेक्षा भी उनकी महारास रसास्वादन के लिए एक विशेष भूमिका थी। श्रीश्रीराधा-कृष्ण के अन्तर्हित हो जाने पर सखियाँ उनके संग नहीं रह सकती थीं क्योंकि निर्जन में श्रीराधाकृष्ण का रहस्यमय विलास होना था और ललिता-विशाखा आदि सखियों के संग होने पर वह सम्भव नहीं था। किंकरियाँ

श्रीराधा की अभिन्न-प्राण हैं। "श्रीमतीर समा सवे देहभेद मात्र। एक आत्मा एक प्राण सवे राधातन्त्र॥" इसलिए किंकरियों के इस रहस्यमय विलासक्षेत्र में उपस्थित होने पर भी श्रीमती को कोई संकोच नहीं होता। विशेषत: सेवा के निमित्त इनकी उपस्थिति की सब समय आवश्यकता रहती है। सर्वोपरि मंजरियाँ यदि क्षणकाल के लिए भी श्रीराधारानी के श्रीचरण त्याग करती हैं तो इसके प्राणों का बच पाना कठिन हो जाता है इसलिए यह सतत श्रीमती के श्रीचरण सान्निध्य में अवस्थान करती हैं। अधिक क्या कहा जाए, निविड़ विलास काल में भी कोई न कोई मंजरी वस्त्र-आवृत अवस्था में विलास शैय्या पर ही अवस्थान करती है। श्रीमत् प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद लिखते हैं-

क्षणम् चरणविच्छेदाच्छ्रीश्वर्य्या: प्राणहारिणीम्।
पदारविन्दसंलग्नतयैवाहर्निशम् स्हिताम्॥
बहूना किम् स्वकान्तेन क्रीडन्त्यापि लतागृहे।
पर्य्यांकधिष्ठापिताम् वा वस्त्रैर्वाच्छादिताम् क्वचित्॥

(वृ.भा. - 8/22-23)

शत कोटि गोपियों के सान्निध्य से अन्तर्ध्यान हो जाने के उपरान्त श्रीश्रीयुगलकिशोर का निर्जन में अद्‌भुत रहस्यमय विहार हुआ। किंकश्रीरूप ने कुंज की लताओं के पीछे से सभी कुछ आस्वादन किया। कोटि-कोटि रोदन परायणा गोपियाँ उन्मादित होकर वृक्ष-लता आदि से कृष्ण वार्ता जिज्ञासा करते-करते एक वन से दूसरे वन में श्रीकृष्ण की खोज में लगीं थी किन्तु उनका उस ओर कुछ ध्यान नहीं था, वे श्रीराधा के निर्भर प्रेम में मग्न थे। "रेमे तया स्वात्मरत आत्मारामोऽप्यखण्डित:" (भा.-10/30/34) श्रीकृष्ण ने आत्माराम एवं आप्तकाम होते हुए भी श्रीराधा के संग निरन्तर विविध विहार किया। स्वच्छन्द विहार में श्रीराधा स्वाधीनभर्तृका दशा को प्राप्त हुई। "स्वायत्तासन्नदयिता भवेत् स्वाधीनभर्तृका"। 'कान्त जिस नायिका के आधीन होकर सतत निकट अवस्थान करते हैं, उसे 'स्वाधीनभर्तृका" कान्ता कहा जाता है।'

श्रीमती श्यामसुन्दर से कहती हैं- "माधव! स्वच्छन्द विहार से केश, वेश आदि सब भ्रष्ट हो गया है, मुझे पूर्ववत सुसज्जित कर दो।

रचय कुचयोः पत्रम् चित्रम् कुरुष्व कपोलयो-
र्घटय जघने कांचीमंचस्रजा कवरीभरम्।
कलय-वलयश्रेणीम् पाणो पदे कुरू नूपुरा-
विति निगदितः प्रीतः पीताम्बरोऽपि तथाकरोत्॥

(गीतगोविन्दम्)

श्रीमती कहती हैं- 'हे कृष्ण! तुम मेरे कुच-युगल पर कस्तूरी पत्र रचना करो, कपोल-द्वयो को चित्रित करो, कमर में मणिमय मेखला पहना दो, पुष्पमाला के द्वारा कवरी को शोभित करो, कर-युगल में वलय श्रेणी पहना दो एवं चरणों में नूपुर पहना दो-श्रीमती से इस प्रकार आज्ञा प्राप्त कर पीताम्बर-धारी ने उसका पालन किया।'

इसके उपरान्त नागर ने अपने हाथों से कुसुम चयन किए और कुसुमों के नानाविध अलंकार रचना कर प्रेमपूर्वक श्रीमती को सजाया। नागर श्रीमती के एकान्त आधीन हैं, वे जो कहेंगी, वे वही करेंगे। हृदय की समस्त आसक्ति श्रीराधारानी के प्रति ही है। श्रीरूप मंजरी थोड़ा दूर खड़ी होकर सब देख रही हैं। ईश्वरी का सौभाग्य दर्शन कर हृदय गर्व से भर गया है। आज महारास रजनी में, शतकोटि गोपियों के मिलन मेले में श्रीराधा के ऐसे सौभाग्य के दर्शन कर स्वामिनीगतप्राणा किंकरी के आनन्द की सीमा नहीं है! सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। हाहाकार करते हुए स्फूर्ति प्राप्त लीला के दर्शनों की प्रार्थना अभीष्ट चरणों में निवेदन करने लगे-

हे श्रीराधिके! रासारम्भे मदनमोहन।
तोमार महिमा यत करिते रव्यापन॥
अम्बुजाक्षी सर्वकान्ता परित्याग करि।
तोमा लैया अन्तर्ध्यान करिवे श्रीहरि॥
रहःस्थाने श्रीकेशव तोमार आज्ञाय।
कुसुमेर वेषभूषा करिवे तोमाय॥
तत्काले दोंहाकार उल्लास वचन।
विचित्र विलास यत दुर्लभ रतन॥
दूर हैते कवे आमि करिया दर्शन।
अपार गौरव हृदे करिवे स्थापन॥42॥

रम्या शोणद्युतिभिरलकैर्यावलोकनोर्ज्जदेव्याः,
सघस्तन्द्रीमुकुलदलसक्लान्तनेत्रा ब्रजेश।
प्रातश्चन्द्रावलीपरिजनैः साचि दृष्टा विवर्णैः-,
रास्यश्रीस्ते प्रणयति कदा सम्मदम् मे मुदचं? ॥43॥

अन्वयः-(हे) ब्रजेश ते (तव) आस्यश्रीः (मुखशोभा) कदा मे (मम) सम्मदम् (अतिदर्पम्) मुदंच (हर्षंच) प्रणयति (करिष्यति? कीदृशी सेत्याह) उर्ज्जदेव्याः (श्रीराधाया) यावकेन (पादालक्तकेन प्रसादनप्रणतिलग्नेन) शोणद्युतिभिरलकै रम्या, (पुनः कीदृशी) सद्यस्तन्द्रीमुकुलदल-सक्लान्तनेत्रा (सद्यस्तत्क्षणम् "सद्यः सपदि तत्क्षणे इत्यमरः" तन्द्रया किंचिन्निद्रया मुकुलन्ती मुकुलायमाने अलसे क्लान्ते च नेत्रे यस्याम् सा, तथा) प्रातश्चन्द्रावलीपरिजनैः साचि दृष्टा विवर्णैः (विवर्णैश्चैन्द्रावली परिजनैः प्रातः साचि वक्रम् दृष्टैत्यार्थः)।

अनुवादः- हे ब्रजपते! तुम प्रातःकाल चन्द्रावली के कुंज से श्रीराधा के कुंज में आगमन करोगे और मानिनी श्रीराधा के मान भंजन के निमित्त उनके चरणों में प्रणाम करोगे तो उनके श्रीचरणों की अलत्तक से तुम्हारी अलकावली रंजित हो जाएगी, रात्रि जागरण के कारण नयन युगल निद्रावेश से मुकुलित होंगे एवं आलस्य से क्लान्त होंगे, उस अवस्था में चन्द्रावली की सखियाँ विवर्ण होकर वक्रदृष्टि से तुम्हारे उस भाव का दर्शन करेंगी, तत्कालोचित तुम्हारी वह वदनशोभा कब मेरे हृदय में युगपत गर्व एवं आनन्द का विस्तार करेगी?

मकरन्दकणा व्याख्या

श्यामचाँद की मुखश्रीः-

श्रीपाद की स्फुरण धारा निरन्तर चल रही है। स्फूर्ति के मध्य एक के बाद एक मधुर लीला का रसास्वादन प्राप्त कर परमानन्द रस-सरोवर में सन्तरण कर रहे हैं। और फिर लीला स्फूर्ति के विराम में, साधकावेश में दैन्य-आर्ति के साथ महा विरह की हृदय विदारक क्रन्दनमय प्रार्थना निवेदन कर रहे हैं। स्फूर्ति का आस्वादन एक ओर जैसे अमृत के सिन्धु को पराभूत करता है, स्फूर्ति के विराम में विरह-वेदना की तीव्रता, दूसरी ओर उसी प्रकार महासन्तापक ज्वालामुखी के अनलोद्‌गार को भी धिक्कारती है! जैसे-जैसे

अप्रकट काल निकट आता जा रहा था, महाप्रेमवती सेविका के समान श्रीश्रीराधामाधव की साक्षात् सेवा लाभ के निमित्त वे व्याकुल होते जा रहे थे।

इस आलौकिक भावमय चेष्टा की आलोचना से साधक दुर्गम राग मार्ग का आलोक प्राप्त कर पाएँगे एवं श्रीपाद के महाविरह-व्याकुल, उत्कण्ठा-विह्वल भजन प्रणाली के ध्यान से युगल प्रेम की अन्तरंग एवं निगूढ़ रहस्यावली की भी उपलब्धि कर पाएँगे। श्रीपाद की साधक आवेश की प्रार्थना परिपाटी भी राग मार्ग के रहस्यमय भजन इतिहास का एक अपूर्व, अभिनव अंग है। साधक दशा में स्वरूपावेश की कैसी अपूर्व झंकार है।

पूर्व श्लोक की स्फूर्ति में श्रीराधारानी का उत्कर्ष दर्शन कर राधा स्नेहाधिका राधागत प्राणा किंकरी का हृदय गर्व से भर उठा था। स्फूर्ति में विराम आ गया तो लीला दर्शन के लिए प्रार्थना निवेदन करने लगे थे। पुनः श्रीराधा उत्कर्ष सूचक एक अपूर्व लीला का स्फुरण प्राप्त हुआ। स्वरूपाविष्ट श्रीपाद श्रीरूप मंजरी के रूप में देख रहे हैं- निकुंज मन्दिर में सखियों के संग श्रीराधा वासक सज्जिका हैं। श्यामसुन्दर को आने में विलम्ब हो रहा है तो उत्कण्ठा से अतिशय अधीर हो उठी हैं। रूदन करते-करते कह रही हैं

कानुक संदेशे वेश वनि आइलूँ
संकेत-केलि-निकुन्ज।
माधवी-परिमले भरि तनु जारई
फुकरइ मधुकर पुन्ज॥
अबहूँ ना मिलल दारूण-काम।
निलज चित पिरिति अवरोधई
इथे नाहि यात पराण॥
कानुक वचन- अमिया रस-सेचने
वेचलूँ तनु मन जाति।
निज कुल दूषण भूषण करि मानलूँ
तोंह भेल एछन शाति॥
हिमकर किरणे गमन अवरोधल
कि फल चलवहूँ गेह।

गोविन्दास कह याई सति जानह
कानु कि तेजल लेह॥

(पद कल्पतरु)

विलाप करते–करते रजनी अतिवाहित हो गई, प्रभात हो गया। श्रीराधा के कुंज की ओर आगमन करते समय चन्द्रावली की सुचतुर सखियाँ पद्मा एवं शैव्या चतुराई से नागर को चन्द्रा के कुंज में ले गई थीं। पूर्ण रात्रि चन्द्रा के कुंज में बिता देने के उपरान्त नागर प्रात:काल श्रीराधा के कुंज में आकर उपस्थित हुए हैं। चन्द्रावली के संग सम्भोग–विलसित नागर की दशा दर्शन कर खण्डिता श्रीमती रोष से भरकर कहती हैं–

डगमग अरूण उजागर लोचन
उरे नख परतीत रेखा।
रति–रणे रमणी पराभव मानइ
देयल रति–जय–लेखा॥
माधव! अव कि कहव तुया आगे।
ना जानिये रति रस उ सुख सम्पद
कि फल तुया अनुरागे॥
रति–रसे अलस अवश दिठि मन्थर
निरवधि निंदक सेवा।
कोन कलावती करि कत आरति
पूजल मनमथ देवा॥
वचन रचन करि किये परवोधसि
निरवधि अन्तरे सोइ।
गोविन्ददास कह परश–तुल नह
परशने रस नाहि होई॥

(वही)

अपराधी नायक मानिनी श्रीराधा के चरणों में बैठकर कितनी प्रार्थनाए कर रहे हैं। कभी मिथ्या वचनों से और कभी चाटु–वाक्यों से श्रीमती के मान प्रसादन का प्रयत्न कर रहे हैं।

शुन शुन सुन्दरि कर अवधान।
विनि अपराधे कहसि कहे आन॥
पूजलुँ पशुपति यामिनी जागि।
गमन-विलम्बन भेल तथि लागि॥
लागल मृगमद कुंकुम दाग।
उचारिते मन्त्र अधरे नाहि राग॥
रजनी उजागरि लोचन भोर।
तथि लागि तुहूँ मुझे वोलसि चोर॥
नव कवि शेखर कि कहव तोय।
शपथि करह तवे परतीत होय॥

(वही)

श्याम नागर श्रीमती के चरणों में पड़कर शपथ ले रहे हैं। चरण धर्माक्त है। श्रीचरणों के अलत्तक-रस से श्याम की अलकावलि रंजित हो गई है। दूसरी ओर प्रात:काल हो चुका है और नागर घर को चल गए होंगे सोचकर, चन्द्रावली की सखी पद्मा और भी दो-एक सखियों को संग लेकर श्रीराधारानी एवं उनकी सखियों की श्याम विरह में दुरवस्था दर्शन के कौतूहल वश यमुना स्नान का छल कर श्रीमती के कुंज के निकट आई हैं। श्रीरूप मंजरी देख रही हैं- नागर की कैसी अपूर्व वदन-माधुरी है। रात्रि जागरण के कारण निद्रावेश से नयन-युगल मुकुलित हो रहे हैं। आलस्य एवं क्लान्ति जैसे नयन-युगल से फूट रही है। मानिनी श्रीराधा के अलत्तक-रस से अलकावलि रंजित है!! राधा किंकरियों के निकट यह रूप माधुरी रसधन मोहन मूर्ति है, अत: सबसे अधिक आस्वादनीय है। श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती लिखते हैं-

रसधनमोहनमूर्तिम्, विचित्रकेलिमहोत्सवोल्लसितम्।
राधाचरणविलोडित-, रूचिरशिखण्डम् हरिम् वन्दे॥

(राधारससुधानिधि-201)

"जिनका सुन्दर शिखि-पिच्छ चूड़ा श्रीराधा के चरणों में विलुण्ठित है, उन्हीं रसधन मोहन-मूर्ति विचित्र केलि महोत्सव में उल्लसित श्रीहरि की मैं वन्दना करता हूँ।"

इस ओर चन्द्रावली की सखियाँ जो कुछ देखने की अभिलाषा से आई थी उससे विपरीत व्यापार देखकर विवर्णा हो गईं। दुख से क्षोभ से म्रियमाणा हो गईं। वे मानमयी श्रीराधा के अलत्तक रस से रंजित-मस्तक नायक को वक्र दृष्टि से देखने लगीं। यह सब देखकर रूप मंजरी का हृदय युगपत आनन्द एवं गर्व से भर उठा! सहसा स्फुरण में विराम आ गया। हाहाकार करते हुए श्रीश्यामसुन्दर की उस वदन-माधुरी के दर्शन के लिए प्रार्थना ज्ञापन करने लगे।

हे ब्रजेश! पीतवास लीला रस रंगे।
रात्रि करि जागरण चन्द्रावली संगे॥
प्रभाते राधार कुन्जे करि आगमन।
मानिनी प्रियार मान करिते भंजन॥
यावकेते सुरंजित चरण कमले।
गललग्नि-कृतवासे मस्तक लुटाले॥
तोमार अलकावलि लोहित वरण।
निद्रावेशे मुकुलित कमल नयन॥
अलसे अवश अंग क्लान्त श्यामराय।
विवर्णा चन्द्रार सखी वक्रदृष्टिे चाय॥
हेनकाले मुखशोभा दर्शन करावे।
हृदये आनन्दगर्व विस्तार करिवे॥
एड़ त लालसा मने मदनमोहन।
कातरे प्रार्थना करे श्रीरूप चरण॥43॥
व्यातुक्षीरभसोत्सवेऽधरसुधापानग्लहे प्रस्तुते
जित्वा पातुमथोत्सुकेन हरिणा कण्ठे धृताया: पुर:।
इषच्छोनिममीलिताक्षमनृजुभ्रुवल्लिहेलोन्नतम्
प्रेक्षिष्ये तव सस्मितम् सरूदितम् तद्देवि वत्तृम् कदा?॥44॥

अन्वय:- (हे) देवी व्यात्युक्षीरभसोत्सवे (मिथोऽम्बुसेको व्यात्युक्षी, 'कर्म्मव्यतिहारेण च स्त्रियामिति' सूत्रात् पदसिद्धि:। तस्याम् यो रभसो वेशस्तद्-युक्ते उत्सवे इत्यार्थ:) तव सस्मितम् सरूदितम् तद्वक्तम् कदा (अहम्) प्रेक्षिष्ये? (तस्मिन् कीदृशे) अधरसुधापानग्लहे प्रस्तुते (अधर-

सुधापानमेव ग्लहे पणो यस्मिम्स्तादृशे, तव कीदृश्या:) जित्वा पातुमथोत्सुकेन हरिणा कण्ठे धृताया: गृहीताया:, तद्वक्तम् कीदृशम्) इषत्शोणिम्मीलिताक्ष-मनृजुभ्रूवल्लिहेलोन्नतम् (इषद्ल्प: शोणिमा यस्मिन् तत् मीलिते मुद्रिते अक्षिणी यत्र तत्। अनृजु कुटिले भ्रूवल्लो यत्र तत्। हेलयानादरेणोन्नतमित्यार्थ:)।

अनुवाद:- हे देवी श्रीराधिके! अधरसुधा-पान का पण निश्चित कर तुम्हारी जलक्रीड़ा आरम्भ होगी और इस क्रीड़ा में जय लाभ कर श्रीकृष्ण प्रसन्न चित्त से अधरसुधा पान के निमित्त सखियों के सम्मुख ही तुम्हारा कण्ठदेश ग्रहण कर लेंगे। तब बाह्य रूप से क्रोध प्रकाश के कारण आरक्त नयन एवं कुटिल भ्रू लताओं के उत्क्षेप एवं अनादर के कारण उन्नत, हास्य एवं रोदन-मिश्रित तुम्हारा मुख पद्म मैं कब दर्शन करुँगा?

मकरन्दकणा व्याख्या

जलविहारोत्सव:

श्रीपाद का स्फूर्ति का आस्वादन अति सुस्पट है। जैसे चक्षुओं से साक्षात् देखते हुए लीला रस का आस्वादन कर रहे हैं। लीला के भीतर रूपगुण आदि की अद्भुत माधुरी निहित रहती है। विपुल लालसा के साथ मिलन-विरह के अप्राकृत आनन्द वेदना के माध्यम से रूप-गुण आदि की आस्वादन परम्परा भोग करते चल रहे हैं। लोभ अथवा लालसा ही राग साधक के भजन की प्रवर्त्तक है। लोभ या रूचि के बिना साधन करने से सहज ही भक्ति प्राप्त नहीं होती। क्योंकि श्रीकृष्ण निज-विषयक आसक्ति देखकर ही भक्ति दान करते हैं और रूचि या लोभ ही भजन में अभिनिवेष जाग्रत कर श्रीकृष्ण में आसक्ति उत्पादन करते हैं। श्रीजीव गोस्वामीपाद कहते हैं- "श्रीकृष्ण एवं उनके पार्षदगणों के प्रेम-परिपाटीमयी कथाओं में आसक्ति, किसी अन्य साधन की अपेक्षा न करते हुए स्वयं ही साधक के अन्तर में लोभ उत्पादन करने में समर्थ है।" (तत्तत् कथारतिस्त श्रेष्ठम् साधनम्। विनाप्यन्यैस्तेनैव कार्य्यसिद्धेरित्यलम्-भक्ति सन्दर्भ:)। और फिर श्रीकथा श्रवण-कीर्तन के प्रति लोभ साधन होते हुए भी साध्य वस्तु है। कारण श्रीकृष्ण कथा एवं कथनीय श्रीभगवान् में कोई भेद नहीं है- दोनों अभिन्न एवं स्वप्रकाश वस्तु हैं। श्रीपाद की इस महावाणी का श्रवण-कीर्तन

श्रीश्रीराधामाधव के चरणों में लोभ एवं लोभनीय श्रीभगवान् को लाभ करने की श्रेष्ठतम् साधना है।

श्रीपाद स्फूर्ति के विराम में रूदन कर रहे थे। सहसा श्रीराधाकुण्ड में जलविहार लीला का स्फुरण प्राप्त हुआ। मध्याह्न लीला में वन भ्रमण, मधुपान, विलास आदि के उपरान्त गजराज करिणी के समान जल विहार के लिए उत्सुक होकर सखियों के संग श्रीराधामाधव श्रीराधाकुण्ड के तट पर उपस्थित हुए हैं। नान्दीमुखी, कुन्दलता एवं धनिष्ठा ने श्रीराधामाधव का वेश परिवर्तन करा दिया है। सखियों के संग श्रीमती को श्वेत पतली साड़ी पहना दी है और श्यामसुन्दर को भी श्वेत पतले वस्त्र की धोती पहना दी है। "क्या लीला होगी ?"– "जलयुद्ध"। कुन्दलता कहती है– "पण रखकर खेल खेला जाएगा– "अधरामृत पण"। जो हारेगा वह विजयी को अधरामृत प्रदान करेगा और सभी सखियाँ साक्षी रहेंगी।" पहले तो श्रीमती ने आगे–पीछे का विचार न कर कुन्दलता की बात पर हाँ कह दी किन्तु फिर पण के विषय में विचार कर जीभ काटने लगीं। कारण इस अद्‌भुत पण को दान एवं ग्रहण करना, दोनों ही उनके लिए लज्जाकर व्यापार हैं। किन्तु अब तो पण स्थिर हो चुका, अब कोई उपाय नहीं।

श्रीराधामाधव आमने–सामने खड़े हैं। प्रथमतः दोनों परस्पर के श्रीअंगों पर मृदु–मृदु जलधारा वर्षण करने लगे। श्वेत पतला वस्त्र दोनों के अंगों के संग ही मिल गया है। दोनों परस्पर की उच्छ्लित अंग माधुरी का आस्वादन कर रहे हैं! रूप आदि किंकरियाँ तट पर खड़े होकर कौतुक दर्शन कर रही है एवं रस के सरोवर में निमग्न हो रही हैं। श्याम एक पहलवान की तरह छाती फुला कर खड़े हैं, कहते हैं– "राधे! तुम पहले मेरे अंगों पर जल वर्षण करो।" श्रीमती श्याम–अंगों पर जलधारा वर्षण करने लगीं। नयनों की अपूर्व शोभा है!

"तम् सिषेच करपंकजकोषैः, साम्बुभि समणि–कंगनधोषैः।
वारुणास्त्रमेव तत् कुसुमेषो, रत्यसह्यमभवदविजिगीषोः॥
शश्लथे भगवती वनमाला, हारयष्टिरपतत् सुविशाला।
एक एव बलवान प्रियदेहे, कौस्तुभम् परिभवम् न विषेहे॥"

(कृष्णहिं कौमुदी– 4/140 एवं 149)

"श्रीराधा मणिमय कंगनों की झंकार के साथ कर-पद्म कोषस्थ जलराशि से कृष्ण को सिंचित करने लगी तो वह मदन के वारुणास्त्र के समान जय की कामना करने वाले श्रीकृष्ण के लिए असहनीय हो उठा। श्रीकृष्ण की वनमाला शिथिल हो गई- सुविशाल हार भी कण्ठ से निकलकर गिर गया। प्रियतम की देह पर केवल बलवान कौस्तुभ ने ही अकातर भाव से जलधारा को सहन किया।"

प्रियाजी ने इतनी जलधारा वर्षण की, किन्तु श्याम को कष्ट होगा सोचकर उनके मुख एवं नयनों में जल निक्षेप नहीं किया था- केवल वक्ष आदि अंगों पर ही जल सिंचन किया था, किन्तु निष्ठुर श्याम विजय की कामना से प्रियाजी के नयनों को ही लक्ष्य करके जल निक्षेप करने लगे।

"सह्यतामयमयम् मम पाथः,-सेक इत्यार्थ निगद्य स नाथः।
प्रेयसी-वदन एव सहर्षः, सस्मितम् सरसमम्बुववर्ष॥"

(वही- 4/150)

"हे प्रिय! इस बार मेरे इस जल प्रहार को सहन करके दिखाओ"- यह बात कह आनन्द के सहित प्रेयसी के मुख पर रसमय हास्य करते हुए जलवर्षण करने लगे। परस्पर विशाल जल युद्ध हुआ। सखियाँ श्यामसुन्दर को निषेध करने लगीं- "श्याम! तुम हमारी सखी के नेत्रों पर जल वर्षण मत करो। हमारी सखी ने क्या तुम्हारे नेत्रों पर जल वर्षण किया था? अहो! उसे कितना कष्ट हो रहा है।" श्याम किसी की बात मानने वाले पात्र ही नहीं हैं। जल निशेप की परिपाटी से स्वामिनी को पागल किए दे रहे हैं, यद्यपि स्वामिनी परम गम्भीर है। स्वामिनी के अंग विवश हुए जा रहे हैं। एक पहलवान के संग सुकुमारी स्पर्धा करें भी तो कैसे? स्वामिनी दूसरी ओर मुख घुमाकर खड़ी हो गईं। श्याम उच्च स्वर से ताली बजाते हुए कहने लगे- 'हार गई- हार गई।' सभी मौन होकर खड़ी हैं। श्याम की जय कोई भी नहीं कह रही। यदि श्रीराधारानी की जय हुई होती तो अभी तक "राधे जय राधे जय" की ध्वनि से कुण्ड मुखरित हो गया होता।

श्याम कहने लगे- "पण देना होगा, मैं छोड़ूंगा नहीं, यदि तुम्हारी विजय हुई होती तो क्या तुम छोड़ देतीं? सखियाँ "हाँ" भी नहीं कह रही, "ना" भी नहीं कह रही। श्यामसुन्दर स्वामिनी के निकट आकर उनका कण्ठ धारण

कर लेते हैं। कहते हैं– "पण दो।" स्वामिनी के मुख की कैसी अपूर्व शोभा है। जलयुद्ध के कारण नयन–द्वय आरक्तिम हैं और फिर बाह्य कोप भी है। अर्ध निमीलित भ्रू–भगिमा है। "हेला" नामक भाव का प्रकाश है। "हेला" अर्थात् अनादर या शृंगारजभाव युक्त। विजयी वीर है– वह छोड़ेगा नहीं। स्वामिनी के मुख पर हंसी भी है, रूदन भी है। मुख पर हास्य की कैसी अपूर्व माधुरी है। नयन पूर्ण रूप से मुदित नहीं कर पा रही हैं। परम सुन्दर हैं श्याम– उन्हें देखे बिना क्या रहा जा सकता है? श्याम 'पण दो–पण दो' कह रहे हैं। स्वामिनी पण देना नहीं चाहती। वाम्य, संकोच, अवज्ञा, उपेक्षा है। चारों ओर सखियाँ हैं। अप्राकृत नवीन मदन "दो–दो" कह रहे हैं। श्रीमती के मुख–मण्डल पर कितने ही भावों की अभिव्यक्ति है। बाहर से उपेक्षा, भीतर से अपेक्षा।

इस श्लोक की व्याख्या में श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण लिखते हैं– 'अत्र किलकिंचित्कुटुमित–विवोकास्त्रयो भावा वर्णिताः।' अर्थात् इस श्लोक में श्रीराधारानी के किलकिंचित् कुटमित एवं विवोक, यह त्रिविध भाव–अलंकार वर्णित हैं। हम उज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थ से उनके लक्षणों को यथाक्रम उद्धृत कर रहे हैं।

गर्वाभिलाषरूदित-स्मितासूयाभयक्रुधाम्।
संस्करीकरणम् हर्षादुच्यते किलकिंचितम्॥
स्तनाधरादिग्रहणे हृत्प्रीतावपि सम्भ्रमात्।
वहिः क्रोधो व्यथितवत् प्रोक्तम् कुटुमितम् बुधैः॥
इष्टेऽपि गवर्वमानाभ्याम् विवेवाकः स्यादनादरः॥

अर्थात् "गर्व, अभिलाष, रोदन, हास्य, असूया, भय एवं क्रोध– हर्ष के कारण यह सात भाव जब एक समय में उदित होते हैं तो उसे किलकिंचित् कहा जाता है।"

"स्तन–अधर आदि ग्रहण के समय हृदय में प्रीति होते हुए भी सम्भ्रमवश व्यथिता के समान जो बाह्य क्रोध प्रकाशित होता है, पण्डितगण उसे "कुटुमित" भाव कहते हैं।"

"गर्व एवं मान के कारण कान्त अथवा कान्तप्रदत्त वस्तु के प्रति जो अनादर होता है, उसका नाम "विवेवाक" होता है।"

एत भाव-भूषाय भूषित राधा-अंग।
देखिया उछले कृष्णेर सुखाब्धितरंग॥

★ ★ ★

एइ भाव युक्त देखि राधास्य-नयन।
संगम हैते सुख पाय कोटि गुण॥

(चै.च.)

किंकश्रीरूप में श्रीपाद जलकेलि उत्सव के माध्यम से श्रीराधा की भावपूर्ण मुख माधुरी के आस्वादन में तन्मय थे कि उसी समय स्फुरण में विराम आ गया। आर्ति सहित उस मुख माधुरी के दर्शनों की प्रार्थना निवेदन करने लगे।

हे देवी श्रीराधिके! वृन्दावनेश्वरी।
'अधरेर सुधापन' एइ पण करि॥
लीला रंगे जलकेलि करिया आरम्भ।
अवशेषे जय लाभ करिया गोविन्द॥
अधरेर सुधापान करिवार तरे।
धरिवे तोमार कण्ठ ब्रजेन्द्र कुमारे॥
बाह्य कोप प्रकाशिया तुमि त तखने।
भ्रूलता उत्क्षेपेते (चाबे) आरक्त नयने॥
अनादर भाव, हास्य, रोदन मिश्रित।
कुटमिति, विवेवाक आर किलकिंचित्॥
नाना भावभूषाय भूषित तव मुख।
निरखिया पाइव कि परानन्द सुख?"॥44॥

आलीभिः सममभ्युपेत्य शनकैर्गान्धर्विकायाम् मुदा
गोष्ठाधीशकुमार हन्त कुसुमश्रेणीम् हरन्त्याम् तव।
प्रेक्षिष्ये पुरतः प्रविष्य सहसा गूढस्मितास्याम् वला-
दाच्छिन्दानमिहोत्तरीयमुरसस्त्वाम् भानुमत्याः कदा?॥45॥

अन्वयः- (हे) गोष्ठाधीशकुमार! अलिभिः (ललितादिभिः) समम् गान्धर्विकायाम् शनकैस्तव (पुष्पवाटीम्) अभ्युपेत्य (उपेत्य) मुदा कुसुमश्रेणीम् हरन्त्याम् (सत्याम्) सहसा पुरतः इह (तत्र) प्रविश्य भानुमत्याः

(गान्धविर्वका-सहचर्य्या) उरस-उत्तरीयम् वलादाच्छिन्दानम् गूढस्मितास्याम् त्वाम् (अहम्) हन्त (खेदे) कदा प्रेक्षिष्ये

अनुवादः- हे ब्रजेन्द्रनन्दन! ललिता आदि सखियों से परिवेष्टित हो श्रीराधिका तुम्हारी कुसुम वाटिका में प्रवेश करेंगी और अलक्षित भाव से आनन्द मग्न होकर कुसुम चयन करेंगी, उस समय तुम सहसा उस स्थान पर आकर श्रीराधा की सहचरी भानुमती के वक्षस्थल से उसका उत्तरीय वस्त्र बलपूर्वक ग्रहण कर लोगे। तब तुम्हारा गूढ़ हास्य युक्त मुख क्या मैं देख पाऊँगा?

मकरन्दकणा व्याख्या

पुष्पचयन लीला-विनोदः-

पूर्व श्लोक में श्रीपाद ने ससखी श्रीराधामाधव की जलकेलि लीला में श्रीराधारानी किलकिंचित् आदि भाव-भूषणों से भूषित वदन माधुरी का आस्वादन किया था। स्फूर्ति में विराम आने पर आस्वादित लीला के रसोद्गार सहित पुनः दर्शन की कामना व्यक्त कर रहे हैं। यही क्रम चल रहा है। श्रीयुगल के मधुमय लीलारस के पिपासु भक्त समाज के निकट इस सब श्लोकों के प्रत्येक पद में दिव्य भावों का कैसा अपूर्व उच्छ्वास है, प्रत्येक वर्ण निरूपम सुधा का आधार है- जो भाव साधन रूपी शैल पर आरोहण करने में सक्षम हैं, वे ही इस विषय की उपलब्धि कर पाते हैं। एक-एक श्लोक जैसे लीला रस की अलकनंदा हो! भागवत परमहंसगणों की मानस-प्रत्यक्षगम्य। वे प्रेममय नयनों से दर्शन करते हैं, रसमय स्वभाव से आस्वादन करते हैं एवं आनन्द की लहरों में डूब जाते हैं। श्रीपाद स्फूर्ति में विराम आ जाने पर रूदन कर रहे थे कि तभी पुनः स्फुरण हुआ।

स्वरूपाविष्ट श्रीपाद देख रहे हैं- श्रीमती सखियों के संग आनन्दित मन से पुष्प उद्यान में पुष्प चयन कर रही हैं। सहसा माली का वेश धारण कर श्यामसुन्दर वहाँ उपस्थित हो जाते हैं। कुसुम चयन को लेकर उनके नाना प्रकार से तर्क-वितर्क करने लगते हैं। सखियों के संग प्रणय-कलह आरम्भ हो जाती है। श्रीमती की कैसी अपूर्व शोभा है। परस्पर की अंग शोभा, नयन शोभा, मुख-माधुरी वक्रोत्ति के संग उच्छ्वसित हो उठी है। सखियों के साहचर्य में विदग्धतामय वाक्य विलास से रससिन्धु में उत्ताल तरंगमालाएँ उठ

रही हैं। स्वरूपाविष्ट श्रीपाद का चित्त-मन उन रस तरंगों के संग असीम की ओर बहता चला जा रहा है।

श्रीकृष्ण कह रहे हैं- "अरे चोरनियों, निर्जन देख कर तुम सब यह क्या सर्वनाश कर रही हो। यौवन के मद में मत्त होकर मेरे अमूल्य पुष्प उद्यान को नष्ट कर रही हो। मैं भी इसके प्रतिशोध में तुम्हारे देह-उद्यान की सब सम्पत्ति लूट लूँगा।" यह बात कहकर सहसा श्रीराधा की सखी भानुमती के वक्ष से उसका उत्तरीय वस्त्र खींच लिया। अन्तर में उल्लास है किन्तु बाहर से क्रोध प्रकाशित कर रही हैं। अन्तर का गूढ़ हास्य श्रीमुख पर व्यंचित है! कैसी मधुर मुख शोभा है।

अपनी सखी के प्रति ऐसा व्यवहार देखकर, अन्तर में उल्लास होते हुए भी बाहर से क्रोध प्रकाश करती हुई अपनी सखियों के प्रति श्रीराधारानी कहती हैं- "सखियों यह उद्यान किसका है? हम तो यहाँ प्रतिदिन ही पुष्पचयन करती हैं; यह उद्यान हमारा ही तो है। यह स्वयं तो अपनी शत्-शत् गाय यहाँ चरा कर हमारे मनोहर उद्यान को समूल नष्ट करता है और फिर हमारे प्रति ही इस प्रकार अविनीत व्यवहार करता है।"

श्रीविशाखा ने कहा- 'हे कृष्ण! जो धन व्यय करके उद्यान प्रस्तुत करता है, वह उद्यान उसी का होता है; किन्तु वृन्दावन को तो किसी ने प्रस्तुत नहीं किया, अतः इस पर सभी का समान अधिकार है। वृन्दावन केवल तुम्हारा किस प्रकार हुआ?

श्रीकृष्ण ने कहा- "हे विशाखिके! गोपालतापनी श्रुति में "कृष्ण-वनम्" नाम से इसकी ख्याति है; वह क्या तुम ने नहीं सुनी? अतएव यह वन मेरा ही है।"

यह सुनकर श्रीवृन्दा ने कहा- 'उहे! "राधा वृन्दावने वने' सर्वोपमद्रक इस पुराण वचन को भगवती पौर्णमासी देवी के निकट किसने नहीं श्रवण किया? अतः वृन्दावन श्रीराधा का ही है।"

श्रीकृष्ण- "श्रुति के "कृष्णवनम्" इस अति प्रबल प्रमाण वचन के सम्मुख तुम्हारा स्मृति वचन "राधा वृन्दावने वने उपमद्रित हो जाता है। कारण स्मृति की अपेक्षा श्रुति अधिक प्रामाण्य है। श्रुति प्रमाण सर्वोपमद्रिनी है।"

ललिता- 'हे कृष्ण! श्रुति एवं स्मृति में कोई विरोध नहीं है। अपितु सर्वत्र समन्वय ही है। तुम वाक्य का अर्थ न समझ कर व्यर्थ ही इस प्रकार की विरोध कल्पना क्यों कर रहे हो? जानते हो, "कृष्णवनम्" इसका क्या समास है?"

श्रीकृष्ण- "ललिते! इसमें क्या कठिन है? यह तो षष्ठी तत् पुरुष है।" कृष्णस्य वनम् कृष्णवनम् अर्थात् जो कृष्ण का वन है वही "कृष्णवनम्" है।

ललिता- "हे समासाचार्य! बहुत उत्तम समास निरूपण किया है! इससे श्रुति स्मृति के विरोध का त्याग भला किस प्रकार होता है? श्रवण करो मैं बताती हूँ- श्रुति का "कृष्णवनम्" कर्मधारय समास है। "कृष्णच श्यामंच तत् वनंचेति"- अर्थात् स्मृति जो "राधा वृन्दावने वने" कहती है उसके अनुसार वृन्दावन श्रीराधा का ही है। वह श्रीराधा का किस प्रकार है इसका निरूपण करते हुए श्रुति कहती है- सेटि 'कृष्णवनम्' अर्थात् घने वृक्षों एवं लताओं के सन्निवेश से वह "कृष्ण-वर्ण" या "श्याम-वर्ण" है। यह तुम्हारा वृन्दावन है इस प्रकार कहीं नहीं कहा गया। तुम क्यों श्रुति वाक्यों का मर्म न समझकर व्यर्थ ही स्वयं के आधिपत्य स्थापन का प्रयास कर रहे हो?"

तब चम्पकलता कहती हैं- "ललिते, तुम सत्य कहती हो, क्योंकि विविधकर्म अर्थात् अरिष्टासुर, केशी इत्यादि का वध एवं कालीयदमन, गोवर्धन धारण एवं नित्य रास आदि लीलाओं को धारण या उन्हें सम्पन्न या प्रकाशित करता है इसी से इस वन का कर्मधारयत्व स्पष्ट रूप से सुसिद्ध होता है।"

श्रीकृष्ण- "हे जड़बुद्धिगण! तुम सभी नाना प्रकार से कूट-कल्पना कर "कृष्णवनम्" शब्द को कर्मधारय बहूव्रीही समास प्रतिपादित करने की चेष्टा कर रही हो किन्तु इसके तत्-पुरुष समास का किस प्रकार खण्डन करोगी?"

श्रीराधा- "यदि 'कृष्णवन' शब्द का षष्ठी तत्-पुरुष समास करने से "कृष्ण का वन', यह निर्धारित होता है तो हे पुरुष सिंह। सखी स्थली की वट-श्रेणी ही तुम्हारा वन होगा। क्योंकि सखीस्थली पर ही "षष्ठीतत् पुरुष नित्य विद्यमान रहता है।"

ललिता- "षष्ठी काचिदेका, तस्याः पुरुषः पतिरेव, जनो वा षष्ठीतत्-पुरुषः" अर्थात् षष्ठी कोई एक नारी है, और उस षष्ठी का पुरुष या पति जो है, वही षष्ठीतत्-पुरुष है।"

इषत् हास्य के साथ विशाखा– "ललिते! 'तत् पुरुष' शब्द का अर्थ तो समझ गई; किन्तु षष्ठी कौन है उसका प्राकृत नाम क्या है, वह तो बताओ।"

ललिता– "चन्द्रावली। प्रथम गोवर्धन मल्ल, द्वितीय उनकी माँ भारूण्डा–चण्डी, तृतीय चन्द्रावली की जननी महीकराला–चर्चिकादेवी, चतुर्थी शैव्या–काली, पंचमी प्रसिद्धा पद्मा– शज्ख्तिनी, षष्ठी–सखीस्थली वटवासिनी चन्द्रावली। वटवृक्ष पर ही षष्ठी देवी का अधिष्ठान होता है, यह तो प्रसिद्ध ही है।"

यह बात श्रवण कर श्रीराधारानी एवं उनकी सभी सखियाँ हंसने लगीं। श्यामसुन्दर भी इनकी बुद्धि कौशल एवं परिहास वाणी श्रवण कर रस–सरोवर में संतरण करने लगे। स्वरूपाविष्ट श्रीपाद किंकश्रीरूप में लीला रससिन्धु में निमग्न थे। सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। आर्ति सहित श्रीकृष्ण का परिहास रस मधुर मुख दर्शन की अभिलाषा प्रकाश करने लगे।

हे कृष्ण! हे चपल! हे ब्रजराजसुत!
सखीगणे श्रीराधिका हइया वेष्टित॥
परम आनन्दे सवे तोमार उद्याने।
अलक्ष्य भावेते करे कुसुम–चयने॥
सहसा से स्थाने तुमि करि आगमन।
भानुमतीर वक्षस्थले जे आच्छादन॥
बल करि उत्तरीय करिया ग्रहण।
बाह्य कोप प्रकाशिबे मदन–मोहन॥
अन्तरेते हास्ययुक्त प्रफुल्ल वदन।
एई दीनजन कबे करिबे दर्शन? ॥45॥

उदचंति मधूत्सवे सहचरीकुलेनाकुले कदा,
त्वमवलोक्यसे ब्रजपुरन्दरस्यात्मज।
स्मितोज्ज्वलमदीश्वरीचलदृगंचलप्रेरणा,–
न्निलीनगुणमंजरीवदनमत्र चुम्बन्मया? ॥46॥

अन्वय:– (हे) ब्रजपुरन्दरस्यात्मज! अत्र (ब्रजे) सहचरीकुलेन (सखीवृन्देन) आकुले (व्याप्ते) मधूत्सवे (वसन्तमहसि) उदचंति (सति) त्वम् मया कदावलोक्यसे? (अवलोकितो भविष्यसि, कीदृशस्त्वम्)

स्मितोज्ज्वलमदीश्वरीचलदृगंचलप्रेरणान्निलीनगुणमंजरीवदनम् चुम्बनम् (स्मितोज्ज्वलेन मदीश्वर्य्याः श्रीराधायाश्चलदृगंचलेन प्रेरणात् प्रवर्त्तनाद्धेतोः निलीनायाः क्वचिन्निलीय स्थिताया गुणमर्य्यास्तदाख्यायाः सख्या वदनम् चुम्बन्नित्यार्थः)।

अनुवादः– हे ब्रजेन्द्रनन्दन! ब्रज में वसन्तोत्सव आरम्भ होने पर सखियों से वेष्टित श्रीराधा हास्योज्ज्वल मुख से एवं नयनों के इंगित से तुम्हें प्रेरण करेंगी और निभृत स्थान में स्थित गुण मंजरी के मुख पर तुम चुम्बन करोगे, इस भाव में मैं तुम्हें कब देख पाऊँगा?

मकरन्दकणा व्याख्या-

वसन्तोत्सवः

पूर्व श्लोक में श्रीपाद ने श्रीराधामाधव की पुष्प चयन लीला में उनके प्रेम कलह का आस्वादन प्राप्त किया था। स्फूर्ति में विराम आ जाने पर चित्त विरह व्याकुल हो उठा। विरह रस में स्मृति की वेदना अतिशय तीव्र होती है। स्फूर्ति प्राप्त रूप की झलक नयन के सम्मुख आती है और तुरन्त चली जाती है। प्रेमिक के प्राण अस्थिर हो जाते हैं। जितना आस्वादन होता है उतनी पिपासा वर्धित हो जाती है। यह बात न किसी से कह पाता है और न ही छुपा पाता है। श्रीपाद भी अपने अन्तर की वेदना को श्लोक में निवेदन कर रहे हैं। साधन राज्य या भाव राज्य में इस अनुभवमयी वाणी का प्रभाव अपरिसीम है। इस भजन रस विभावित महावाणी का श्रवण-कीर्तन साधक के चित्त को भी शीघ्र भावाकुल कर देगा। इसीलिए ही ग्रन्थ की आलोचना की जा रही है। श्रीपाद विरह व्याकुल दशा में रूदन कर रहे थे, सहसा वसन्तोत्सव-लीला का स्फुरण प्राप्त हुआ।

वसन्तोत्सव के प्रारम्भ में वन देवी वृन्दा वसन्त ऋतु की निखिल शोभा सम्पदा से वृन्दावन को विभूषित करती हैं। माधवी, लवंग लता आदि के पुष्पों से परिवेष्टित मुकुलित रसाल तरू-समूह शोभायमान हैं। रक्ताशोक, नागकेशर, मन्दार, बकुल आदि वृक्षों के एवं कनकलता, नवमल्लिका प्रभृति लताओं के प्रफुल्लित कुसुमों के सौरभ से वन भूमि सुगन्धित है। पत्र विहीन पलाश वृक्षों की शुक पक्षी की चोंच के समान रक्तिम-कलिका जैसे तरूण-तरूणियों के हृदय विदारक मदन के तीक्षण-नखास्त्र हैं। रसाल

मुकुल के भक्षण से कोकिलाओं की पंचम तान मधुरतर हो गई है। भ्रमरकुल कुसुमों का मधु पान कर प्रमत्त हैं। मृदुल मलयानिल जैसे नृत्य करते हुए कुसुमों के सौरभ सम्भार से वृन्दावन को सुरभित करते हुए बह रही है। कुसुम पराग से वनभूमि आच्छन्न है एवं मकरन्द रस से सिक्त है। स्थान-स्थान पर मयूर आनन्दित मन से पंख उठाकर नृत्य कर रहे हैं। हिरण, शशक, मृग आदि पशुगण इधर-उधर विचरण कर रहे हैं। नाना पक्षियों के कल कूजन से वनभूमि मुखरित है।

वृन्दा देवी ने वनदेवियों के साथ परम प्रीति से भरकर श्रीराधामाधव एवं सखियों को वसन्तोत्सवोचित वेश वसन भूषण आदि से अलंकृत किया है। अब वृन्दा उन्हें मनोहर रंग वेदिका दिखा रही हैं- 'हे ब्रजमंगलाकर श्रीराधाकृष्ण! इस मनोहर वसन्तलीलोत्सव की रंग वेदी का दर्शन करो। यह वेदिका अगुरु, कुंकुम, कस्तूरी, कर्पूर एवं चंदन प्रभृति पृथक् एवं मिश्रित उद्गत कद्रम के जल से परिपूर्ण स्वर्ण कलशों से सुशोभित है। जिनके विस्तृत मुखों पर विविध मणि निर्मित पिचकारियाँ शोभा पा रही हैं। सिन्दूर, कर्पूर, एवं पुष्पों से निर्मित कन्दुक एवं पुष्पों से बने धनुष-बाण इत्यादि एवं ताम्बूल, माल्य, कुसुमवासित जल एवं चन्दन प्रभृति भोग्य द्रव्य आदि विराजित हैं। कर्पूर, कुंकुम, मृगमद, अगुरु एवं चंदन इन पंच द्रव्यों के पंक एवं चूर्ण से परिपूरित, जो निश्वास वायु द्वारा भी फट जाते हैं ऐसे जातूष (जातु से निर्मित) कूपिका समूह स्वर्ण पात्र में परिव्याप्त हैं।'

इसके उपरान्त सखियों के संग श्रीराधा एवं सुबल, मधुमंगल आदि के संग श्रीकृष्ण उस सुविस्तृत वेदिका पर आरोहण कर गए और सभी एक दूसरे के सम्मुख खड़े होकर, क्रीड़ा योग्य जल-यन्त्र धारण कर, अतिशय प्रेम से भर कर परस्पर जल निक्षेपन आदि क्रीड़ाएँ करने लगे। कोई-कोई नाना प्रकार के वाद्ययं ? बजाने लगा, कोई-कोई वसन्त राग गाने लगा और कोई-कोई परस्पर पर सुगन्धित चूर्ण एवं कन्दुक निक्षेप करने लगा। हास्य रसिक बटु मधुमंगल निपुण भाव से भ्रमण करते-करते उल्लास से भरकर नाना प्रकार की भंगिमाओं से नृत्य करने लगा। सुलोचना ब्रज रमणियाँ परस्पर अपूर्व हास-परिहास रस का विस्तार करते हुए सिन्दूर, कुमकुम चूर्ण आदि क्षेपन

करने लगीं एवं वीणा वादन करते हुए आनन्द से भरकर मुक्त कण्ठ से द्विपदिका (राग विशेष) आलाप करने लगीं।

श्रीपाद रूप मंजरी के रूप में अपूर्व वसन्तोत्सव दर्शन कर परमानन्द रस में तन्मय हैं। किंकरीगण थोड़ा दूर खड़ी होकर सखा एवं सखियों के साथ श्रीश्रीराधामाधव के इस वसन्तोत्सव का दर्शन कर रही हैं। उन सभी में से श्रीगुण मंजरी एक निभृत स्थान पर लता मंजरी की आड़ में रहकर वसन्त लीला के दर्शन में निरत है। श्रीकृष्ण एवं उनके सखा श्रीमती एवं उनकी सखियों पर पिचकारी से सुगन्धित जल निक्षेप करते हैं एवं बीच-बीच में किंकरियों पर भी वह सुगन्धित जल निक्षेप कर देते हैं। श्रीमती राधारानी हास्य मधुर वदन से, नयनों के इंगित से श्रीकृष्ण को समझा देती हैं कि गुण मंजरी लता मंजरी की आड़ में छिपी हुई है। श्रीकृष्ण भी प्रियाजी का इंगित समझ कर सहसा गुण मंजरी के निकट आ जाते हैं एवं उन्हें बाहुबद्ध कर उनके मुख पर चुम्बन कर लेते हैं।

गुण मंजरी "हा हा नाथ! क्षमा करो, यह क्या करते हो, मैं तो तुम्हारी दीना दासी हूँ", इस प्रकार कहती हुई अति कष्ट के साथ कृष्ण के बाहु बंधन से मुक्त होकर भाग जाती हैं। समस्नेहा ललिता आदि सखियों के संग, श्रीराधारानी की इच्छा से कभी-कभी श्रीकृष्ण का मिलन-विलास आदि होता है, किन्तु मंजरियों के संग ऐसा कभी नहीं होता। मंजरियाँ सब समय ससखी श्रीयुगल की सेवा में निरत रहती हैं। वे सेवा रस की मूर्ति हैं सेवा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानती। सब समय सेवानन्द में ही मग्न रहती हैं। श्रीराधा पदकमलों के दास्य रस में ही अनन्य चित्ता हैं, स्वप्न में भी श्रीकृष्ण के साथ रंग स्वीकार नहीं करती। श्रीकृष्ण यदि बलपूर्वक कंचुक छिन्न-भिन्न कर कुछ आचरण करते हैं तो मंजरी अश्रुयुक्त होकर- 'ना-ना' इस प्रकार प्रलाप करने लगती हैं- तब इन्हें देखकर प्राण स्वरूपिणी श्रीराधा हास्य करती हैं। अर्थात् मंजरीगण की ऐसी भाव निष्ठा देखकर श्रीराधा बहुत आनन्दित होती है।

अनन्यश्रीराधापदकमलदास्यैकरसधी
हरेः संग रंग स्वपनसमये नाडपि दधति।

वलात् कृष्णे कूर्पासकभिदि किमप्यचरति का-
प्युदश्रुतर्मवेति प्रलपति ममात्मा च हसति॥

(वृन्दावनमहिमामृत-16/94)

राधास्नेहाधिका तद्भावेच्छात्मिका काम रूपा रागात्मिका भक्ति से सर्वापेक्षा गाढ़ स्वाभाविकी तृष्णा-श्रीश्रीराधाकृष्ण का विलास-दर्शन जनित सुख, यह सुख तृष्णा या तद अनुकूल सेवा तृष्णा ही मंजरी भाव है।

वकरिपु-परिरम्भास्वाद-वान्छा-विरक्तिम्
व्रतमिव सखि! कत्री स्वालि सौख्यैकतृष्णा।
फलमलभत कस्तूर्य्यादिरालिः सखीनाम्
हरिवनवरराज्ये सिंचते ताम् यदद्य॥

(श्रीमाधव महोत्सव-7/131)

अर्थात् "हे सखि! श्रीकृष्ण के आलिंगन-आस्वादन वांछा से विरक्ति रूपी व्रत का आचरण करने वाली अथच एकमात्र श्रीराधा के सुख की ही तृष्णा रखने वाली, कस्तूरी प्रभृति मंजरीगण ने श्रीवृन्दावन में यथार्थ रूप से अपने व्रत का फल लाभ किया है।" गौड़ीय वैष्णवगण इसी फल को प्राप्त करने की अनन्त कामना करते हैं-

हरि हरि! हेन दिन हइवे आमार।
दोंह अंग परशिव दूहूँ अंग निरखिव
सेवन करिव दोहाँकार॥
ललिता विशाखा संगे, सेवन करिव रंगे,
माला गांथि दिव नाना फूले।
कनक-सम्पूट करि, कर्पूर ताम्बूल भरि,
योगाइव अधर युगले॥
राधाकृष्ण वृन्दावन, सेइ मोर प्राणधन,
सेइ मोर जीवन उपाय।
जय पतितपावन, देह मोरे एई धन,
तुया विने अन्य नाहि भाय॥

श्रीपाद स्फूर्ति में वसन्तोत्सव लीला रस का आस्वादन प्राप्त कर रहे थे। सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। विपुल आर्ति के साथ लीला दर्शन की प्रार्थना निवेदन करने लगे।

हे ब्रजपुरन्दर-आत्मज गोविन्द।
वृन्दावन निकुन्जेते सखीगण संग॥
वसन्त उत्सवे मत्त आनन्द सवार।
हेनकाले स्मितमुखी कटाक्षे राधार॥
श्रीगुणमंजरी नामे सखीर वदने।
चुम्बन करिवे तुमि निभृत गोपने॥
ऐछन लीला हेरि लालसा आमार।
मनोवान्छा पूर्ण कर ब्रजेन्द्र कुमार॥46॥
कलिन्दतनयातटीवनविहारतः श्रान्तयोः,
स्फुरनमधुर-माधवीसदन-सीम्नि विश्राम्यतोः।
विमुच्य रचयिष्यते स्वकचवृन्दमत्रामुना,
जनेन युवयोः कदा पदसरोजसम्मार्जनम्?॥47॥

अन्वयः- (हे राधामाधवो) अत्र (ब्रजे) अमुना जनेन (अनेन मल्लक्षणेन जनेन) स्वकचवृन्दम् (आत्मकेशजुटम्) विमुच्य (उन्मुच्य) कलिन्दतनयातटी-वनविहारतः श्रान्तयोः स्फुरत-मधुर माधवी सदन सीम्नि विश्राम्यतोः युवयोः पदसरोजसम्मार्जनम् (पादेभ्यो रजसामपनयनम्) कदा रचयिष्यते (करिष्यत इत्यार्थः)।

अनुवादः- हे नाथ श्रीकृष्ण! हे श्रीमती राधिके! तुम कालिन्दी तटवर्ती वनविहार से परिश्रान्त होकर माधवी लता के मूल में विश्राम करोगे, तो तुम्हारे पाद-पद्मों की रज को मैं अपने मुक्त केश-पाश के द्वारा कब सम्मार्जित करुंगीं?

मकरन्दकणा व्याख्या

पादरज-सम्मार्जनः

श्रीपाद के महाभाव-रस रंजित नेत्रों के समक्ष श्रीयुगल की निरूपम लीला माधुरी स्फुरण में फूट रही है। लीला माधुर्य के स्त्रोत में बहते-बहते सहसा स्फूर्ति में विराम आ जाता है। हृदय वीणा पर एक अनास्वादित-पूर्व आनन्द-वेदना का सुर झंकृत हो उठता है। यदि हृदय उस भाव के योग्य न हो तो उसे अनुभव नहीं किया जा सकता। हृदय को इस भावग्रहण के योग्य बनाने के लिए ही साधन-भजन है। और फिर भाव-ग्रहण की योग्यता प्राप्त

हो जाने के उपरान्त भी साधन-भजन चलता रहता है। इसका कभी भी विश्राम नहीं होता। ज्ञान, योग आदि के क्षेत्र में साधक जितना सिद्धि की ओर अग्रसर होता है, उतना ही साधन कम हो जाता है किन्तु भक्ति साधना में सिद्धि जितनी निकटस्थ होती जाती है उतना ही साधन बढ़ जाता है। श्रीपाद महाभाव राज्य में विचरण करते हुए सदा साधन रसास्वादन में विभोर हैं। व्याकुल हृदय सिन्धु में प्रार्थना की तरंगे उठ रही हैं। संग-संग विचित्र लीलामाधुरी उनके नयनों के सम्मुख फूट उठ रही है। पूर्व श्लोक में स्फुरण में वसन्त लीला के माध्यम से गुण मंजरी सखी की राधा निष्ठा का आस्वादन किया था। स्फूर्ति में विराम आने पर प्रार्थना की तरंग उठी और फिर अन्य एक लीला का स्फुरण प्राप्त हुआ।

श्रीश्रीराधामाधव यमुना तट की अपूर्व नैसर्गिक शोभामाधुरी का दर्शन करते-करते यमुना के सुशीतल जल कणों को वहन करने वाली मृदु मन्द मलय पवन का सेवन करते-करते स्वच्छन्द विहार कर रहे हैं। यमुना के तीर एवं नीर की कैसी अपूर्व शोभा है। वृक्ष-लताओं पर विकसित राशि-राशि कुसुमों के सौरभ से दिगन्त आमोदित है। विविध पक्षियों के कलकूजन से एवं भ्रमरों की झंकार से वनभूमि मुखरित है। फल एवं कुसुमों के भार से अवनमित वृक्ष-लताओं की शाखा-प्रशाखा वनविहार में रत श्रीश्रीराधामाधव के श्रीचरणों का स्पर्श कर अंकुरोदगम के छल से पुलकित हो रही हैं एवं मधुधारा वर्षण के छल से अश्रुधारा मोचन कर रही हैं। हंस, सारस, चक्रवाक आदि यमुना के नीर में स्वच्छन्द विहार कर रहे हैं। उनके कलकूजन से यमुना का वक्ष मुखरित है। कमल, कहलार, कुसुम आदि पर मकरन्द-लुब्ध भ्रमर समूह झंकार कर रहे हैं। कुछ सखियाँ चारों ओर से पुष्पवर्षण एवं कुछ सखियाँ सुगन्धित अगुरु, मृगमद आदि से सुवासित जल सिंचन करते-करते चल रही हैं। श्रीश्रीराधामाधव के एक ओर विशाखा तो दूसरी चित्रा चल रही हैं जो चामर एवं वीजन के द्वारा उनके पारस्परिक दर्शनानन्छ के कारण सात्विक-विकार जनित धर्म-बिन्दुओं को विलुप्त कर रही हैं। श्रीराधामाधव तब लीलाविलास से भरकर पद विक्षेप करते हैं तब उनकी मणि-किंकणी एवं मणिमय नूपुर मधुर झंकार करते हैं। ललिता दोनों के श्रीमुख में ताम्बूल अर्पण कर रही हैं और वे दोनों आनन्द से उसे चर्वण करते हुए चल रहे हैं।

गौर-नील आलोक से यमुना तट उजलित है जैसे सौन्दर्य-माधुर्य का कल्लोलित सिन्धु हो।

यह छवि भावुक-भक्त की ध्यान-ध्येय है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि माधुर्य के रसिक भक्त वृन्द ध्यान या स्मरण में इस रूप रस आदि की अपरोक्ष अनुभूति लाभ करते हैं। प्रत्येक साधक को यथा सम्भव स्मरण या ध्यान का अभ्यास करना होगा कारण इसका फल अपरिसीम है। श्रीहरिभक्तिविलास से पद्म पुराण के वचन प्रस्तुत किए जा रहे हैं-

ध्यायन्ति पुरुषम् दिव्यमच्युतंच स्मरन्ति ये।
लभन्ति तेऽच्युतस्थानम् श्रुतिरेषा पुरातनी॥ (13/124)

अर्थात् "जो व्यक्ति दिव्य पुरुष अच्युत का ध्यान करते हैं, वे अच्युत स्थान प्राप्त करते हैं- यही प्राचीन श्रुति है।" इस श्लोक की टीका में श्रीमत् सनातन गोस्वामीपाद लिखते हैं- "ध्यायन्ति श्रीपादाब्जतलमारभ्य श्रीकेशाग्र पर्यन्त ततत्-सौन्दर्यादिसहितम् चिन्तयन्ति; अप्यर्थे चकारः, ध्यायन्तित्योतदस्तु, ये स्मरन्त्यपि-यथाकिंचित् भगवति मनः संयोजयन्ति, तेऽपि; एवं ध्यान-स्मरणयोरभेदः कल्पनीयः; ध्यायन्तीति स्मरन्तीति पृथक् प्रयोगात्।" तात्पर्य यह है कि, श्रीपाद पद्मों के तल से लेकर केशाग्र तक सौन्दर्य आदि का चिन्तन ही ध्यान है। उक्त श्लोक में "अच्युतंच" शब्द में जो 'च' कार है वह भी अर्थ में व्यवहृत है। अर्थात् स्मरण करने से अथवा श्रीभगवान् के संग यथा-कथंचित् मनः संयोग करने से अच्युत स्थान लाभ किया जाता है। इस स्थान पर ध्यान या स्मरण में कोई विशेष पार्थक्य नहीं है। स्मरण सामान्य होता है एवं ध्यान विशेष होता है, केवल इतना ही पार्थक्य है। अतएव विशेष भाव से या प्रगाढ़ मनः संयोग ही ध्यान है एवं यह ध्यान ही साधना की प्राण वस्तु है। ध्यान चतुर्विध है- रूप ध्यान, गुण-ध्यान, लीला-ध्यान एवं सेवा-ध्यान। रूप ध्यान की तरह ही गुण आदि ध्यान का प्रभाव भी अपरिसीम है।

श्रीपाद स्वरूपाविष्ट दशा में स्फुरण में सखियों के संग श्रीयुगल की यमुना तट विहार लीला का प्रत्यक्ष के समान ही आस्वादन कर रहे हैं। सुकुमार श्रीश्रीराधामाधव विहार करते-करते श्रान्त होकर माधवीमण्डप में रत्न वेदी पर बैठ गए हैं। श्रीचरण धूल-धूसरित हैं जैसे पराग से मण्डित

रक्त-कोकनद हो। श्रीपाद रूप मंजरी के रूप में श्रीयुगल के श्रीचरण मूल में बैठकर अपने सुकुंचित विपुल केशों को उन्मोचन कर उन केशों से श्रीचरणों की रज मार्जन कर रहे हैं। कितनी प्रगाढ़ अनुरागमयी प्रीति है। कोटि-कोटि प्राण निर्मन्छनीय हैं यह चरण; केशों से ही क्यों, प्राणों से मार्जन कर सकूं, ऐसा मन होता है। धन्य है दासी। यह सभी सेवा रस की मूर्तियाँ हैं। पाद मूल में बैठकर मुक्त केशपाश हाथों में लेकर श्रीचरणों को मार्जन करने के लिए हाथ बढ़ाया- किन्तु श्रीचरण प्राप्त नहीं हुए। स्फूर्ति में विराम आ गया। हृदय तीव्र वेदना से भर गया। आर्त-कण्ठ से प्रार्थना करने लगे-

तपनतनया-तटे केलीकुन्ज-वने।
स्वच्छन्द विहार करि युगलरतने॥
परिश्रान्त कलेवरे विश्राम करिते।
वसिवेन दूहूँजने माधवी तलेते॥
ब्रजरज-धूसरित चरण कमल।
विथारिया निजकेश उ पद युगल॥
पाद-पद्म-रजकणा करिव मार्जना।
श्रीरूप गोस्वामी करे एई त प्रार्थना॥47॥

परिमिलदुपवर्हम् पल्लवश्रेणिभिर्वाम्,
मदनसमरचर्ययाभारपर्य्याप्तमत्र।
मृदुभिरमलपुष्पैः कल्पयिष्यामि तल्पम्,
भ्रमरयुजि निकुन्जे हा कदा कुन्जराजौ?॥48॥

अन्वयः- (हे) कुन्जराजौ! हा (खेदे) अत्र भ्रमरयुजि निकुन्जे (भ्रमराणाम् युक् योगो यत्र एतद्दृशि कुन्जगेहे) मृदुभिः (कोमलैः) अमल पुष्पैः मदनसमरचर्य्याभारपर्याप्तम् (मदनसमरचर्य्याया भारे पर्य्याप्तम् तद्भारम् सहनक्षमम्) तल्पम् (तथा) पल्लवश्रेणीभिः परिमिलदुपवर्हम् (उपाधानम् अहम्) कदा कल्पयिष्यामि (रचयिष्यामि)?

अनुवादः- हे निकुन्जराज श्रीश्रीराधामाधव! मैं कब भ्रमर शोभित निकुन्ज में सुकोमल पुष्पों के द्वारा कन्दर्प युद्ध का भार सहन करने में सक्षम तुम्हारी कुसुम शैय्या एवं नव पल्लवों के द्वारा उपाधान रचना करुँगा?

मकरन्दकणा व्याख्या

कुसुम शैय्या-रचना:

श्रीपाद सेवा की प्रतीक्षा में बैठे हैं। इस प्रकार सेवा करुँगा- उस प्रकार सेवा करुँगा, सम्पूर्ण चित्त श्रीयुगल चरणों में समर्पित है। "कहाँ हैं तुम्हारे ब्रजरज धूसरित रातुल श्रीचरणकमल! क्या एक बार भी अपने केशों से उन श्रीचरणों को मार्जन करने का सौभाग्य नहीं पाऊँगा? श्रीपाद की आर्ति उत्कण्ठा की चरमता है। कुछ प्राप्त किए बिना क्या बचने का कोई उपाय है? श्रीश्रीराधामाधव अपने सौन्दर्य-माधुर्य से प्रिय भक्त के हृदय को उन्मादित कर प्रेम की केन्द्राभिमुखी शक्ति के बल से किस प्रकार अपने श्रीचरणारविन्द-मकरन्द की ओर आकर्षित करते हैं, किस प्रकार विश्व को भुला कर, विश्व की समस्त प्रलोभनीय वस्तुओं के प्रति आसक्ति का विनाश कर प्रेमिक हृदय को अपने भाव में तन्मय करते हैं- आचार्यपादगणों के चरित्र से यही शिक्षा प्राप्त करते हैं। जो कोटि प्राणों की अपेक्षा अधिक प्रिय हैं, उनका अभाव होने पर संसार की किसी भी वस्तु के प्रति भक्त की रूचि या आसक्ति नहीं रहती। प्रिय-विरहिणी स्त्री का प्रिय-विरह के कारण कब दिन बीत जाता है और कब रात्रि आ जाती है, वह समझ ही नहीं पाती, कारण पति-विरह में मन की एकतानता हो जाती है और फिर अन्य किसी विषय में विचरण के लिए मन असमर्थ हो जाता है। उसी प्रकार प्रेमिक भक्त भी श्रीभगवान् के विरह के कारण उनके चिन्तन में सदा तन्मय हो जाता है।

स्फूर्ति भंग हो जाने पर चित्त हाहाकार कर उठा था, आकुल प्राणों से प्रार्थना करने लगे था। पुन: स्फूर्ति हुई और प्राणों का संचार हुआ। पूर्व श्लोक में स्फूर्ति-प्राप्त वन विहार लीला का ही स्फुरण प्राप्त हुआ है। श्रीश्रीराधामाधव यमुना के तट पर मधुर माधवी लता के मूल में एक रत्न वेदिका पर विश्राम कर रहे हैं। सखियाँ वीजन, ताम्बूल दान आदि सेवाएँ कर रही हैं। सभी विचित्र परिहास रस में निमग्न हैं।

दुहूँ दिठि दुहूँ मुखे अवधि नाहिक सुखे,
पुलके पूरल दुहूँ तनु।
बेढल सखीर ठाट्, जैछन चाँदेर हाट,
तार माझे साजे राई कानु॥

दोंहार रूपेर छाँदे मदन पडिया काँदे,
सुधाकर किरण लुकाय।
दोंहार मुखेर वाणी, अमिया अधिक शुनि,
सखीगण श्रवण जुडाय॥
दोंहार माधुरी-गुणे, उलसित सखीगणे,
नानाफूले दोहाँके साजाय।
सुगन्धि चन्दन दिया, कर्पूर ताम्बूल लैया,
विशाखिका दोहाँरे जोगाय॥

(महाजन)

श्रीललिता के इंगित से श्रीपाद अपने सिद्ध स्वरूप से, निकट स्थित एक निभृत निकुंज में विलास शैय्या की रचना में नियुक्त हुए हैं। मधुप झंकृत कुंज है। द्वार पर द्वारपाल की तरह भ्रमर उपस्थित हैं; विरोधीजन को भीतर प्रवेश नहीं करने देंगे। द्वारदेश पर कुंकुम धर्षित रंग से श्रीकृष्ण की पूतना-वध आदि लीलाओं की छवि अंकित है। कुंज के भीतर श्रीश्रीराधामाधव की पूर्व राग की चित्रावली माला आदि से सुसज्जित है। सभी चित्र लीला रस के उद्दीपक हैं। श्रीपाद श्रीरूप मंजरी के रूप में वृन्त हीन कोमल कुसुमों के द्वारा युगल विलास की कुसुम शैय्या रचना कर रहे हैं। मृदुल पुष्पों की परत बिछाकर, उसके ऊपर पतली कोमल चादर बिछाकर कुसुमों को इस प्रकार व्यवस्थित कर रहे हैं कि वह शैय्या विलासी युगल के कन्दर्प-समर का भार सहन करने में सक्षम हो जाए। परमावेशमय कन्दर्प-समर में भी कुसुमों के अव्यवस्थित हो जाने की अब कोई सम्भावना नहीं है। यहाँ "मदनसमरचर्य्या" कहा गया है, जिसका अर्थ पारस्परिक सुखतात्पर्यमय विशुद्ध प्रेम विलास ही समझना होगा। श्रीश्रीराधामाधव अप्राकृत नायक-नायिका हैं। उनका विलास सच्चिदानन्द एवं प्रेम रस की परम तत्त्वमयी मिलन माधुरी है। यदि किंकरी-भाव न हो तो इसका मर्म समझना अत्यन्त कठिन है। शुकदेव मुनि ने कहा है- "प्राकृत काम नहीं, अप्राकृत नवीन मदन! जिनकी काम-कथा के श्रवण-कीर्तन से हृदय में गोपियों की आनुगत्यमयी सर्वोत्तम जातीय विशुद्ध परा शक्ति का संचार होता है, एवं काम रूपी हृदय रोग तुरन्त विनष्ट हो जाता है ("विक्रीडितम्" इत्यादि रास लीला के अन्तिम श्लोक दृष्टव्य हैं)।"

ब्रजवधु संगे कृष्णेर रासादि विलास।
जेइ इहा कहे शुने करिया विश्वास॥
हृदरोग काम तार तत्काले हय क्षय।
तिन-गुण-क्षोभ नाहि, महाधीर हय॥
उज्जवल मधुर-प्रेमभक्ति सेई पाय।
आनन्दे कृष्ण-माधुर्ये विहरे सदाय॥

(चै.च.)

श्रीरूप मंजरी वृन्तहीन पल्लवों के द्वारा एक उपाधान की रचना कर रही हैं। अपने मन के अनुसार कुसुम शैय्या रचना की है। निकुंज विलासी श्यामस्वामिनी के मधुमय विहार की परिपाटी मंजरियाँ ही समझती हैं। युगल का कैसा विहार होगा, उसका चित्र-सम्मुज्ज्वल भाव से इनके चित्त में प्रकट हो जाता है। धन्य है दासी- धन्य है इनकी सेवा। शैय्या की रचना हो गई है, अब माधवी मण्डप में आकर श्रीयुगल को शैय्या की ओर ले जाएँगी। कहती हैं- 'हे श्याम, हे स्वामिनी! बहुत देर तक वन भ्रमण कर परिश्रान्त हो गए हो, आओ, कुंज मन्दिर में थोड़ा विश्राम कर लो।' ऐसा कहकर, सखियों के इंगित से श्रीश्रीराधामाधव का हाथ पकड़ कर उन्हें कुंज के भीतर ले गईं। कुंज के भीतर ले जाकर श्रीयुगल को विलास शैय्या पर विराजमान कराया। युगल माधुर्य से कुंजग्रह झलमल कर उठा। सौन्दर्य जैसे झलक-झलक कर उत्सारित हो रहा हो। स्वरूपाविष्ट श्रीपाद श्रीश्रीराधामाधव को कुंजराज एवं कुंजेश्वरी के रूप में अनुभव कर रहे थे। सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। विपुल आर्ति से भरकर प्रार्थना करने लगे-

हे कुन्जराज हरि! ब्रजनील मणि।
हे कुन्जेश्वरी राधे! श्याम-विनोदिनी॥
वृन्दावने कुसुमित निकुन्ज कानने।
अनुक्षण मुखरित भ्रमर-गुंजने॥
सेइ त विलास-कुन्जे नव पल्लवेते।
विरचिव उपाधान विचित्र रूपेते॥
सुकोमल कुसुमेर करि आस्तरण।
(कबे) रचिब कुसुम शैय्या अति मनोरम?

कन्दर्प युद्धेर भार करिवे सहन।
केलितल्पे विलसिवे युगलरतन॥48॥
अलिद्युतिभिराहृतैर्मिहिरन्दिनीनिर्झरात्,
पुरः पुरटझर्झरी-परिभृतैः पयोभिर्मया।
निजप्रणयिभिर्जनैः सह विधास्यते वाम् कदा,
विलासशयनस्थयोरिह पदाम्बुजक्षालनम्?॥49॥

अन्वयः- इह (ब्रजे) निजप्रणयिभिर्जनैः सह मया पुरटझर्झरीषू (स्वर्णभृंगारकेषु) परिभृतैः मिहिरनन्दिनीनिर्झरात् अलिद्युतिभिः पयोभिः आहृतेः विलासशयनस्थयोः वाम् (युवयोः) पुरः पदाम्बुजक्षालनम् (मुखाम्बुजक्षालणस्याप्युपलक्षणमिदम्) कदा विधास्यते (करिष्यते)?

अनुवादः- हे श्रीराधामाधव! जब तुम विलास शैय्या पर विराजमान होंगे, तब तुम्हारे पादाम्बुज एवं मुखाम्बुज प्रक्षालन के लिए सखियों से परिवेष्टित होकर, भ्रमर-माला के समान कृष्ण वर्ण कालिन्दी के जल से स्वर्ण कलश को पूर्ण कर कब मैं तुम्हारे समक्ष लाऊँगी एवं तुम्हारे पादाम्बुज प्रक्षालन करुँगी?

मकरन्दकणा व्याख्या

पादाम्बुज-प्रक्षालनः

श्रीपाद का चित्त श्रीराधा किंकरित्व के अव्यभिचारी अभिमान से सतत भरपूर है। युगल सेवा की अनन्य प्रतीक्षा में चित्त व्याकुल है। एक बार लीला का स्फुरण होता है फिर स्फूर्ति में विराम आ जाता है- यही क्रम चल रहा है। एक अननुभूतपूर्व आनन्द-वेदना का आस्वादन चल रहा है। रस-स्वरूप श्रीकृष्ण का किस प्रकार मधुमय-भाव से आस्वादन किया जाता है, वही पथ रसिक-भक्तगणों ने प्रदर्शित किया है। उन्हीं की कृपा से प्रपंचगत भक्तवृन्दों की चित्त-वृत्ति में भी उस रस का आस्वादन उदित हो पाता है। प्रपंचातीत नित्य परिकर एवं प्रपंच स्थित सामाजिक भक्तगण दोनों ही अप्राकृत रस का आस्वादन करते हैं। नित्य परिकरगुणों का भाव स्वतः सिद्ध होता है अतः रसास्वादन के लिए उन्हें किसी उपदेश या ग्रन्थ श्रवण आदि की अपेक्षा नहीं होती किन्तु प्रपंच स्थित सामाजिक भक्तों की रस वासना तीव्र करने के लिए एवं रति की स्वच्छता के लिए संस्कार या साधन आदि की अपेक्षा रहती है।

क्योंकि रस वासना विहीन एवं संस्कार शून्य चित्त में रस का आस्वादन नहीं होता। 'न जायते रसास्वादम् विना रत्यादि वासनाम्।' नित्य परिकर श्रीपाद गोस्वामीगण के श्रीग्रन्थों की रस माधुरी के आस्वादन से साधकजीवन में रसास्वादन की उत्तम वासना या संस्कार गठित होंगे। उन्होंने स्वयं आस्वादन किया है एवं साधकों के लिए अपने रसोद्‌गार को श्लोक रूप में निबद्ध कर छोड़ दिया है।

प्रार्थना की तरंगों में डूबते-उतरते श्रीपाद के नयनों के सम्मुख मधुर लीला की छवि फूट उठी। पूर्व श्लोक की लीला का पुनः स्फुरण प्राप्त हुआ है। श्रीपाद श्रीराधामाधव को स्वहस्त-रचित विलास शैय्या पर ले गए हैं एवं उनकी शोभा दर्शन से विमोहित होकर उन्हें "कुंजराज" एवं कुंजेश्वरी के रूप में अनुभव कर रहे हैं। श्रीयुगल के चित्त में विलास-वासना का उद्रेक जानकर किंकश्रीरूप कुंज से बाहर गमन कर गईं। कैसी अपूर्व विलास-परिपाटी है-

रति-रसे मातल अतिशय नाह।
अमिया सरोवरे दुहूँ अवगाह॥
सहजे निरंकुश नागर-राज।
ताहे मनमथ नृप कौतुक काज॥
दृढ परिरम्भणे घन सीतकार।
अनुखन किंकणी करये फुकार॥
कर गहि राखि उ युग-चकेवा।
दंशइते सरसिज वारव केवा॥
कह हरि वल्लभ सहचरी-कुले।
देखई निभृते उलासहिं फुले॥

श्रीरूप मंजरी अन्य किंकरियों के संग कुंज रन्ध्रों पर नयन अर्पित कर श्रीयुगल के निरूपम मदन समर की रस माधुरी आस्वादन कर रही हैं। श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती लिखते हैं-

राधानागर-केलिसागर-निमग्नालीदृशाम् यत् सुखम्
नो तल्लेशलवायते भगवतः सर्वोऽपि सौख्योत्सवः।

तत्राशा यदि कस्यचिन्निरूपमाम् प्राप्तस्य भाग्यप्रियम्
तद् वृन्दावन नाम्नि धाम्नि परमे स्वीयम् वपुर्नस्यतु॥

(वृन्दावनमहिमामृतम्–1/54)

श्रीराधाश्यामसुन्दर के केलिसिन्धु मे निमग्न सखियों के नयनों को जो सुख प्राप्त होता है, श्रीभगवान् का समष्टिगत समस्त सुखोत्सव भी उस सुख का लवलेश–तुल्य भी नहीं है। इस अनुपम सौभाग्यश्री को प्राप्त करने की यदि किसी व्यक्ति की कामना है तो वह श्रीवृन्दावन नामक परम धाम का शीघ्र ही सर्वतोभाव से आश्रय ग्रहण करे। किंकरियों की नयन–शफरियाँ विलास रस सिन्धु में महासुख से सन्तरण करने लगीं। विलास का अवसान हो गया। रतिश्रम से परिश्रान्त श्रीराधाश्याम की श्रम–शिथिल देहलता केलि शैय्या पर विन्यस्त है! कैसी अपूर्व शोभा है!!

रति–रस–छरमे श्याम हिये शुतलि
शरद–इन्दु–मुखी वाला।
मरकत मदने कोई जनु पूजल
देह नव कांचन माला॥
श्याम–वयान पर वयान विराजई
उर पर कुच युग साजे।
कनक कुम्भ जनु उलटि वैसायल
मदन–महोदधि–माझे॥
जोडल तनु मन भुजे–भुजे बन्धन
अधरहिं अधर मिशान।
वेढल मृणाले हेम नीलमणि–जनु
बान्धल युग एक ठान॥
घन संगे दामिनी दुकूले दुकूल जनु
दुहूँ जन एक पटवास।
चरणे बेडिया चारू अरूण सरोरूह
मधुकर गोविन्द दास॥

सेवा का समय जानकर श्रीरूप मंजरी अपनी समप्राणा दो–तीन किंकरियों के संग, स्वर्ण–कलशों में भ्रमर–माला निन्दि कृष्ण वर्णा कालिन्दी का सुवासित

जल आहरण कर लाई हैं। श्रीचरण एवं श्रीमुख कमल आहरण कर लाई हैं। श्रीचरण एवं श्रीमुखकमल प्रक्षालन करेंगी। जल पूर्ण स्वर्ण कलश लेकर कुंज में प्रविष्ट हुई हैं। श्रीयुगल विलास शैय्या पर विराजमान हैं। स्वर्ण का हाथ में लेकर, श्रीचरण मूल में बैठकर, स्वर्ण कलश से जल लेकर श्रीचरणों को प्रक्षालन करने के निमित्त हस्त प्रसारण किए- कुछ प्राप्त नहीं हुआ। स्फूर्ति में विराम आ गया। आर्ति से भरकर प्रार्थना करने लगे-

हे नाथ! निकुन्जराज वृन्दावनचन्द्र।
हा राधिके! कुन्जेश्वरी! भानुकुलचन्द्र॥
प्रिय सखीगण संगे रस कुतूहले।
परम आनन्दे जाव कालिन्दीर जले॥
भ्रमरेर द्युति कालो कालिन्दीर जल।
पद्म-मकरन्दे सुवासित निरमल॥
सुमधुर वारि स्वर्ण भृंगारे भरिया।
विलास-शैय्यार पाशे राखिव धरिया॥
सेई जले दुहूँ पद करि प्रक्षालन।
मुख प्रक्षालिव कवे युगल रतन?॥49॥

लीलातल्पे कलितवपुषोर्व्यावहासीमनल्पाम्,
स्मितवा स्मित्वा जयकलनया कुवर्वतोः कौतुकाय।
मध्येकुन्जम् किमिह युवयोः कल्पयिष्याम्यधीशौ,
सन्ध्यारम्भे लधु लधु पदाम्भोजसम्वाहनानि?॥50॥

अन्वयः- (हे) अधीशौ! लीलातल्पे कलितवपुषोः (कृतद्युतकलहयोः) युवयोः सन्ध्यारम्भे (मिलनोपक्रमे जाते) मध्येकुन्जम् (अहम्) लधु लधु पदाम्भोजसम्वाहनानि किम् कल्पयिष्यामि? (कुन्जस्य मध्ये मध्येकुन्जमित्यव्ययीभावः 'पारे मध्ये षष्ठयावेति' सूत्रात्, युवयोः कीदृशयो इत्याह) स्मित्वा स्मित्वा जयकलनया कौतुकाय (विजयेच्छयाऽनल्पाम्) व्यवहासीम् (मिथः परिहासम्) कुर्वतो इत्यार्थः (व्यात्युक्षीवत् पदसिद्धिः)।

अनुवादः- हे नाथ श्रीकृष्ण! हे मदीश्वरी श्रीराधिके! संध्या के समय निकुंज में तुम विलास शैय्या पर विराजमान होंगे, तब तुम्हारी द्यूत-क्रीड़ा आरम्भ होगी और तुम दोनों ही जयेच्छु होकर हास-परिहास रस में निमग्न

होंगे, उस समय मैं तुम्हारे मृदु-मृदु पाद सम्वाहन करुँगी, ऐसा सौभाग्य क्या मेरा होगा?

मकरन्दकणा व्याख्या

पाशाक्रीड़ा-कौतुक:

श्रीपाद ने स्फूर्ति में विलास के अन्त में यमुना का सुनिर्मल जल आहरण कर श्रीश्रीयुगलकिशोर का श्रीमुख एवं श्रीचरण प्रक्षालन कराया है। रसिक भागवतगणों के आस्वादन के निमित्त श्रीपाद अपने स्फूर्ति के आस्वादन को काव्य के आकार में निबद्ध कर छोड़ गए हैं। श्रीरूप-रघुनाथ आदि गोस्वामी-पादगण प्रेमरस के मह शिल्पि हैं) एक ही उपादान स्वर्ण से जैसे हार, कुण्डल, कंगन आदि विभिन्न अलंकार बनाए जाते हैं- उन सभी में उपादानगत कोई भेद नहीं होता; उसी प्रकार एक ही प्रेम-रस से गठित नानाविध लीलाएँ श्रीपाद के चित्त में स्फुरित हो रही हैं, इन सभी लीलाओं में रसगत कोई भेद नहीं है अपितु लीला की वैचित्री प्रकाशित होती है। कारण उनके आराध्य देवता श्रीश्रीराधामाधव ज्ञानीगण के निर्विशेष ब्रह्म की तरह चिदेकरस वस्तु नहीं हैं, योगीगण के अन्तर्यामित्व गुण युक्त परमात्मा भी नहीं हैं, यहाँ तक कि ऐश्वर्य ज्ञान युक्त भक्तगणों के उपास्य, सतत षडविध ऐश्वर्य के विकासशील, श्रीमन् नारायण भी नहीं हैं, वे माधुर्य-रस-वारिधि, आनन्दघन लीला पुरुषोत्तम एवं अशेष रस कलानिधि हैं।

श्रीवृन्दावन ही निखिल काव्य-कला-कुंज-कानन है। अन्य किसी भी भगवद् धाम या लीला-राज्य में इस अप्राकृत मधुर रसकला का प्रकाश नहीं देखा जाता। वृन्दावन विहारी श्रीश्रीराधामाधव अप्राकृत नायक-नायिका हैं, रसधनविग्रह स्वयं भगवान् हैं एवं प्रेमरस की चरम निर्यास महाभाव की छवि हैं। इसीलिए उनका काव्य ही सर्वतोभाव से श्रेष्ठ होने के योग्य है। प्राकृत काव्य में जो रस को स्वीकार करते हैं, वे यदि स्थिर भाव से विचार करें तो सहज ही समझ पाएँगे कि प्राकृत नायक-नायिका की देह नशवर, परिणाम विरस, क्रिमी-कीट संकुल एवं वीभत्स रस की ही आश्रय है। श्रुति जिन्हें "रसो वै स:" "सर्वरस:" "रसानाम रसतम" कहकर कीर्तन करती है- वही स्वयं भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन एवं उन्हीं की आनन्दिनी शक्ति वरीयसी श्रीराधारानी ही श्रीरूप-रघुनाथ आदि गोस्वामीपादगण के रस काव्य के सुदिव्य

नायक-नायिका हैं। इसीलिए स्तव-माला, स्तवावली प्रभृति काव्य समूह भागवत परमहंसगणों के साधन सम्पद एवं परम आस्वाद्य हैं।

स्फूर्ति के विराम में श्रीपाद के चित्त में विपुल आलोड़न जग उठा। साक्षात् दर्शन एवं सेवा के अतिरिक्त प्राण रक्षा का अन्य कोई उपाय नहीं है। उसी समय पुनः स्फूर्ति हुई है। इस एक ही लीला में विभिन्न सेवाओं का स्फुरण प्राप्त कर रहे हैं। इस श्लोक में श्रीयुगल की परिहास रसमय पाशा-क्रीड़ा के समय युगल के श्रीचरण-सम्वाहन सेवा की स्फूर्ति हुई है।

लीलारस के आवेश में संध्या होने को है और सखियों के संग श्रीराधामाधव परिहास रस में ही मग्न हैं। किंकरियाँ ससखी श्रीयुगल की सेवा में निरत हैं। सखियों का इंगित पाकर श्रीवृन्दादेवी श्रीकृष्ण से कहती हैं- 'हे कमल नयन, तुम्हारी पाशा क्रीड़ा की निपुणता का हमें दर्शन कराओ।' श्रीश्रीराधाश्याम लीला वेदी पर आमने-सामने बैठे हैं। चारों ओर सखियाँ हैं। रूप मंजरी पाश- ले आई हैं। पण के रूप में वीणा एवं वेणु को सम्मुख रख दिया है। नान्दीमुख एवं वृन्दा साक्षी हैं। कुन्दलता द्यूत प्रवर्तिका हैं। पासा फैंक कर पहले हाथ खोलना होगा तभी खेल आरम्भ होगा। सत्राह दान या अन्य कुछेक दान प्राप्त हुए तभी हाथ खुलेगा। श्रीमती कहती हैं- 'सुन्दर! पहले तुम पासा फेंको।' श्यामसुन्दर पासा फेंकते हैं- हाथ नहीं खुला। सभी सखियाँ वस्त्र से मुख छिपाकर हंस रही हैं। पाश-क्रीड़ा की साक्षात् जयश्री श्रीमती राधारानी पासा हाथों में लेकर रगड़ रही हैं, मुख पर मृदुमन्द हंसी है- मानो श्यामसुन्दर के मन को ही रगड़ रही हैं। पहली ही बार में सत्रह दान प्राप्त किया है। आँखों ही आँखों में सखियों से बातें कर रही हैं। सखियाँ कह रही हैं- "तुम ही जातोगी, यह हम जानती हैं। अरे यह गवाला, धेनु की पीछे-पीछे हे-हे करके दौड़ता रहता है- अरे यह पासा खेलना क्या जाने।" क्रीड़ारसाविष्ट ज्येच्छु श्रीश्रीराधामाधव की कैसी शोभा। शोभासिन्धु जैसे उच्छ्वसित हो उठा है और उस शोभासिन्धु में सखी-मंजरियों की नयन-शफरियाँ सुख से सन्तरण कर रही हैं।

श्रीपाद रूप मंजरी के रूप में युगल के चरणामूल में बैठकर श्रीचरणों को वक्ष पर धारण कर मृदु-मृदु सम्वाहन कर रहे हैं। राधा माधुरी दर्शन कर श्याम विभोर हैं। श्याम का मुख-चन्द्र दर्शन कर स्वामिनी को भी विभ्रम हो

रहा है। बीच-बीच में चाल गोलमाल कर दे रही हैं। रूप मंजरी चरण-मूल में बैठे-बैठे ही इंगित से चाल बता देती हैं। विभ्रमवती को चाल बता कर विजय श्री दिला दी है। सखी मंजरियों में अपूर्व आनन्द की लहर दौड़ गई। हारने के संग-संग ही श्याम ने अपनी मुरली उठा ली है। पण लेने के लिए परस्पर कलह होने लगा। स्वामिनी ने श्याम के वक्ष के ऊपर गिरकर बलपूर्वक मुरली छीन ली है। श्याम नागर को ना जाने क्या हो गया था। रस का अपूर्व स्पर्श पाकर उनके हाथ शिथिल हो गए थे तभी स्वामिनी मुरली छीन पाई हैं। सखी-मंजरियाँ हंस-हंस कर लोट-पोट हो गई हैं। स्वरूपाविष्ट श्रीपाद श्रीचरण-सम्वाहन करते-करते अपूर्व कौतुक रस का आस्वादन कर रहे थे। सहसा स्फुरण में विराम आ गया। साधकावेश में उत्कण्ठा से भर कर प्रार्थना करने लगे-

निकुन्जे विलास-तल्पे दुहूँ सन्ध्याकाले।
द्यूत क्रीड़ा आरम्भिले प्रणयी-युगले॥
परस्पर जयाकांक्षी श्रीराधामाधवे।
हास्य-परिहास-रंगे कौतुक करिवे॥
हेन कि हइबे दिन सेई शुभ क्षणे।
मृदु-मृदु करिव कि पाद-सम्वाहने?
वृन्दावने वृक्षतले करिया क्रन्दन।
श्रीरूप गोस्वामी करे एई निवेदन॥50॥
प्रमदमदनयुद्धारम्भ - सम्भावुकाभ्याम्,
प्रमुदितहृदयाभ्याम् हन्त वृन्दावनेशो।
किमहमिह युवाभ्याम् पानलीलोन्मुखाभ्याम्,
चषकमुपहरिष्ये साधु माधवीकपूर्णम्॥51॥

अन्वय:- (हे) वृन्दावनेशौ! हन्त (इति खेदे) प्रमदमदनयुद्धारम्भ-सम्भाबुकाभ्याम् (प्रकृष्टो मद यत्र तस्य मदनयुद्धस्यारम्भे संभावुका-भ्यामतिकुशलाभ्याम्) प्रमुदित हृदयाभ्याम् पानलीलोन्मुखाभ्याम् युवाभ्याम् अहम् किम् इह (निकुन्जे) साधु माधवीकपूर्णम् चषकाम् (पानपात्रम् "चषकोऽस्त्री पानपात्रमित्यमर:") उपहरिष्ये (दास्यामि)?

अनुवाद:- हे वृन्दावन नाथ! हे वृन्दावनेश्वरि! इस निकुंज में विपुल स्मर विलास में दक्ष तुम दोनों विलास के आरम्भ से पूर्व मधुपान की इच्छा प्रकट करोगे तो क्या मैं मधुपूर्ण पान पात्र तुम्हें उपहार में देकर धन्य होऊँगी?

मकरन्दकणा व्याख्या

मधुपान-लीलाविनोद:

स्वरूपाविष्ट श्रीपाद ने पूर्व श्लोक में स्फुरण में पासाक्रीड़ा के समय श्रीश्रीराधामाधव की श्रीचरण-सम्वाहन सेवा का सौभाग्य प्राप्त किया था। स्फूर्ति के विराम में प्रार्थनाओं के तरंगाधात से श्रीपाद का प्रेमसिन्धु उच्छ्लित हो उठा। ब्रज की निगूढ़ प्रेम सम्पदा, जिसका गौर अवतार में वितरण हुआ है, उसी प्रेम साधना का चरम आदर्श श्रीपाद गोस्वामीगणों के चरित्र में अभिव्यक्त होता है। श्रीवृन्दावन की रहस्यमयी केलिवार्ता के प्रचार का भार विशेष रूप से रूप गोस्वामीपाद के प्रति ही अर्पित हुआ था।

वृन्दावनीयाम् रसकेलिवार्ताम् कालेन लुप्ताम् निजशक्तिमुत्का:।
संचार्य्य रूपे व्यतनोत् पुन: स प्रभुर्विधौ प्रगिव लोकसृष्टिम्॥

(चै.च.)

अर्थात् "श्रीभगवान् ने जिस प्रकार सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा में शक्ति का संचार कर लोक-सृष्टि का विस्तार किया था, उसी प्रकार श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ने उत्कण्ठित चित्त से श्रीरूप गोस्वामी में शक्ति का संचार कर, काल वश विलुप्त वृन्दावन सम्बन्धित रसकेलि वार्ता का पुन: विस्तार किया था।" महाप्रभु ने ब्रज के अति निगूढ़ रस प्रचार के विषय में श्रीरूप गोस्वमी में ही सर्वाधिक शक्ति का संचार किया था, वैसा स्वरूप-रामानन्द आदि में भी नहीं किया। कारण यह है कि किंकश्रीरूप-मंजरी के निकट श्रीराधा को कोई संकोच नहीं होता। स्वरूप-रामानन्द आदि सखियाँ हैं इसलिए उनके निकट वे सभी कुछ प्रकाशित नहीं कर पाती। श्रीरूप गोस्वामीपाद अपने ग्रन्थों में वही सब रस निर्यास निबद्ध कर छोड़ गए हैं एवं नित्य-सिद्ध होते हुए भी उसी रस की साधना कर उसका आदर्श प्रचार कर गए हैं।

श्रीपाद ने स्फूर्ति में स्वरूपावेश में श्रीश्रीराधामाधव के प्रेममकरन्द नि:स्यन्दी श्रीचरणारविन्दों को अपने वक्ष पर धारण कर सम्वाहन का सौभाग्य प्राप्त किया था किन्तु फिर उस रत्न के खो जाने से चित्त में विपुल हाहाकार

जाग उठा। जिन श्रीचरणों की स्मृति-मात्र हृदय में उदित होकर भक्त को प्रेमानन्द में उन्मादित कर देती है, श्रीपाद ने उन्हीं चरणों को हृदय पर धारण किया है और फिर खो दिया है, अतः अन्तहीन वेदना है। हृदय निष्पेषित है, श्रीयुगल के दर्शनों के अभाव में बच नहीं पाएँगे। उसी समय अमृत वर्षणकारी मधुमय लीला का स्फुरण चित्त में आनन्द उन्मादना ले आया। श्रीपाद ने श्रीयुगल की मधुर मधुपान लीला का स्फुरण प्राप्त किया है।

श्रीयुगल की पासा क्रीड़ा समाप्त हो गई है। उन्मादनामय स्मर विलास में पटु श्रीश्रीराधामाधव के हृदय में मधुपान की इच्छा उदित हुई जानकर, सखियों के इंगित से श्रीपाद ने रूप मंजश्रीरूप में मधु पूर्ण पान पात्र लाकर श्रीश्रीराधाकृष्ण के सम्मुख प्रस्तुत किए हैं। श्रीकृष्ण ने पान पात्र को ग्रहण किया और उसे प्रियतमा के मुखकमल के निकट ले जाकर कहते हैं- "हे प्रिय! पान करो।" श्रीमती ने लज्जा से नतमुखी होकर उस पात्र को श्रीकृष्ण के हाथ से ग्रहण कर लिया है। फिर सुधामुखी श्रीमती ने वसनांचल से अपना मुख आवृत कर मात्र एक बार उस मधु को आघ्राण किया एवं अपने अधर स्पर्श से उसे सुवासित कर पुनः उसे श्रीकृष्ण के हाथों में अर्पण कर दिया।

प्रियाटवीवृक्षलतोद्भवम् प्रियम्
प्रियाधरस्पर्श-सुसौरभम् मधु।
निजप्रियाली-परिहास-वासितम्
प्रियार्पितम् सस्पृहमापपौ प्रियः॥

(गोविन्दलीलामृतम्-14/87)

'यह मधु प्रियाटवी श्रीवृन्दावन की वृक्ष-लताओं से उत्पन्न हुआ है इसलिए प्रिय, प्रिया के अधर स्पर्श से सुरभित और प्रिय सखियों के परिहास-परिमल से सुवासित एवं श्रीराधा द्वारा अर्पित होने पर प्रियतम श्रीकृष्ण ने परम स्पृहा सहित उसे पान किया है।'

दयिता-गुणमेदुरेण तद्-दयितापाणि-तलेऽमुनार्पितम्।
दयिताधर-वासितम् पपौ, दयिताप्यम्शुकम्वृताननना॥

(वही-14/89)

"प्रियतम श्रीराधा के गुण से सातिशय स्निग्ध श्रीकृष्ण ने अपना वदन सुवासित मधु प्रियतमा के करकमलों में समर्पित किया तो श्रीराधा ने वसनांचल

से अपना वदन आवृत कर प्रियतम के मुख सुवासित मधु का पान किया।" श्रीश्रीराधामाधव मधुपान के लिए उत्सुक थे। रूप मंजरी रत्न-झारी से स्वर्ण पात्रों में और मधु लेकर उनके करकमलों में प्रदान कर रही थी- सहसा स्फूर्ति भंग हो गई। वेदना पूर्ण चित्त से प्रार्थना करने लगे-

उहे वृन्दावन नाथ! वृन्दावनेश्वरि!
कन्दर्प विलासे पटु किशोर-किशोरी॥
सुरत-समरारम्भे नवीन युगले।
मधुपाने दुहूँजन अभिलाषी हैले॥
दोंहार अग्रेते आनि मधुपूर्ण पात्र।
उपहार दिया कवे हइवे कृतार्थ॥
एतेक लालसा मने युगल-रतन।
एइ त प्रार्थना करे श्रीरूप चरण॥52॥
म्यूर-चंद्रिका-चारू कुसुम सकल।
धीरे धीरे धुचाइवे धरि अञ्चाबल॥
चूडा परिवर्ते वेणी रचना करिया।
विकच-कमल अग्रे दिव कि बाँधिया?॥53॥
कमलमुखी विलासैरंसयोः स्रमसितानाम्,
तुलित शिखिकलापम् कुन्तलानाम् कलापम्।
तव कवरतयाविर्भाव्य मोदात् कदाहम्,
विकचविचकिलानाम् मालयालंकरिष्ये?॥54॥

अन्वय:- (हे) कमलमुखि! (श्रीराधिके) अहम् कदा तव विलासैरंसयो: स्रंसितानाम् (विलासैर्हेतुभिरंसयो: स्कन्धो: स्रमसितानाम् स्खलितानाम्) तुलितशिखिकलापम् कुन्तलानाम् कलापम् (तुलिता: स्वसादृश्यम् नीता: शिखिकलापा: केकिपुच्छा येन तम् कुन्तलानाम् कलापम् वृन्दम्) कवरतयाविभाव्य (तस्य बन्धविशेषम् निर्म्माय) मोदात् विकचविचकिलानाम् (विकसित: मल्लीनाम् मलया अलंकरिष्ये? (तद्बन्धविशेषो: स्युर्वेणीधम्मिलकुन्तलकवर्य्य इति, मल्लिकाम् विचकिलामिति च हलायुद्धः:)।

अनुवाद:- अयि कमलमुखि! श्रीराधिके! स्मर विलास के कारण मयूर के पंखों के समान तुम्हारे केशकलाप स्कन्धावलम्बी हो जाएँगे तो कब मैं

पुनः कवरीबन्धन करुँगा एवं कब उस कबरी-भार को विकसित मल्लिका माला से सुशोभित करुँगा?

मकरन्दकणा व्याख्या

कवरीभार रचनाः

पूर्व श्लोक में श्रीपाद ने श्रीराधामाधव की प्रेमविलास विवर्त लीला में श्रीराधा के आदेश से श्रीकृष्ण का वेणी बन्धन किया था। स्वरूपाविष्ट श्रीपाद का चित्त-मन लीलारस मन्दाकिनी धारा में असीम की ओर बहता चला जा रहा है। लीला का ही कर्तत्व है, स्वयं का कुछ भी कर्तत्व नहीं है। स्वप्रकाश लीला माधुरी विरहातुर श्रीपाद के नयनों के सम्मुख छवि के समान प्रकट हो रही है। और फिर स्फूर्ति में विराम आ जाने पर वे आर्तनाथ-हाहाकार कर उठते हैं। यही क्रम चल रहा है। प्रार्थनारत श्रीपाद के वेदनातुर चित्त के समक्ष पूर्व की लीला का ही पुनः स्फुरण हुआ है।

पूर्व श्लोक में विलासमात्रैक-तन्मयता के कारण श्रीराधामाधव का "कौन रमण कौन रमणी"- यह अनुसन्धानराहित्य प्रकाशित हुआ था। यह प्रणय की चरम परिपक्वता का फल है। प्रणय में कान्त के मन, प्राण, देह, बुद्धि आदि के संग कान्ता के मन, प्राण, देह, बुद्धि में एक्य भावना जन्मती है। यह भागवत-एक्य है, वस्तुगत एक्य नहीं। अर्थात् यहाँ देह के भेद-राहित्य की बात नहीं कही गयी अपितु भाव के भेद-राहित्य की बात कही गई है। इसी से ही रमण के मन में रमणी का भाव एवं रमणी के मन में रमण का भावोदय हुआ था। धीरे-धीरे वह भाव शान्त हो गया। दोनों के मन में स्वयं का भाव अनुसन्धान जागरित हुआ। श्रीराधारानी की कृपा से किंकरी युगल के सभी मनोभाव समझती हैं। श्रीराधामाधव के मन का पर्दा इनके निकट खुल जाता है- कुछ भी गोपन नहीं रहता।

रूप मंजरी श्रीराधारानी के स्मर विलास से अस्त-व्यस्त केशपाश का संस्कार कर कवरी बन्धन करेंगी। सम्बोधन कर रहे हैं- "हे कमलमुखि! तत्कालिक मुख शोभा दर्शन करके ही यह सम्बोधन है। स्कन्धा पर फैले रतिमुक्त केशपाश अस्त-व्यस्त हैं। मुख-मण्डल जैसे शैवाल-मण्डित एक नवीन विकसित स्वर्ण-कमल हो। सौन्दर्य-माधुर्य के रस से ढल-ढल कर रहा है। वस्तुतः इस मुख-मण्डल की कोई तुलना नहीं हौ

चन्द्र कलंकी क्षयितातिविह्वल-
स्तत्पादधातैर्मलिनम् तथाम्बुजम्।
सुनिर्म्मलम् सन्ततपूर्णमण्डलम्
केनोपमेयम् वद राधिकाननम्?

(गोविन्दलीलामृतम्-11/93)

'चन्द्र कलंकित एवं यक्षा रोग से आक्रान्त एवं विह्वल है सो उसकी किरणों के संस्पर्श से पद्म भी मलिन हो जाता है, तब क्या सुनिर्मल एवं सर्वदा परिपूर्ण श्रीराधामुख मण्डल की उसके संग तुलना की जा सकती है? उस मुख रूपी स्वर्ण-कमल के चारों ओर रतिमुक्त केश-शैवालराशि की कैसी अपूर्व शोभा है! यह केश नहीं हैं अपितु श्रीराधा की मनोवृत्ति रूप लताकुंर समूह हैं जो श्रीकृष्ण भावना द्वारा कृष्णत्व प्राप्त कर एवं प्रेमसुधा से अभिषिक्त होकर, सूक्ष्म एवं आयत होकर, केश के छल से बहिर्भाग में निर्गत हुए हैं।'

राधामनोवृत्ति लतांकुरागताः
कृष्णस्य ये भावनया तदात्मताम्।
सूक्ष्मायता प्रेमसुधाभिषेकत-
स्ते निःसृताः केशमिशादवहिध्रुवम्॥ (वही-11/112)

श्रीरूप मंजरी देख रही है कि श्रीमती के स्कन्धावलम्बी रतिमुक्त अस्त-व्यस्त केश-पाश मयूर के पंखों के समान शोभायमान हैं। श्रील कविराज गोस्वामीपाद लिखते हैं-

विलासविस्तृस्तमवेक्ष्य राधिका-
श्रीकेशपाशम् निजपुच्छपिच्छयोः।
न्यक्कारमाशंक्य हियेव भेजिरे
गिरिम् चमर्य्यो विपिनम् शिखण्डिनः॥ (वही-116)

"विलास में अस्त-व्यस्त श्रीराधा के केशपाश देखकर अपनी पूंछ एवं पंखों के तिरस्कार की आशंका से अत्यन्त लज्जित होकर चमरीगण पर्वतों की ओर एवं सभी मयूर वन में प्रवेश कर गए।"

श्रीरूप मंजरी ने श्रीमती के विपुल संकुचित केशों को स्वर्णिम कंधी के द्वारा संस्कार कर कवरी भार रचना की है। कवरी बन्धन करने के बाद नवीन

विकसित प्रस्फुटित मल्लिका माला के द्वारा कवरी भार को अलंकृत किया है। स्फुरण है किन्तु फिर भी सेवा की प्रत्यक्ष के समान अनुभूति है। यह सेवा प्राप्ति ही श्रीमन्महाप्रभु का महादान है। यही पुरुषार्थ की चरम सीमा भी है। शास्त्र एवं महाजनगणों का कहना है– भगवत् प्रीति ही परमानन्द लाभ का एकमात्र उपाय है। इस प्रीति में भी फिर सभी प्रकार से उपाधि रहित ब्रजगोपियों की कृष्ण प्रीति सर्वश्रेष्ठ है। ब्रजगोपियाँ प्रबल अनुराग सिन्धु में निमज्जित रहती हैं। इसीलिए इनकी चरणरज के एक कण की प्राप्ति की आशा में उद्धव आदि महामनीषीगण भी ब्रज में तृण–गुल्म आदि के जन्म की प्रार्थना करते हैं। इन ब्रजगोपियों की आनुगत्यमयी उपासना प्रणाली के मध्य भी जो सर्वश्रेष्ठ है, सर्व पुरुषार्थ की चरम सीमा है– वही मंजरी भाव साधना ही श्रीमन्महाप्रभु का अवदान है। श्रीरूप–सनातन आदि गोस्वामीगण द्वारा वह प्रचारित हुआ है।

श्रीरूप मंजरी ने एक नवीन प्रस्फुटित मल्लिका माला का चयन किया एवं उसे कवरी भार में गूंथने के लिए हाथ बढ़ाया किन्तु कुछ हाथ नहीं लगा। स्फुरण में विराम आ गया। वेदनार्त हृदय से प्रार्थना करने लगे–

हे राधे! कमलमुखि! सुरत विलासे!
शिखि–पुच्छ तुल्य तुया श्रीकेश–कलापे॥
स्खलित हइया स्कन्धे पडिवे जखन।
पुनर्वार करिव कि कवरी बन्धन॥
मल्लिकार माला दिव सेइ कवरीते।
एइ त वासना मोर सदा उठे चित्ते॥54॥
मिथ:स्पर्धावद्धे वलवति वलत्यक्षकलहे
ब्रजेश त्वाम् जित्वा ब्रजयुवतिधम्मिलमणिना।
दृगन्तेन क्षिप्ताः पणमिह कुरंगम् तव कदा,
ग्रहीश्यामो वद्धा कलयति वयम् त्वत् प्रियगणे ?॥55॥

(हे) ब्रजेश! ब्रजयुवतिधम्मिलमणिना (अस्मत् स्वामिन्या श्रीराधाया) अक्षकलहे त्वाम् जित्वाः दृगन्तेन क्षिप्ताः (प्रेरिता) वयम् इह (अक्षकलहे) पणम् तव कुरंगम् (हरिणम् वद्धा कदा ग्रहीश्यामस्तत्प्रियगणे)

(मधुमंगलादिके) कलयति (पश्यति सति, अक्षकलहे कीदृशे) मिथः स्पर्धाबद्धे बलवति बलति मिथः स्पर्धायेशया बद्धे बलवति प्रबले बलति वर्धमानेत्यार्थः)।

हे ब्रजयुवराज! कुरंग को पण रख कर परस्पर तुम्हारे द्यूत-क्रीड़ा आरम्भ होगी एवं इस क्रीड़ा में ब्रज रमणी-शिरोमणि श्री राधिका तुम्हें पराजित कर देंगी तब वे तुम्हारे प्रिय सखा मधुमंगल आदि के निकट से तुम्हारे कुरंग को बांध कर हमारी ईश्वरी श्री राधिका के निकट उपस्थित करेंगी?

मकरन्दकणा व्याख्या

श्रीपाद को कवरी बन्धन सेवा का स्फुरण प्राप्त हुआ था। अब स्फूर्ति के अभाव से विरह में अधीर हो रहे हैं। राग यज्ञ के महा ऋत्विक-नित्य परिकर होते हुए भी राग-भक्ति साधना के महा साधक हैं। हा हा! प्राणेश्वरी! तुम्हारा वह कुन्तलभार कहाँ है? कब मैं कवरी बन्धन कर मल्लिका की माला से उसे अलंकृत करुँगी? सेवा के अभाव में श्रीपाद रो रो कर व्याकुल हैं। सेवा रस की साक्षात् मूर्ति हैं। देह, मन, प्राण, इन्द्रियाँ सभी सेवा रस से भरपूर हैं। श्रीराधाचरण अन्नत चिद्ज्योति की सिन्धु है और किंकरिया उस सिन्धु से उत्थित फेन राशि हैं। प्रेम-परिमल से वासित जैसे एक-एक प्रस्फुटित परिजात हो। इनके प्रेममय स्वरूप का एवं स्वभाव का इंगित देते हुए श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती पाद कहते हैं -

राधाकृष्णपदारविन्दकरन्दास्वाद-माद्यन्मनो-
भृगाः सन्ततमुगताश्रुपुलकास्ततप्रेम-तीव्रोधतः।
अत्यानन्दाकभरात् कदाप्यतिलय शोचन्त्य आत्मेशयोः
सेवायाविहतेः स्फुरन्तु मम ताः श्री राधिकाराधिका।।
स्वाप्राणद्वय-कार्यत्स्तत् इतो लोलाः कपोलस्थली-
वेंलत्-कांचनकुण्डलाः कटिरणत्कांची क्वणत्रुपूराः।
चूडामंजु-रणत्कृतैः सुमधुरा दिग् व्यापकागच्छटा
राधाकर्म्मकरीः सुहेमलतिकास्तन्वी किशोरी स्मर।।

(वृन्दावन महिमामृत- 61 81-82)

जिनके मनोभृंग श्रीश्रीराधाकृष्ण के पाद् पद्मों के मकरन्द आस्वादन में सदा मत्त रहते है, युगल प्रेम के तीव्र प्रवाह में जो निरन्तर अश्रु-पुलक

आदि से युक्त रहती हैं, परम आनन्दमय प्राणेश्वर-युगल से दूर होने पर सेवा में विघ्न पड़ने के कारण जो अनुताप करती हैं- वही श्रीराधा किंकरियाँ मेरे हृदय में स्फुरित हों।

निज प्राणेश्वर युगल के कार्य से इधर-उधर यातायात करने के कारण जिनके कपोलों पर स्वर्ण कुण्डल अति वेग से दोलन करते हैं, कटि देश की कांची एवं चरणों के नूपुर झंकृत होने लगते हैं-

चूड़ियों से मनोमद मधुर ध्वनि उठने लगती हैं- अंग कान्ति से दसों दिशाएँ आलोकित हो उठती हैं- इस प्रकार से सुन्दर एवं हेम लताओं के समान कृशांगी कि गोरी श्रीराधा-सेविकाओं का स्मरण करो।

पृथुकटितटशाटीविस्फुरत्किंकिणीका-,
श्चरणकमल शिंजनमंजु-मंजीर-शोभाः।
कुचमुकुल-विराजत्कंचुली-लोलहाराः
स्मरत कनकगौरी राधिकाकिंकरीस्ताः।।
मणिकनक-निवधानर्ध्य-मुक्ताद्यनासा,
बहुलचिकुरवेणीविस्फुरदरत्नगुच्छाः ।
अमित-कनकचन्द्रद्योत-सुस्मेरवक्त्रा
नवतरुणिमलीलाः कान्ति सम्मोहनांगीः।।"

(वही - 61 83-84)

स्थूल कटि-देश में साड़ी के ऊपर किंकिणी शोभायमान है, चरण कमलों में शब्दायमान मनोज्ञ नुपूर विराजमान है, कुच मुकुलों पर विराजित काँचुली पर दोलायमान हार समूह शोभा-अतिशय को धारण कर रहा हैं- इस प्रकार की स्वर्ण-गौरांगी श्रीराधादासीयों का स्मरण करो।

मणि-स्वर्ण आदि से उचित बहुमूल्य मुक्ताओं से उनकी नासिका शोभायमान है- घने केशों वाली वेणी में अनेक रत्नों के गुच्छे स्फूर्ति पा रहे हैं- अनुपम स्वर्णचन्द्र की ज्योति के समान मुख मण्डल सुमधुर मृदु हास्यालोक से उद्‌भासित है- एवं वे नव तारुण्य, लीला एवं कान्तिधारा से सम्मोहिनी मूर्ति धारणा कर रही हैं।

श्रीपाद ब्रज की नित्य सिद्धा रूप मंजरी हैं- इन सभी मंजरीगणों की अध्यक्षा। साधक आवेश में सेवा के अभाव में रुदन कर रहे थे। सहसा

स्फुरण प्राप्त हुआ। श्री युगल की पासा-क्रीड़ा का स्फुरण प्राप्त हुआ। श्रीश्रीराधामाधव पासा-क्रीड़ा में निरत हैं। श्रीराधा के पक्ष में वृंदा एवं श्री कृष्ण के पक्ष में नान्दीमुखी साक्षी हैं। कुन्दलता द्यूत-प्रवर्तिका है। श्रीकृष्ण के पक्ष में मधुमंगल एवं श्रीराधा के पक्ष में ललिता उपदेष्टा हैं और उनके निकट ही बैठे हैं। श्रीकृष्ण के हिरण सुरंग एवं श्रीराधा की हरिणी 'रंगिणी' को पण रख कर खेल प्रारम्भ हुआ।

राधामाधव, पाशा खेलत, करि कत विविध विधान।
दुँहूक वचन-रीति, केवल पीरित, दुँहू वररसिक-निधान।।
सखि हे! आजु नाहि आनन्द उर।
दुँहू दोहाँ रुप, नयन भरि पिवई, दुँहू किये चन्द्र चकोर।।
हातहि हात, लागत यव् खेलत, भावे अवश तव् देहा ।
आनन्द-सायरे, निमगन दुँहू मन, भूलल निज निज गेह।।

(पदकल्पतरु)

मूर्तिमति जयश्री श्रीराधा विजयी हुई हैं। किन्तु श्रीकृष्ण हार नहीं कर भी हार नहीं मान रहे हैं। वे ही विजयी हुए हैं कह कर स्पर्धा कर रहें हैं। दोनों पक्षों में रसमयी कलह हो रही है। राधा-पक्ष की सखियाँ कहती हैं- श्याम! तुम्हारे पक्ष की साक्षी नान्दीमुखी जो कहेगी, वही सभी को मान्य होगा।

नान्दीमुखी इषत् हास्य के साथ कहती है- श्याम! इस बार तो सचमुच तुम्हारी पराजय हुई है। यह श्रवण कर सब सखियाँ तालियाँ बजाते हुए उच्च हास्य करने लगी हैं। श्रीमती ने रूप मंजरी प्रभति दासियों को श्रीकृष्ण के हिरण सुरगं को लाने के लिए नयनों से इंगित किया हैं। श्रीरूप दो-तीन दासियों को संग ले कर मधुमंगल के निकट से ले आती है। सखियों के मन में कैसा आनन्द! सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। आर्तनाद के सहित प्रार्थना करने लगे-

हे ब्रजेश! पीतपास! दुहूँ करि रंग।
परस्परेर पण राखि आपन कुरंग।।
द्यूत क्रीड़ा आरम्भिले, राधा ठाकुराणी।
ब्रज-मण्डले सर्व कान्ता शिरोमणि।।
सुचातुर्ये पराभव करिया तोमाय।

इंगित करिले धनि आमरा सवाय।।
मधुमंगलादि हैते कुरंग तोमार।
बांधिया आनिव कि हे ब्रजेन्द्र कुमार?
सेइकृत कुरंगे राखि ईश्वरी चरणे।
कत मते सेवा करों बूझिया मरमे।।
सेवामृत-समुद्रेर तरंगेते स्नान।
दिवा निशि वान्छा करें श्रीरूप चरण।।
किम् भविश्यति फ्शुभः स वासरो, यत्र देवि नयनांचलेन माम्।।
गवितम् विहसितुम् नियोक्ष्यसे, द्यूतसंसदि विजित्य माधवम् ?।।56॥

(हे) देवि! (श्री राधिके!) स शुभवासरो किम् (में) भविश्यति? यत्र (वासरे) द्यूतसंसदि (भुजबलेन) गर्वितम् माधवम् विजित्य तम् विहसितुम् (त्वम्) नयनांचलेन माम् नियोक्ष्यसे (प्रवर्तसिश्यासि)।

हे देवी! श्री राधिके! क्या मेरा कभी ऐसा शुभ दिन होगा, जिस दिन तुम पासा क्रीड़ा में श्री कृष्ण को पराजित करोगी और अपनी भुजाओं के बल पर गर्व नयनों से इंगित करोगी?

मकरन्दाकणा व्याख्याः

श्रीपाद की स्फुरण धारा निरन्तर चल रही है। यह अवस्था कितनी आनन्दमयी है। साधक दशा में भी स्वयं को राधा-किंकरी ही समझ रहे हैं। देह-देहिकादि का आवेश राधारानी के सम्बन्ध का बाधक है। श्री गुरुदेव ने कृपा कर मंजरी स्वरूप का परिचय प्रदान किया किन्तु उस स्वरूप की बात तो मन में ही नहीं आती। निरन्तर देह-देहिकादि को ले कर मत्त हूँ। अधिकारी हुए। बिना अधिकार प्राप्त नहीं होता और यदि अनधिकारी को कृपा से सम्पत्ति प्राप्त हो भी जाए तो वह उसका भोग नहीं कर सकता, रक्षा भी नहीं कर सकता। मुझ जैसे जीव की ठीक यही अवस्था है। श्रीगुरु प्रदत्त सम्पत्ति को भाग्य दोश से हार बैठा। जिसके संग केवल एक दिन का भी परिचय होता है, उसे देखने की, उसके संग वार्तालाप करने कर इच्छा होती है और गुरुदेव ने जिनके चरणों में मुझे चिरकाल ही नहीं होती। आचार्यपाद गणों की वाणी का अनुवाद करने अर्थात् श्रवण, कीर्तन आदि करना भी उनके संग

बात करना ही है। स्मरण में उन्हें देखना, उनके संग बात करना भी कितना मधुर है। मैं ऐसे आस्वादनमय-मधुर भजनांग की अवहेलना कर रहा हूँ।

साधन-स्मरण-लीला, इहाते ना कर हेला,
कायमने करिया सुसार।

---- ---- ---- ---- ----

मनेर स्मरण प्राण मधुर मधुर धाम
युगल विलास स्मझ्रति सार।
साध्य साधन एई इहा पर आर नाई,
एई तत्व सर्व-विधि सार।।"

(प्रेम-भक्ति चन्द्रिका)

उत्कण्ठित श्रीपाद के नयनों के सम्मुख पूर्व श्लोक की पासा-क्रीड़ा लीला ही पुन: फूट उठी है। श्रीयुगल किशोर में परस्पर कौस्तुभ-मणि एवं स्यमन्तक को पण रख कर पुन: खेल आरम्भ हुआ है। पासा फेंकने के समय श्रीराधा के कक्ष एवं वक्षोज युगल की ऐसी सुधामा माधुरी तरंगायित हो उठी कि श्याम सुन्दर के नयन मन उस शोभा माधुर्य में डूब गए और फिर बस अभ्यास वश ही पासा-फेंकने का कार्य करने लगे। मूर्तिमति जयश्री श्रीराधा बार-बार 'दस दस' कहते हुए या फिर 'विदु विदु' कहते हुए पासा फेंकने लगी। श्री कृष्ण परिहास पूर्वक कहने लगे- प्रिय! तुम्हारी 'वित्ति' नामक गोटी पतित हुई है 'दस' पतित नहीं हुई। अत: बार-बार 'दस दस' (दंशन कर दंशन कर), इस प्रकार से प्रार्थना करना बड़ा ही हास्यापद है। अपनी मन चाही गोटी को काटने में कुशल श्रीराधा पुन: श्री कृष्ण को परास्त कर विजयी हुई हैं।

मृदु-स्वभाव होते हुए भी सखियाँ हास्य करते-करते नितान्त प्रखर भाव अवलम्बन करने लगीं। वे बटु मधुमंगल को सम्बोधित करते हुए कहने लगीं- अरे बटु! अब मुख नीचा कर क्यों खड़े हो? जलक्रीड़ा के समय हमारा पराभव देख कर तो बहुत ही-ही कर हंस रहे थे, नृत्य कर रहे थे, अब परिपाटी कहाँ गई? तब अपना वस्त्रांचल प्रसारित कर श्री कृष्ण से कह रहे थे- अरे कृष्ण! सभी के कंगन आदि अलंकार मुझे दे दो, मथुरा जा कर इन्हें विक्रय कर दूँगा एवं सितोपला ले आऊँगा।" हमारे अलंकारों को विक्रय

करने वाली यह भंगिमा अब कहाँ चली गई। सखियों सितपोला बटु को बहुत प्रिय है। अत: पर्वत शिखर से तुम सब कुछेक नव नव सितपोला (शुक्ला वर्ण के शिला खण्ड) ले आओ और इसके मस्तक पर अच्छे से वर्षण करो– और उसका स्वाद अनुभव कराओ।

इस प्रकार परिहास रस के कितने ही उत्स फूट उठे। श्रीराधारानी नयन–इंगित से श्रीरूप मंजरी को श्री कृष्ण से परिहास करने का आदेश दे रही हैं। रूप मंजरी श्रीकृष्ण से परिहास करते हुए कहती हैं– अरे! अब और पासा खेलने मत आना, तुम्हारे लिए गाय चराना ही अच्छा है। जहाँ देह–बल से जय होती हो वहीं जा कर खेलो। पासा–क्रीड़ा में बुद्धि की आवश्यकता पड़ती हैं, यह गो–चारण के समान नहीं है, और बक–वत्स बकी मारण के समान तुच्छ भी नहीं है– इसका नाम है, पासा–क्रीड़ा, यहाँ विद्वानों की परीक्षा होती है।" श्रीरूप मंजरी परिहास वाणी श्रवण कर श्रीमती सखियों के संग उच्च हास्य करने लगी। सभी एक स्वर में कहने लगीं– रूप तुम ठीक कह रही हो। श्याम सुन्दर अप्रतिभ हैं। श्रीरूप मंजरी के परिहास का सहसा कोई उत्तर नहीं खोज पा रहें। स्वामिनी के अभ्युदय पर सभी तन्मय हैं। तभी स्फुरण में विराम आ गया। व्याकुल प्राणों से प्रार्थना करने लगे–

हे देवी स्वामिनी! राधे! एई निकुन्जेते।
हेन कि हइवे दिन आमार भाग्येते।।
द्यूत क्रीड़ा विलासेते तुमि त गौरवे।
सुचातुर्ये पराभव करिया माधवे।।
परिहास करिवारे ब्रजेन्द्र कुमार।
इंगित करिया तुमि आज्ञा कर मोरे।।
द्यूतकेलि विलासेते यत विज्ञ हय।
बुद्धि बले जय करे बाहू बले नय।।
हेन वाक्य बलि मुई हास्या नागरे।
कबे वा आनन्द दान करीब तोमारे।।
किम् जनस्य भवितोस्य तद्दिनम्, यत्र नाथ मुहूरेनमादृत:।
त्वम् ब्रजेश्वरवयस्यनन्दिनी, मानभंगविधिमर्थयिश्यसे?।।57।।

(हे) नाथ! अस्य जनस्य तद्दिनम् किम् भविता (भावि)। यत्र (दिने) त्वमादृत: (कृतमत्सत्कार: सन्) ब्रजेश्वरवयस्यनन्दिनीमानभंगविकधि-मर्थयिश्यसे (ब्रजेश्वरवयस्यस्य वृशभानोर्नन्दिन्या: श्रीराधाया मानिन्या मानभंगविधिमेनम् मल्लक्षणम् जनमर्थयिश्यसे?

हे नाथ! श्री कृष्ण! क्या कभी मेरे ऐसा शुभ-दिन होगा, जिस दिन तुम मुझसे समादर पूर्वक वृषभानुनन्दिनी के मान भंग के लिए अनुनय करोगे?

मकरन्दकणा व्याख्या

प्रार्थना की उच्छलित तरंगों से श्रीपाद का हृदय सिन्धु आलोड़ित है। वेदना-स्पन्दित चित्त में रह रह कर प्रार्थना की शत-शत तरंगें उठ रही हैं। मर्म की प्रार्थनाएँ हैं। 'तुम्हारे उस परिहासमय रसमाधुर्य के राज्य में ले चलो'। राधामाधव के पारस्परिक आलाप की मधुर रागिनी श्रीपाद की चित्त-वीणा पर झंकृत हो उठी है। सहसा श्रीपाद के नयनों के सम्मुख और एक मधुर लीला की रंगीन छवि फूट उठी। स्वपाविष्ट श्रीपाद देख रहे हैं- खण्डिता श्रीराधा एक कुन्ज में बैठी हैं। प्रात: काल चन्द्रावली के संग सम्भोग-विलसित नायक की कुटिल नयनों से भर्त्सना कर रही हैं।

यामिनी जागि अलस-दिठि-पंकज
कामिनी-अधरक राग।
बान्धुली अरुण अधरे भेल काजर
भालोपरि अलकत दाग।।
माधव! दूर कर कपट सुलेह।
हातक कंगन किये दरपणे हेरि
चल तुहूँ ताकर गेह।।
सो स्मर-समरे सुधीर कलावती
रतिरणे विमुख ना भेल।
नखर कृपाणे हानि उर अन्तर
प्रेम-रतन हरि नेल।।
प्रेम-धन-हीन पुरुषे अव को धनी
जानि करव विषोयास।

गुण विनु हार साथी एक तुया हिये
दासेर गोविन्ददास।।

(पदकल्पतरु)

अनुरागी नायक ने नाना प्रकार से श्रीमती को सान्त्वना देने का प्रयास किया, किन्तु मानिनी का मन नहीं बदला। उन्होनें स्पष्ट ही कह दिया– दूसरों के मुख से मैंने अनेकों बार सुना था कि तुम बहू–वल्लभ हो किन्तु आज तो प्रत्यक्ष देख लिया। अब तो तुम्हें दूर से ही प्रणाम। आज मैं समझ गयी कि तुम मेरे नहीं हो। तुम्हारे लिए मैंने कुल, शील, धैर्य, स्वधर्म, स्वजन सभी कुछ छोड़ दिया। तुम्हारे ही इंगित से, मिलन के लिए मैं इस घोर वन में आई थी और तुम हो कि मेरी वंचना कर प्रभात के समय अन्य नायिका के भोग–चिह्न ले कर मेरे सम्मुख आए हो। आज से मेरे–तुम्हारे मध्य जो कुछ भी था वह समाप्त! दूर से ही तुम्हारे चरणों में कोटि–कोटि नमस्कार! जिसके पास जाने से तुम्हें आनन्द होता है– शीघ्र उसी के समीप चले जाओ।'

मानिनि! करजोड़े पुनः कहि तोय।
विनि अपराधे वाद देइ भामिनी
काहे उपेखसि मोय।।
तुया लागि सब निशि जागिया पोहाइलुँ
एकलि निकुन्जक माह।
तोहार वियोग हाम वन माहा लुठलुँ
तुहूँ रति-चिह्न कह ताह।।
गोकुल-मण्डले कतये कलावती
हाम नाहि पालटी नेहारी।
निशि दिशि तुया गुण भाविये एक मन
कि कहव कहई ना पारि।।
कोपे कमल मुखि कछु नाहि शुनसि
तुया निज किंकर हाम।
वंशीवदन अव कतये समुझायर
कोपिनी कामिनी ठाम।।"

(वही)

बहुत प्रकार से चेष्टाए करने के बाद भी श्याम सुन्दर सफल नहीं हो पा रहे थे। मानिनी का मान क्रमशः प्रबल होता चला जा रहा था। तब श्याम श्रीमती का मान भंग करने के निमित्त श्रीरूप मंजरी से अनुनय करते हैं। 'हे सुन्दरी, तुम प्रति क्षण श्रीराधा की अंग सेवा में नियुक्त रहती हो। तुम्हारी बात की या तुम्हारे अनुरोध की वे कभी भी उपेक्षा नहीं कर पाएँगी। हे परम सौहार्द्र गुणवती! मेरे हित के लिए तुम उन्हें प्रसन्न कर दो। मैं तुम्हारे शरणागत हूँ। श्याम सुन्दर की कातरता दर्शन का श्रीरूप मंजरी के निकट आ कर कहती हैं–

शुन शुन सुन्दरी राधे!
कानु संगे प्रेम करसि काहे वाधे।।
अनुखन यो जन तुया गुणे भोर।
तहूँ कैछे तेजवि ताकत कोर।।
निशि दिशि वयाने ना वोलाइ आन।
आन जन-वचने ना पातये का।।
तुया लागि तेजल गुरुजन-आश।
काहे लागि तुहूँ ताहे भेलि उदास।।
एछन सुपूरुष कतिहूँ ना देखि।
आपन दिव तोहे हरि ना उपेखि।।
ए सव वचने यदि राखव मान।
ना जानिये कैछे कठिन तुया प्राण।।
ज्ञान दास कह हित उपदेश।
एछन नायेक ना कर आवेश।।

श्रीरूप की प्रार्थना से श्रीमती का मान मन्दीभूत हो गया था। उनके मुख पर इषत् हास्य मंजरी विकसित हो उठी थी। 'यह लो तम्हारी प्रिया'–कहते हुए श्रीमती का हाथ पकड़ कर श्याम सुन्दर के हाथ में सौंपना चाह रहे थे कि सहसा स्फूर्ति में विराम आ गया। वेदनार्त प्राणों से प्रार्थना उमड़ उठी–

हे नाथ श्री गिरिधारी ब्रजेन्द्रकुमार।
आर कवे हेन दिन हइवे आमार।।

निकुन्जेते वृषभानुराजार नन्दिनी।
कुन्जेश्वरी श्री राधिका दुर्जन मानिनी।।
निज सखी मने करि तुमि समादरे।
कृपा करि आज्ञा दिवे मान भंग-तरे।।
तवे त हइवे मोर सुखरे उल्लास।
श्रीरूप गोस्वामी करे एई अभिलाष।।
त्वदादेशम् शारीकथितमहमाकर्ण्य मुदितो,
वसामि त्वत् कुण्डोपरि सखि विलम्बस्तव कथम्?
इतिदम् श्री दामस्वसरि मम् सन्देशकुसुमम्,
हरेति त्वम् दामोदर जनममुम् नोत्स्यसि कदा?।।58।।

अहम् शारीकथितम् त्वदादेशम् आकर्णय (श्रुत्वा) मुदितः (सन्) तत्कुण्ड़ोपरि वसामि, सखि! तव कथम् विलम्ब? इतीदम् (एवम्विधम्) मम सन्देश कुसुमम् श्री दाम्नः स्वसरि (भगिन्याम् श्रीराधायाम् श्रावयित्वा) हर (अत्र प्रापय) (हे दामोदर! इति (वचसा) त्वम् अमुम् (मल्लक्षणम् जनम्) कदा नोत्सयासि (प्रेरयिक्यसि)? हे राधे! सारिका के मुख से तुम्हारा आदेश श्रवण कर, मैं हृष्ट-चित्त हो तुम्हारे कुण्ड के तट पर आ कर बैठा हूँ। तुम्हें आने में इतना विलम्ब क्यों हो रहा हैं? मेरा यह संदेश कुसुम श्रीराधारानी को श्रवण करा कर उन्हें यहाँ ले आओ। हे दामोदर! यह बात कह कर तुम मुझे कब श्रीराधा-रानी के निकट प्रेरण करोगे?

मकरन्दकणा व्याख्या

पूर्व श्लोक में श्रीपाद ने स्फुरण में श्रीराधा का मान भंग करवाकर अपूर्व सेवा का सौभाग्य प्राप्त किया था। स्फूर्ति में विराम आने पर हृदय में विरह की तीव्र ज्वाला जल उठी। अभीष्ट चरणों में प्राणों की प्रार्थना निवेदन करने लगे। मंजरीभाव-साधना के मूल-आचार्य हैं श्रीपाद, इनकी प्रार्थना की परिपाटी से मंजरीभाव-साधक की सेवा-वासना का सौन्दर्य जाना जाता है। साधकगण को स्वरूप जाग्रत कर समझना होगा। मैं राधारानी की दासी हूँ यह चिन्तन ही कितना मधुर है। मथिक वृत्ति का उन्मेष! साक्षात् सेवा के लिए प्रार्थना भी अति निरूपम है।

अरुण कमलदले शेज बिछाइब
बसाइन किशोर किशोरी।
अलका-आवृत मुख पंकज मनोहर
मरकत श्याम हेम गौरी।।
प्राणेश्वरी! कवे मोरे हवे कृपादिठी।
आज्ञाय आनिया कवे विविध फुलवर
शुनिव वचन दुहुँ मिठि।।
मृगमद तिलक सिन्दूर वनावय
लेपव चन्दन गन्धे।
गाँथि मालती फूल हार पहिराउव
धावयाव मधुकरवृन्दे।।
ललिता कवे मोरे वीजन देयव
वीजव मारुतमन्दे।
श्रमजल सकल मिटव दुहुँ कलेवर
हेरव परम आनन्दे।।

(प्रार्थना)

जीवन भर गौड़ीया-वैष्णवगण की यही कामना रहती है। यही आकांक्षा हृदय में धारण कर यदि मर पाँए तो भी लाभ है। श्रीपाद स्फूर्ति के अभाव में क्रन्दन कर रहे थे, सहसा उनके भाव-नेत्रों के सम्मुख एक अभिनव लीला का स्फुरण उदित हुआ। स्वरूपाविष्ट श्रीपाद देख रहे हैं- मध्यसन्न के समय जावट में श्रीराधा श्री विशाखा के निकट श्याम सुन्दर के रूप, रस आदि से उनके पंचेद्रियों के आकर्षण की बात कह कर विलाप कर रही हैं। रन्ध्रन के निमित्त नन्दीश्वर गई थी, वहाँ प्रियतम के रूप गुण आदि की माधुरी का आस्वादन कर आई हैं और इस क्षण विरह-मन्दर के द्वारा महाभाव सिन्धु आलोड़ित है। विशाखा से कह रही हैं, रे सखि! कृण रूपामृत सिन्धु ताहार तरंग बिन्दु एक बिन्दु जगत डुबाय।

त्रिजगते यत नारी तार चित्त उच्च गिरि,
ताहा डुबाय आगे उठि धाय।।
कृष्णेर वचन माधुरी नाना रस-नर्म्मधारी

तार अन्याय कहन न जाय।
कृष्ण अंग सुशीतल, कि कहिव तार वल,
छटाय जिने कोटीन्दु चन्दन।
सषैल नारीर वक्ष ताहा आकर्शिते दक्ष
आकर्षिये नारीगण मन।।
कृष्णांग सौरभ्यभर, मृगमद मदहर,
नीलोत्परलेर हरे गर्व धन।
जगत-नासीर नासा तार भितरे करे वासा
नारीगणे करे आकर्षण।।
कृष्णेर अधरामृत ताते कर्पूर मन्दस्मित
स्वामाधुर्ये हरे नारीर मन।
छडाय अन्यत्र लोभ ना पाइले मने क्षोभ
व्रजनारीगणेर मलू धन।।

(चै: च:)

श्रीमती ने श्याम मिलन के लिए अधीर हो कर सूक्ष्मधी नामक सारिका को दूती बना कर श्रीश्यामसुन्दर के निकट प्रेरण कर रही हैं- जाओ सारिके! श्यामसुन्दर के निकट जा कर कहो, मैं अभी अपने कुण्ड-तट की ओर गमन कर रहीं हूँ, वे भी शीघ्र कुण्ड-तट की ओर आगमन करें। सूक्ष्मधी सारिका श्रीराधा की आज्ञा प्राप्त कर तुरन्त श्यामसुन्दर को सन्देश पहुँचाने के लिए निकल पड़ी। सारिका ने मानस-गंगा के तट पर श्यामसुन्दर को देखा। वे सखाओं के संग खेल में मत्त थे। सुचतुरा सारिका सहसा श्यामसुन्दर के कर-कमल पर जा कर बैठ गई। श्याम समझ गये कि सूक्ष्मघी अवश्य ही श्रीमती का कोई सन्देश लेकर आई है। अन्यथा वह इतनी उत्कण्ठित क्यों होती? श्याम सखाओं से दूर हटे तो सारिका ने श्याम को श्रीमती की संदेश-वार्ता श्रवण कराई। उसी क्षण श्याम ने सखाओं के संग वन-शोभा दर्शन का छल किया और श्रीराधा-कुण्ड के तट पर आ उपस्थित हुए।

इस ओर श्रीमती ने भी सखियों के संग श्याम-मिलन के लिए कुण्ड की ओर अभिसार किया। वन शोभा का दर्शन कर, श्याम का उद्दीपन होने से श्रीमती अवशांगी हो गई। चल ही नहीं पा रहीं। श्रीरूपमंजरी सदा श्रीमती के

संग छाया की तरह अवस्थान करती हैं, वे जानती है कि श्रीमती ने श्याम को शीघ्र कुण्ड-तट पर बुलाने के लिए सूक्ष्मघी नामक सारिका को श्याम के निकट दूती बना कर प्रेरण किया है। श्रीमती को अवशांगी देख कर रूप तुरन्त श्री कुण्ड के तट पर पहुँच जाती हैं, श्याम का श्रीमती की आगमन वार्ता कह कर धैर्य देने के लिए। रूप को देखते ही श्याम उत्कण्ठित हो कर श्रीमती की वार्ता जिज्ञासा करते है। श्रीरूप श्यामसुन्दर की उत्कण्ठा वर्धन के लिए कहती हैं- श्यामसुन्दर! तुम्हें सन्देश वार्ता प्रेरणा के पश्चात् वे श्रीकुण्ड की ओर अभिसार के निमित्त चलना ही चाहती थी किन्तु गुरुजनों द्वारा ग्रह में ही अवरुद्ध कर ली गई और यही वार्ता तुमसे कहने के लिए मुझे यहाँ प्रेरण किया है। आज उन्हें प्राप्त करने का कोई उपाय नहीं है। यह बात श्रवण कर श्याम सुन्दर श्रीराधा विरह में अधीर हो कर कहने लगे, रूप! मैं तो उन्हीं के आदेश से यहाँ आकर बैठा हूँ! वे इतना विलम्ब क्यों कर रही हैं? तुम मरे यह संदेश-वार्ता ले कर जाओ और शीघ्र ही किसी भी भाव से गुरुजनों की वंचना कर श्रीराधा को यहाँ ले आओ।" श्रीरूप भी श्याम को आश्वासन देकर शीघ्र श्रीमती के निकट जाती हैं एवं श्री कुण्ड-तट पर उनकी आगमन वार्ता बता कर, उनका संदेश-कुसुम उन्हें उपहार में देकर शीघ्र उन्हें श्री कुण्ड-तट पर ले आती हैं और उत्कण्ठित युगल का मिलन सम्पादन कराती हैं-

दुहुँ दोंहा मिलई बाहू पसारि।
दुहुँ सुखे मातल सव कुल-नारि।।
दुहुँ लइ वैठल बकुलक छाय।
अगोर चदं न केह देह दुहुँ गाय।।
दुहुँ पद-पंकज केह देह नीर।
केह केह वीजइ शीतल समीर।।
केह केह धोयल दुहुँ-मुख-चन्द।
लाजे मदन हेरि रहलहिं धन्द।।
दुहुँ अंगे विकसित विविध विकार।
मातल मनमथ लाज कि आर।।
दुहुँ मेलि बैठल निभृत निकुन्जे।
दुहुँ गुण गाय मधुकर पुन्जे।।

राधामाधव भेल एक ठाय।
दुहुँ मुख हेरई शेखर राय।।

(पदकल्पतरु)

सहसा श्रीपाद की स्फूर्ति में विराम आ गया। वेदना-जर्जरित प्राणों से प्रार्थना उठने लगी-

हे हरि श्री दामोदर ब्रजेन्द्रनन्दन।
शारि गिया तोमा' जाहा बलिवे वचन।।
तोमार निकटे आमि पुलकित भरे।
शीघ्र करिया जाव श्याम कुण्ड तीरे।।
राधिकार आगमने देखिया विलम्ब।
अतिशय उत्कण्ठाय तुमि त गोविन्द।।
आमाके त दूती करि राधार चरणे।
शीघ्र पाठाइवे करि विनय वचने।।
सन्देश-कुसुम लैया परम आनन्दे।
कवे वा जाइव आमि राधा पद द्वन्द्वे।।
शठोअयम् नावेक्ष्यः पुनरिह मया मानधनया,
विशन्तम् स्त्रीवेशम् सुबल सुहृदम् वारय गिरा।
इदन्ते साकुतम् वचनमवधार्य्योच्छलितधी-,
श्छलाटोपैर्गोपप्रवरमवरोत्स्यामि किमहम्?।।59।।

(हे श्रीराधिके!) 'शठोअयम् (श्रीकृष्णम) मानधनया मयानावेक्ष्यः (न वीक्षामि) स्त्रीवेशम् (सन्तम् मन्मन्दिरे) विशन्तम्, सुबलसुहृदम् (तम् छल) गिरा (त्वम्) वारय (निषेध), इदम् ते साश्तम् (सभिप्रायम्) वचन-मवधार्य्य (निश्चित्य) उच्छलितधीः (विवृद्धमतिः) अहम् छलाटोपैः (वंचनाड़म्बरैः वाक्यैः) गोपप्रवरम् (गोपालचूडामणिम् कृष्णम्) किम-वरोत्स्यामि ? हे श्रीराधिके !'उस शठ कृष्ण का मुख मैं अब नहीं देखूँगी, वह सुबल सखा श्रीकृष्ण स्त्री वेश धारण कर मेरे कुन्ज की ओर आ रहा है, तुम उसे निषेध करो'- तुम मानिनी हो कर इस प्रकार कहोगी तो तुम्हारा इंगित समझ कर गोप-प्रवर श्री कृष्ण को वंचना एवं आड़म्बर पूर्ण वाक्यों के द्वारा मैं कब निषेध करुँगी ? पूर्व श्लोक मे श्रीपाद स्फुरण में श्री कुण्ड-मिलन-लीला

की माधुरी आस्वादन कर रहे थे। स्फूर्ति में विराम आने पर विपुल आर्ति जाग्रत हो उठी। स्मृति की वेदना से चित्त अधीर हो उठा। तुम्हारे श्री चरण सान्निध्य रूपी सुधा-सिन्धु से किसी मरुस्थल में आ गिरा हूँ। श्रीयुगल के रूप-गुणी आदि की माधुरी चित्त में नवनवायमान रूप से उदित हो कर अन्तर में विपुल आलोड़न जगा रही है। श्रीपाद महाभाव-दशा में स्थित हैं। अनुराग एवासमोर्ध-चमतकारेणीन्दोमानको महाभावः- जिस अनुराग से संजात तृष्णा नित्य नव नव वैचित्री को उत्पन्न करती है, वही अनुराग ही किसी असमोर्ध चमत्कारिता को प्राप्त कर महाभाव हो जाता है। तेषाम् भावाप्तये लुब्धो भवेदत्राधिकारवान् (भः रः सिः-1/2/292)। इस जाति के भाव की प्राप्ति के निमित्त लुब्ध व्यक्ति ही रागानुगा भजन में रूचि होने से श्रीश्रीराधामाधव के रूप, गुण, लीला आदि का (श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि में) अनुभव या आस्वादन विशेष ही परिणत भजन है। इस भजन से ही नित्य सिद्ध मंजरी-गणों की सेवा परिपाटी बोधगम्य होती है। श्रीपाद की महावाणी के श्रवण कीर्तन से रूप-गुण आदि का अनुभव अवश्यम्भावी है। श्रीपाद के हृदय में तीव्र वेदना है, श्री युगल के चरण-सान्निध्य से विच्युत हो कर क्रन्दन कर रहे थे। उसी समय स्फुरण आ कर श्रीपाद के विरह विधुर चित्त को आस्वादन के अमृत राज्य में ले गया। प्रातःकाल अपराधी नायक अन्य नायिका के सम्भोग चिह्न लेकर कुन्ज में उपस्थित हुआ है, तभी दुर्जय मान है। श्याम की धृष्टता को देख कर सभी सखियाँ भी क्षुब्ध हैं। ललिता मान-शिक्षा दे कर दुखी मन से अन्य कुंज में जा बैठी हैं। नायक अनेक चेष्टाएँ करने के उपरान्त निराश हो गया है। श्रीमती ने अपराधी नायक को कुन्ज से प्रताड़ित कर दिया। श्रीमती ने प्रतिज्ञा की है- काली वस्तु मात्र का भी दर्शन नहीं करेंगी।

नील वसन-वर नीलचूड़ि कर,
पोतिक माल उतारि।
करि-रद चूड़ि कर, मोति मालवर,
पहिरण अरुणिम शाड़ि।।
असित चित्र कर उर पर आछिल,
मिटाइल चन्दन लागाई।
मृगमद-तिलक धोई दृगंचल,

कुच-मुख चन्दने छापाई।।
चारू चिबुक पर एक तिल आछिल,
निन्दि' मधुप-सुता-श्यामा।
तृण अग्रे करि' मलयजे रंजल,
सबहू छायायलि रामा।।
जलधर हेरि' चन्द्रातपे झाँपल,
श्यामरि सखि नाहि पाश।
तमाल-तरुगणे चूने लपेशयल,
शिखि पिकु दूरे निवास।।

---- ---- ---- ----

मधुकर डरे धनी चम्पक तरुतले
लोचने जल भरिपूर।
फ्याम चिकुर हेरि" मुकुर करे पटकल,
दूटि' में गेल शतचूर।।"

(पदकल्पतरु)

राधा विरह में कातर श्याम निरूपाय होकर, रमणी-वेश धारण कर श्रीमती के चित्त में रसान्तर जगा कर मान भंग करने की इच्छा से श्रीराधा के कुन्ज की ओर आ रहे थे। वेश तो परिवर्तन कर लिया किन्तु स्वभाव परिवर्तन नहीं कर पाए, अत: श्रीमती नयनों ने उन्हें तुरन्त पकड़ लिया। श्रीमती रूप मंजरी को इंगित कर कहती हैं- रूप यह देख, लम्पट नायक स्त्री वेश धारण कर इसी ओर आ रहा है। उसके वाक्यों में तो बहुत चाटुकारिता है, किन्तु अन्तस कुटिलता से भरा है। मान ही तो मेरा धन है, मान की रक्षा के निमित्त मैं उसे देखूँगी भी नहीं। अपनी सम्पत्ति की रक्षा करने का तो सभी प्रयत्न करते हैं। श्रीमती कहती है- 'मया मानधनया' मान हमारी सम्पत्ति है। सम्पत्ति रहने पर ही जैसे प्रियजन की सेवा हो पाती है, उसी प्रकार श्रीमती का मान कृष्ण-सेवा का एक श्रेष्ठ उपचार है। आपात दृष्टि से देखने पर मान, नायक-नायिका के लिए क्लेशकर अनुमित होने पर भी इसके फल स्वरूप प्रेम नव-नवायमान हो उठता है। प्रेम के प्रवाह को सरस, सवेग एवं अनिभव बनाए रखने के लिए ही मान का उद्‌भव होता है। मान पुरातन वस्तु को नूतन

कर देता है एवं प्रति नियत आस्वादित वस्तु को भी अभिनव माधुर्य से सुमधुर एवं प्रलोभनीय कर देता है। प्रेम के राज्य में "मान", सचमुच एक अपूर्व संजीवनी सुधा– एक अद्‌भुत इन्द्रजाल के समान है। श्रीमती इंगित कर कह रही हैं– रूप! वह सुबल का सखा है। सुबल भी तो स्त्री–वेश धारण कर हमारे गुरुजनों की वंचना करता है, यह विद्या निश्चय ही उसने सुबल से सीखी है। तुम वंचना–आड़म्बर पूर्ण वाक्यों से उसे यहाँ से प्रताड़ित कर दो। श्रीमती का इंगित जानकर रुप मंजरी से कहती है– ओ रे! दैत्यों को मोहित करने के लिए तुमने पूर्व में स्त्री–वेश (मोहिनी रूप) धारण किया था, यह हम जानती हैं किन्तु यहाँ कोई दैत्य नहीं है, यहाँ अति सुचतुर राधा–किंकरियाँ अवस्थान करती हैं। तुम्हारी इस कपट–विद्या यहाँ नहीं बिकेगी। हम तुम्हारे इस स्त्री–वेश के नाटक को पूर्ण रुप से समझ रहीं हैं। हे शठ! स्वामिनी के कुन्ज में प्रवेश करने का सोचना भी मत, जिसके कुन्ज में तुमने गत–रात्रि बिताई थी– यह मोहनविद्या ले कर उसी के कुन्ज में चले जाओ। यह कह कर रूप मंजरी उस गोपाल–चूड़ामणि को हाथ पकड़ कर निकुन्ज सीमा से बादर कर देंगी। हाथ पकड़ने के लिए अपना हाथ बढ़ाया– किन्तु कुछ प्राप्त नहीं हुआ। स्फूर्ति में विराम आ गया। आर्ति से भर कर प्रार्थना करने लगे–

हे श्री राधे! निकुन्जेते इइया मानिनी।
बलिबे 'गोविन्द मुख देखिब न आगि।।
सुबलेर प्रिय सखा मदनमोहन।
स्त्रीवेशेते धूर्त करे कुन्जे आगमन।।
शीघ्र करि शठ धृष्टे करे निवारण।
इंगिते बूझिया आमि तोमार मरम।।
गोपराज श्री गोविन्द कठोर वाक्येते।
निषेध करिब आमि कुन्जे प्रवेशित।।
कुन्जे वरी राधिकार एइ त निर्देश।
आदेश अमान्य करि न कर प्रवेश।।
एइ कुन्जे प्रवेशिले भाल त हवे ना।
हेथा न बिकाबे हरि शठेर छलना।।
सधापद-दासी भावे हैया गर्विनी।

एइ त प्रार्थना करे श्रीरूप-गोस्वामी।।
अधहर वलीवर्द्धः प्रेयान्नवस्तव यो ब्रजे,
वृषभवपुषा दैत्येनासौ बलादभियुज्यते।
इति किल मृषागीर्भिश्चन्द्रावलीनिलयस्थितम्,
वनभुवि कदा नेश्यामि त्वाम् मुकुन्द मदीश्वरीम्।।60।।

(हे) मुकुन्द! चन्द्रावलीनिलयस्थितम् त्वाम् मृषागीर्भिर्वनभुवि (स्थिताम्) मदीश्वरीम् (अहम्) कदा नेश्यामि? (कास्ता मृषागिरस्तत्राह, (हे) अधहर, तव प्रेयान यो नवो वलीवर्द्धः (वृषभः) असौ वृषभवपुषा दैत्येन वलादभियुज्यते (प्रहीयते, इत्येवम्विधा इत्यार्थः)। हे अधहर! श्रीवृन्दावन में वषभाकार कोई दैत्य आ कर तुम्हारे प्रिय नवीन वृषभों पर बड़ा अत्याचार कर रहा है, अतः तुम शीघ्र चल कर उसका प्रतिकार करो," हे, मुकुन्द! इस प्रकार मिथ्या वचन कह कर तुम्हें चन्द्रावली के कुन्ज से निकाल कर, मदीश्वरी श्रीराधा के निकट तुम्हें कब ले जाऊँगी?

मकरन्दकणा व्याख्या।

श्रीपाद ने स्फुरण में श्याम सुन्दर को निष्ठुर वाणी कह कर श्रीराधा के कुन्ज से प्रताड़ित कर दिया। जिन सच्चिदानन्दमय स्वयं भगवान् की अंग-कान्ति या अंश-विभव ब्रह्म एवं परमात्मा में अपनी चित्त-सत्ता को लीन कर देने के लिए योगीन्द्र-मुनीन्द्रगण युग-युगान्त तक सधाना करते हैं, जिनकी विलास मूर्ति या अंश कला स्वरूप श्री नारायण आदि भगवद्-स्वरूप की प्राप्ति की आशा में अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों के ऐश्वर्य-ज्ञान भक्तवृन्द जन्म-जन्मान्तर साधन-भजन या उपासना में अतिवाहित कर देते हैं- उन श्रीहरि को निष्ठुर वाक्यों द्वारा प्रताड़ित कर देने का अधिकार एकमात्र राधा-दास्य। तभी महानुभवगणों के हृदय की कामना होती है-

राधाकेलिनिकुन्जवीथिषु चरण राधाभिधामुच्चरन्
राधाया अनुरूपमेव परमम् धरमम् रसेनाचरन्।
राधायाश्चरणाम्बुजम् परियरन्ननोपचारैर्मुदा
कर्हि स्याम् श्रुतिशेखरोपरिश्चरन्नश्चर्य्यचर्य्याम् चरन्।।

(राधारससुधानिधि-139)

मैं श्रीराधा का नाम उच्चारण करते हुए, श्रीराधा के केलि कुन्ज के पथ पर विचरण करते–करते, रस सहित श्रीराधा के भजन–अनुरूप परमधर्म का आचरण करते–करते एवं विविध उपचारों के द्वारा आनन्दित मन से श्रीराधा के चरणाम्बुजों की परिचर्या करते करते कब आश्चर्य आचरण से वेद समूह के शीर्षदेश पर विचरण करुँगा? स्फूर्ति में विराम आ जाने से श्रीपाद का चित्त विरह–व्यथा से अधीर हो गया था। देखते–देखते स्फुरण में अन्य एक मधुर लीला की छवि नयनों के सम्मुख फूट उठी। दिवाभिसारिका श्रीराधा श्याम मिलन की तीव्र उत्कण्ठा में अनुरागिनी अभिसार को चली है। रूप मंजरी छाया के समान पीछे–पीछे है। एक स्निग्धा सखी के स्कन्धों का सहारा ले कर अपने सौन्दर्य–माधुर्य से वन पथ को आलोकित करती चली जा रहीं हैं।

धनि धनि वनि अभिसारे।
संगिनी रंगिनी प्रेम तरंगिणी
साजिल श्याम–विहारे।।
चलइते चरणेर संगे चलु मधुकर
मकरन्द पान–कि लोभ।
सौरभे उन्मत्त धरणी चुम्बये कत
याहाँ याहाँ पदचिह्न शोभे।।
कनकलता जिनि जिनि सौदामिनी
विधिर अवधि रूप साजे।
किंकिणी–रणरणि बंकराज धवनि
चलइते सुमधुर वाजे।।
हंसराज जिनि, गमन सुलावणि
अवलम्बन सखी काँधे।
अनन्त दासे भणे चललि निकुन्जवने
पूराइते श्याम–मन साधे।।"

(पदकल्पतरु)

श्रीमती संकेत कुन्ज में आकर देख रहीं हैं कि नागर अभी तक नहीं आए। नागराज श्रीराधा के कुन्ज की ओर ही आ रहे थे कि चन्द्रा की

सन्धान–चतुरा पदमा एवं शैव्या सखियों ने उन्हें पकड़ लिया और चन्द्रावली के कुन्ज में ले गई। इस ओर जब समय अतिक्रान्त हो गया तो श्रीमती उत्कण्ठा से अधीर होकर रुदन करने लगीं।

पंथ नेहारि वारि झरू लोचने।
अधर नीरस घन श्वास।
करतले वदन सघने अवलम्बई
गुणि गुणि जीवन नैराश।।
---- ---- ---- ----
हरि हरि बलि धरणी धरि उठई
बोलत गद गद भाख।
नील गगन हेरि श्याम भरम भरे
विहि सने मागये पाख।।
कि करव चन्द्र चन्दन धन लेपन
कि ायल कुसुम शयान।
आन वेयाधि आन पये उखद
गोविन्द दास नाहि मान।।

(वही)

स्वामिनी की असहनीय विरह व्यथा को देख कर रूप मजंरी ने स्वामिनी को सखियों के निकट छोड़ दिया और स्वयं श्यामसुन्दर के अन्वेक्षण को चल दीं। नाना वनों में, उपवनों में, कुन्जों में, पर्वतों की गुफाओं में अन्वेक्षण किया किन्तु कहीं भी खोज नहीं पाईं। अन्त में अधीर हो कर क्रन्दन करने लगीं– हा राधानाथ! राधारमण! एक बार दर्शन दो। तुम्हारे विरह के कारण तुम्हारीं प्राणप्रिया जीवन धारण करने में असमर्थ हो गई हैं। रूदन करते–करते सहसा मन में आया, एक बार चन्द्रा के कुन्ज में जा कर देखूँ तो।" सखी स्थली पर चन्द्रा के कुन्ज में जा कर देखती हैं– श्याम चन्द्रा के संग बैठे वार्तालाप कर रहे हैं। अब श्रीरूप चिन्तन करने लगीं कि किस प्रकार श्याम सुन्दर को यहाँ से श्रीमती के कुन्ज में ले जाया जाए। सहसा उनके मस्तक में एक विचार कौंधा। उन्होंने अतिशय भयाकुल नेत्रों से, हड़बड़ाते हुए कुन्ज के भीतर प्रवेश किया और आर्त कण्ठ से बोली– 'हे अधहर! चलो–चलो शीघ्र चलो–

तुम्हारे अति प्रिय नवीन वृषभ पर कंस द्वारा प्रेरित एक वृषभाकार असुर ने आक्रमण कर दिया है। चलो, चल कर उसकी रक्षा करो।' रसिकचूड़ामणि सब समझ गए– निश्चय ही उनकी प्रिया जी को विरह–असुर ने ग्ररा लिया है, अन्यथा राधा–किंकरी के मुख पर यह बात क्यों होती? वे भी हड़बड़ा कर शैय्या से उठ कर खड़े हो गए और बोले– प्रिये! अभी उस दुष्ट असुर का वध करके आता हूँ।' चन्द्रावली सरला हैं, इस गूढ़ कथा को समझने की सामर्थ उनमें नहीं है। वे बोली– ठीक है जाओ, किन्तु शीघ्र लौट कर आना। श्याम सुन्दर ने कहा– असुर का वध करने जा रहा हूँ, यदि वहाँ अन्य लोक जन का समागम हो गया तो शायद आज पुनः लौट कर न आ पाऊँ। तुम अधिक प्रतिक्षा न कर अपने घर को चली जाना– यह बात कह कर और अन्य किसी उत्तर की अपेक्षा न कर श्याम तत्क्षण रूप मंजरी के संग चले गए। पथ मध्य रूप उन्हें प्रताड़ित करने लगीं– लम्पट चूड़ामणि! स्वामिनी तुम्हारे विरह में मरणासन्न हैं। चलो आज सब बात उन्हें बता कर तुम्हें तुम्हारे कृत–कर्म को फल भोग करवाती हूँ। श्याम सुन्दर दोनों हाथ जोड़ कर रूप के निकट प्रार्थना कर रहे हैं– दुहाई है रूप, तुमने मुझे चन्द्रा के कुन्ज में पाया है, यह बात अपनी स्वामिनी से कभी मत कहना। तुम कहना– तुम्हारे कुन्ज का पथ ना पाकर, विरह में विवश हो कर मैं वन–वन में तुम्हारा ही अनुसन्धान करते हुए भटक रहा था, वहीं तुमने मुझे पाया है। रूप कहती हैं– यह बात कहते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आ रही! अभी चलो, वहीं जा कर देखना कि मैं उनसे क्या कहती हूँ और क्या नहीं कहती। सखी होकर भी दासी है, कितना मधुर निसंकोच भाव है! दास्य के सम्भ्रम–संकोच से मुक्त। माधुर्य के अन्तर्गत है यह दास्य। श्याम ने अपने चाटु वाक्यों से रूप को अपनी तरफ कर लिया है। रूप भी समझती है कि वे मुकुन्द हैं। स्वामिनी को विरह ज्वाला से मुक्ति प्रदान करने वाले हैं। स्वामिनी को एक ज्वाला के ऊपर और एक ज्वाला देना ठीक नहीं होगा। श्याम को आश्वासन दे कर स्वामिनी के कुन्ज में ले आई हैं। विरहणी के हाथ में श्याम को सौंप देना चाहती थीं– 'यह लो तुम्हारा प्रिय।' सहसा स्फुरण में विराम आ गया! आर्ति भरे हृदय में प्रार्थना जाग उठी–

हे श्री हरि! अधहर! ब्रजेन्द्रकुमार!
वृन्दावने कौन दैत्य वृषभ आकार।।
छल करि प्रवेशिया गोष्ठे अकस्मात्।
तोमार नवीन वृषे करे उत्पात्त।।
त्वरा करि तुमि तथा कर आगमन।
सेई वृषाकर दैत्य करह निधन।।
हे मुकुन्द! तोमा हेन बलि मिथ्या वाणी।
चन्द्रावली-कुन्ज हैते राधा-कुन्जे आनि।।
मदीश्वरी श्रीराधार विरह वेदना।
कवे वा करिब नाश करि ए प्रार्थना।।
निगिरतिः जगदुच्चैः सूचिभेद्ये तमिस्त्रे,
भ्रमर रूचि-निचोलेनांगमावृत्य दीप्तम्।
परिहृतमणिकांचीनूपुरायाः कदाहम्,
तव नवमभिसारम् कारयिश्यामि देवि?।।61।।

(हे) देवि! सूचिभेद्ये (अतिनिविड़े) तमिथस्त्रे (अन्धकारे) उच्चैः जगत निगिरति (सति) तव दीप्तम् (विद्युतप्रभम्) अंगम् भ्रमररूचिनिचोलेन (भ्रमररूचिना निचोलेन प्रच्छदेन, निचोलः प्रचछदपट इत्यमरः) आवृत्य नवमभिसारम् कदाहम् कारयिश्यामि? (तव किम्भूतायाः) परिहृतमणि-कांचीनूपुरायाः (सिंचितभयात् परिहृतानि त्यक्तानि मणिकांचीनूपुराणियया तस्या इत्यार्थः)।

हे देवी श्री राधिके, अति निविड़ अन्धकार से जगत के आच्छन्न हो जाने पर तुम्हारे नूपुर, मणिमय कांची आदि मुखर अलंकारों को अपसारित कर, भ्रमर कान्ति के समान कृष्ण-वर्ण के वस्त्रों से तुम्हारे विद्युत-कान्ति युक्त अंगों को आवृत कर मैं कब तुम्हें नवाभिसार कराऊँगी?

मकरन्दकणा व्याख्या।

श्रीपाद ने पूर्व श्लोक में स्वरूपविष्ट दशा में अलीक बातें कहते हुए श्रीश्रीयुगल किशोर की अपूर्व सेवा की है। श्रीराधा की किंकरियाँ श्री युगल के सेवा-सुख साधन के लिए कुछ भी कर सकती हैं। स्फूर्ति में विराम आ जाने पर अभीष्ट वस्तु के अनुभव के अभाव में चित्त में विक्षेप जागा है। जो

सिद्ध हैं उनके जीवन में उनकी अनुभूति के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का कुछ मूल्य नहीं है। स्फूर्तिगत आस्वादन एवं अनुभव परम्परा ही उनके जीवन का अवलम्बन है। श्रीपाद नित्य परिकर हैं अत: उनका स्वरूपावेश स्वाभविक है, कुछ भी कृतिमता नहीं है। प्रथमत: साधक को चेष्टा करनी होता है- अभ्यास एवं तीव्र साधना के फलस्वरूप अन्त में सभी कुछ स्वाभाविक हो जाता है। स्वाभाविक हो जाने पर समस्त चेष्टाएँ अभीष्ट चरणों में निबद्ध हो जाती हैं। स्फूर्ति में विराम आ जाने पर श्रीपाद रूदन कर रहे थे, जैसे अब देह में प्राण नहीं रह पाएँगे। तभी एक मधुर लीला का स्फुरण जागा। श्रीराधा के नवाभिसार का स्फुरण प्राप्त हुआ है। श्रीश्रीराधामाधव के पूर्व राग के बाद प्रथम मिलन है। श्रीरूप मंजरी जावट में श्रीराधा के निकट अवस्थान कर रही हैं। श्याम ने शुक्र पक्षी के द्वारा संकेत कुन्ज का संवाद भेजा है। ब्रज में रसमय परम पुरुष एवं उनकी आनन्दिनी शक्ति को लीला-वैचित्री से मुग्ध किए रखने के निमित्त अघटन-घटन-पटीयसी योग-माया की चातुरी का अन्त नहीं है। उस चिर-सनातन वस्तु का ब्रज लीला में प्रथम परिचय है, नूतन मिलन है। नव संगम से पूर्व राग है। दोनों ही परस्पर के प्रेम में मुग्ध हैं। दोनों ही परस्पर के भाव में विभोर हैं, दोनों परस्पर मिलन के निमित्त व्याकुल हैं। तीव्र उत्कण्ठा में दिन कट जाता है एवं तीव्र वेदना में रात्रि बीत जाती है। उस आकांक्षा, उस व्यथा को समझाने के लिए कोई भाषा नहीं है। श्रीरूप उत्कण्ठावती को अभिसार करवाएँगी। अमावस की रात्रि है। घोर अन्धकार है। स्वयं को स्वयं का हाथ भी नहीं दिख रहा। समस्त जगत तमसाच्छन्न है। श्रीमती अभिसार के लिए उत्सुक हैं। 'रूप! तू मुझे ले चल। तुझे छोड़ कर मेरी और गति नहीं।' श्रीरूप अनुरागीमयी को काले वस्त्रों एवं आभूषणों से सजा रही हैं। भ्रमर के समान कृष्ण वर्ण की साड़ी इत्यादि पहना रही है।

नीलिम मृगमदे तनु अनुलेपन
नीलिम हार उजोर।
नील वलयगणे भुजयुग मण्डित
पहिरण नील-निचोल।।
सुन्दरी हरि अभिसारक लागि।
नव अनुरोग गौरी भेली श्यामरी

कुहू यामिनी भय भागि।।
नील नलिनी जनु श्यामर सायरे
लखइ ना पारइ कोई।।
नील भ्रमरगण परिमले धावइ
चौदिक करत झकांर।
गोविन्द दास अतये अनुमानल-
राई चललि अभिसार।।

(पदकल्पतरु)

श्रीरूप मंजरी ने श्रीमती को नीले वस्त्रों एवं आभूषणों से सजा दिया है और मुखर अलंकारों को अर्थात् नूपुर-किंकणी आदि को अपसारित कर दिया है। श्रीमती भयभीत हैं। हृदय कम्पायमान है। नि:शब्द पद-निक्षेप करते हुए रूप के स्कन्धों का सहारा ले कर चलते-चलते संकेत-कुन्ज के द्वार पर आ पहुंची हैं। उत्कण्ठित नायक कुन्ज के भीतर हैं सो कुन्ज के भीतर प्रवेश नहीं करना चाहती। रूप से कहती हैं- मुझे यहाँ क्यों ले आई, मुझे घर ले चल। श्रीरूप मुग्धा श्रीमती से कहती हैं-

धुन शुन ए धनि वचन विशेष।
आजु हाम देयव तोहे उपदेश।।
पहिलहिं वैठवि शयनक सीम।
हेरइते पिया मुख मोडवि गीम।।
परशिते दुहूँ करे ठेलबि पाणि।
मौन रहवि पहूँ पुछइते वाणि।।
यव हाम सोपव करे कर आपि।
साधसे उलटि धरवि मोहे काँपि।।
विद्यापति कह इह रस-ठाट।
काम गुरु होई शिखायब पाठ।।

(वही)

श्रीमती को समझा-बुझा कर रूप उनका हाथ पकड़ कर उन्हें कुन्ज के भीतर ले गई। उत्कण्ठित नायक नायिकामणि के दर्शन कर आनन्द सागर में

डूब गए। दोनों ही के अंगों से कितनी-कितनी भाव तरंगें प्रकाशित होने लगीं। रूप श्रीमती का हाथ पकड़ कर नागर से कहती हैं-

थरहरि काँपये गदगद भाष।
लाजे वचन नाहि करे परकाश।।
शनु शनु कानु करये धनी भीत।
कवहूँ ना जानइ सुरतकि रीत।।
तहूँ होयरि चन्दन सम शीत।
तोहे सोपँल इह बाल चरित।।
रभस करबि बुझि विदगध राय।
जैछने सुकुमारी दुख नाहि पाय।।

(वही)

यह बात कह कर रूप, स्वामिनी को श्याम के हाथों में सौंप देने के लिए उद्यत हुई किन्तु कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। स्फुरण में विराम आ गया। विपुल आर्ति के सहित प्रार्थना करने लगे-

हे श्री राधे! विनोदिनि! बलिगो तोमारे।
अन्धकार रजनीते नव अभिसारे।।
मणिमय नूपुरादि मुखर-भूषण।
अंग हैते दूर करि करिया यतन।।
कृष्ण वर्ण-पट्-शाटी भ्रमर-वरण।
तोमार अंगेते दिव करि आवरण।।
अभिसार कराइव कृष्ण-प्रियतमा।
श्रीरूप-गोस्वामी करे एइ-त प्रार्थना।।61।।
आस्ये देव्याः कथमपि मुदा न्यस्तमास्यात्वेश,
क्षिप्तम् पर्णे प्रणयजनितादेवि वाम्यात्वयाग्रे।
आकूतज्ञस्तदतिनिभृतम् चविर्वतम् खविर्वतांग,-
स्ताम्बूलीयम् रसयति जनः फूल्लरोमा कदायम्?।।62।।

(हे नाथो!) तत्ताम्बूलीयम् चर्वितमयम् खविर्वतांगः (ह्रस्वी तावयवः) जनः फुल्लरोमा (सन्) निभृतम् (गुप्तम् यथा स्यात्तथा) कदा रसयति (आस्वादयिश्यति) (कीदृशी ताम्बूलीयम् चविर्वतमित्यापेक्षायामाह हे) ईश!

(ब्रजनाथ) आस्यात् (निजमुख्यात) देव्या: (श्रीराधाया) आस्यो (मुखे) त्वया मुदा (प्रीत्या) कदा कथमपि (अत्याग्रहेण) न्यस्तम् (अर्पितम्, हे) देवि (श्री राधे) त्वया (तु नाहम् त्वदुच्छिष्टमद्मीति) प्रणयजनितात् वाम्यात् (हेतोरास्यात्) अग्रे पर्णे क्षिप्तम्।

हे नाथ श्रीकृष्ण! तुम अपने मुख से चर्वित ताम्बूल श्रीराधा के मुख में अर्पण करोगे, हे देवी श्री राधिके! तुम प्रणय-कोप वश तुम्हारा उच्छिष्ट नहीं खाऊँगी कह कर उसे एक पत्र पर निक्षेप कर दोगी। उस समय तुम्हारा अभिप्राय: समझ कर, कुंचित देह से एवं रोमांचित कलेवर से तुम दोनों का प्रसादी ताम्बूल मैं कब भक्षण करुँगी?

मकरन्दकणा व्याख्या

श्रीपाद ने स्वरूपाविष्ट दशा में स्फुरण में मुग्धा नायिका श्रीमती को नवाभिसार करवा कर यत्न सहित मिलन सम्पादन करवाया है। यद्यपि यह स्फूर्ति है किन्तु फिर भी साक्षात्कार के समान ही सेवा-रस की एवं युगल माधुरी की सुस्पष्ट अनुभूति है। श्री भगवान् परम सत्य स्वरूप, आनन्द स्वरूप एवं रस-स्वरुप हैं- "रसो वै स:" "सत्यम् ज्ञानमानन्दम् ब्रह्म" (श्रुति)। उनकी स्वरूप शक्ति की वृत्ति भक्ति भी सत्य स्वरूपा एवं आनन्दधन रूपा है। अत: श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि का आस्वादन एवं प्रभाव भी कम नहीं है। प्रतिष्ठान पुर के स्मरण निष्ठ ब्राह्मण के हाथ की अंगुली मानसी सेवा में पकाई खीर से ही दग्ध हो गई थी- यह सर्वजन विजानित कथा है। रागानुगा साधक का लोभ जब राग पथ पर परिचालित हो इष्ट-विषय को केन्द्रीभूत कर लेता है, तब वह सपरिकर श्रीकृष्ण के रूप, गुण, लीला आदि का अनुभव प्राप्त करता है एवं आस्वाद विशेष को मूर्त कर लेता है। अत: प्रयत्नशील साधक अन्य विषयों के चिन्तन से मन को विरत कर केवल इष्ट विषयक चिन्तन में निबद्ध करने की चेष्टा करेंगे। प्रथमत: अति लघु एवं सहज साध्य इष्ट विषय के स्मरण द्वारा मन को विषय-वासनाओं से शून्य करना होगा, एवं उसके उपरान्त क्रमोन्नत प्रणाली से धीरे-धीरे अग्रसर होकर गम्भीर से गम्भीरतर इष्ट विषयों के स्मरण एवं चिन्तन द्वारा चित्त को एकाग्र या तदगत करना होगा। यही गौड़ीया-वैष्णवों का भजन नैपुण्य है। प्रार्थना की तरंगों में भासमान उत्कण्ठित श्रीपाद के समक्ष एक मधुर लीला का

स्फुरण हुआ है। श्रीरूप मंजरी ने अपने बुद्धि-कौशल से गुरुजनों की प्रबल बाधा का अतिक्रम कर, श्रीराधारानी का कुन्ज में उत्कण्ठित नागर के संग मिलन कराया है। दासी के गुणों से स्वामिनी के प्राण विगलित हो गए हैं। श्याम के निकट किंकश्रीरूप के बुद्धि-चातुर्य की शत-मुखों से प्रशंसा कर रही है स्वामिनी। श्रीरूप युगल की ताम्बूल-दान, व्यंजन आदि सेवाओं में निरत है। स्वामिनी के मुख से निज प्रशंसा श्रवण कर संकुचित हो रही है। दासी के गुणों पर युगल मुग्ध हैं। दोनों ही मन में भावना कर हैं- दासी को कुछ पुरस्कार प्राप्त कर राधा किंकरी प्रसन्न होगी। रसिकेन्द्रमौली श्याम ने श्रीरूप द्वारा अर्पित ताम्बूल चवर्ण करते-करते, प्रीति से भर कर एवं परम आग्रह से श्रीमती का चिबुक पकड़ कर ताम्बूल उनके मुख में अर्पित कर दिया। श्रीमती ने 'शत् कामुकी का उच्छिष्ट-तुम्हारा अधरामृत मैं नहीं खाऊँगी' कहा और कान्त के मुख कमल की ओर एक विलोल कटाक्षपात करते हुए, सेवा परायणा किंकरी श्रीरूप के मुख की ओर करुणार्द्र करते हुए, नयनों से देखते हुए कुन्ज के भीतर पड़े एक गलित पत्र पर उस ताम्बूल को निक्षेप कर दिया। मुख एवं नासिका को इस प्रकार कुंचित किया जैसे बहुत घृणा के साथ फेंक रही हों। यह रसमय अपूर्व उपहार प्रेम के साथ किंकरी को देना चाहती है। जैसे मधुर रस की सेवा, वैसा ही मधुर रस के अन्तर्गत भाव से किंकरी का अभिप्सित श्रेष्ठतम उपहार!! ऐसा कहा गया है कि जब शर-शैय्या पर पड़े भीष्मदेव ने पिपासित होने पर जल पीने की इच्छा व्यक्त की तो दुर्योधन स्वर्ण की ले आया और उसने रत्न-स्वर्ण के पान पात्र से उन्हें जल पान कराना चाहा था। किन्तु वह सब उनकी अवस्था के अनुरूप नहीं था सो भीष्म देव को तृप्ति नहीं हुई। उसके उपरान्त अर्जुन ने भूमि पर बाण निक्षेप कर पाताल-गगंश की निर्मल जल धारा जब उनके मुख में प्रदान की तो उनकी दशा के अनुरूप जल प्राप्त कर वे प्रसन्न हो गए थे। उसी प्रकार किंकश्रीरूप रस अनुरूप लीला के माध्यम से अपना आकांक्षित उपहार प्राप्त कर आनन्द से आत्माहार हो गई। पुलकित एवं कुंचित कलेश्वर से श्रीरूप ने युगल प्रसादी ताम्बूल लेकर भक्षण किया। धन्य राधा-दास्य! धन्य-धन्य राधा दासी!! सौभाग्यवती किंकरी युगल का अपूर्व प्रसाद प्राप्त कर कृतार्थ हुई है। किंकरी के सौभाग्य एवं गर्व का अन्त नहीं है। प्रसादी ताम्बूल का

आस्वादन कर रसानन्द में देह–मन विभोर हो रहा था। सहसा स्फुरण में विराम आ गया। हाहाकार करते हुए प्रार्थना करने लगे–

हे कृष्ण! करुणासिन्धु! रसिक शेखर।
प्रणिर लालसा बलि तोमार गोचर।।
चर्वित ताम्बूल तुमि निज मुख हैते।
प्रियार मुखेते दिवे परम प्रीतिते।।
हे देवि! श्री राधिके! आमार ईश्वरी।
प्रणय–कोपेते तुमि बाह्य छल करि।।
'तोमार उच्छिष्ट हरि! आर खाइब ना।'
एत बलि मुख हैते कृष्ण प्रियतमा।।
पत्र मध्ये निक्षेपिवे चर्वित ताम्बूल।
से प्रसाद मोर भाग्ये हबे अनूकुल।।
तोमार मरम बूझि इईया कुंचित।
पुलकित कलेवरे से महासम्पद।।
युगल प्रसाद कबे करिब भक्षण।
त्रिभुवने अद्बितीय परम रतन?।।

परस्परमपश्यतोः प्रणयमानिनोर्वाम् कदा,
धृतोत्कलिकयोरपि स्वमभिरक्षतोराग्रहम्।
द्वयोः स्मितमुदचंये नुदसि किम् मुकुन्दामुना,
दृगन्तनटनेन मामुपरमेत्यलीकोक्तभिः?।।63।।

(हे स्वामिनो) वाम् (युवयोः) द्वयो कदाहम् स्मितमुदचंये (जनयिश्यामि, द्वयोः कीदृशयोः) प्रणयमानिनोः (निर्हेतुक मानवतोः, अतः) धृतोत्कलिकयोरपि (दर्शनाय सोत्कण्ठयोरपि) स्वमभिरक्षतोवाग्रहम् (स्वकीयमाग्रहम् पालयतोः) परस्परमपश्यतोः। (ननु केनोपायेननो स्मितमुदंचयिश्यसीति चत्तेत्राह–हे) मुकुन्द! अमुना दृगन्तनटनेन किम् माम् नुदसि (प्रेरयसि, मानिनीयम् तव प्रार्थनाम् न स्वीकरोतीति, तस्मात्त्वम्) उपरमेत्यलीकोक्तिभिः (विरमेत्य–लीकोक्तिभिर्मृषावागभिरित्यार्थः)।

हे नाथ श्रीकृष्ण! हे मदीश्वरी श्री राधिके! तुम दोनों परस्पर मान कर लोगे और परस्पर के दर्शनों के निमित्त उत्कण्ठित होते हुए भी निज–निज

आग्रह की रक्षा हेतु परस्पर के प्रति देखोगे भी नहीं, उस समय 'हे कृष्ण! बार-बार तुम मेरे प्रति क्या इंगित कर रहे हो, स्वामिनी मानिनी है (तुम्हारी प्रार्थना नहीं सुनेगी'- इस प्रकार की अलीक उक्ति के द्वारा कब तुम दोनों को हास्यान्वित करुँगी?

मकरन्दकणा व्याख्या

श्रीपाद ने स्वरूपावेश में श्रीश्रीराधामाधव का उच्छिष्ट ताम्बूल लाभ किया है- एक अपूर्व सरस लीला के माध्यम से स्फूर्ति में विराम आ जाने पर चित्त विरह-व्याकुल हो उठा। श्रीयुगल की करुणा से अन्य एक मधुर लीला का स्फुरण प्राप्त हुआ है। स्वरूपाविष्ट दशा में देख रहे हैं- वसन्त वन। श्रीवृन्दावन की कैसी अपूर्व शोभा है! वृक्ष लताओं पर राशि-राशि कुसुम विकसित हो कर अपनी परिमल से दसों दिशाओं को आमोदित कर रहे हैं। सौरभ से आकृष्ट हो कर मधुकर श्रेणी पुष्प-पुष्प पर सरस झंकार कर रही है। मधुर कोमल स्वर से आलाप करती कोकिलाओं के पंचम तान ने सभी का चित्त उन्मादित कर दिया है। पक्षी-कुल के कल कूजन से, मयूर के नृत्य से, चमरी, हिरण, खरगोश आदि पशुगण के इधर-उधर स्वच्छन्द विहार से स्वभाव सुन्दर वृन्दावन की नैसर्गिक शोभा का कैसा अपूर्व उच्छलन है। मृदु मन्द मलय-पवन स्थावर जंगम के प्राणों में पुलक जगाते हुए, नृत्य करते हुए चल रहीं है। ऐसी अपूर्व नैसर्गिक शोभा के परिवेश में, एक निकुन्ज मन्दिर में श्रीश्रीराधामाधव एक रत्नासन पर उपविष्ट हैं। रूप-छटा से कुन्ज कुटीर आलोकित है। निर्जन कुन्जभवन है- सखी-मजंरीगण में से कोई भी उपस्थित नहीं है। श्रीराधाश्याम परस्पर मधुर रसालाप में निरत हैं। श्रीरूप मंजरी चामर-व्यंजन करते-करते युगल के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध माधुरी के सरोवर में सन्तरण कर रही है। देखते-देखते एक अपूर्व घटना घटी। विलसित युगल के भाव-सिन्धु में एक अभिनव रस-तरंग उदित हुई। परस्पर की श्री अंग-छवि परस्पर को मरकत-स्वर्णवर्ण उज्ज्वल अंग कान्ति में प्रतिफल हुई देख कर, अन्य नायक-नायिका ज्ञान से दोनों में ही मान की तरंग उदित हो गई।

ए सखि! अद्‌भुत प्रेम तरंग।
दुहूँ अदरशे दुहूँ अति से वियाकुल

दरशने ऐछन रंग।।
मरकत-कनक मुकर जिनि दुहूँ तनु
दुहूँ छाह हेरि दुहूँ अंगे।
दुहूँ जन देखि' हृदय द्विधा उपजल
दुहूँ बैठल मुख बंके।।

(पदकल्पतरु)

श्रीमती मन में सोचती हैं- 'नायक अन्य नायिका को गोद में लिए बैठी है' और श्याम सोचते हैं- 'राधा अन्य नायक के संग बैठी हैं।' दोनों ही परस्पर से मुख मोड़ कर बैठ गए हैं। प्रणयमान या अकारण मान है। प्रणय की ही परिणति है मान। प्रणय ही मान का उत्तम पद है। सर्प के समान प्रेम की स्वभाव कुटिल गति होती है तभी कारण अकारण मान का उदय होता है। ऐसा कहा गया है- 'प्रेमेर बुके सदाई अभिमान। प्रेम चाय डोलआना प्राण'।।

अस्य प्रणय एव स्यान्मानस्य पदमुत्तमम् ।
अहेरिव गतिः प्रेम्नः स्वभावकुटिला भवेत्।
अतोहेतोरहेतो च शूनोर्मान उदंचति।।

कुछ देर पश्चात् दोनों ही अपनी भ्रान्ति समझ गए। परस्पर के संग बात करने के लिए या मिलन के निमित्त दोनों ही उत्कण्ठित हो गए। किन्तु दोनों ही सोचने लगे- यदि वह पहले बात नहीं करेगा तो मैं भी नहीं करुंगी। अपने-अपने आग्रह की रक्षा के लिए दोनों ही नीख अवस्थान करने लगे। जिद में आ कर अपने अपने गौरव की रक्षा के लिए कोई भी पहले बात नहीं करना चाहता। मिलन के अभाव में उत्कण्ठा की अतिशयता के कारण हृदय निष्पेषित हो रहा है। रूप मंजरी के मन में एक उपाय उद्‌भासित हुआ। सहसा रूप श्याम को लक्ष्य कर एक अलीक बात कहने लगी- तुम नयनों के इंगित से मुझे क्या कहना चाहते हो, स्वामिनी मानिनी हैं वे तुम्हारे संग बात नहीं करेंगी। मैं तुम्हारे लिए उनसे कोई अनुरोध नहीं कर सकती। यह बात सुनते ही दोनों ने मन में सोचा- हो गया! दोनों ही परस्पर का मुख दर्शन कर मुस्कुराने लगे। स्वामिनी ने कहा- यह तो तुमने पहले बात की। श्याम ने कहा- तुमने पहले बात की है, मैंने तुम्हारी दासी को नयनों के इंगित से कुछ भी नहीं कहा। वह मिथ्या वचन कह रही है। श्रीमती- तुम ही मिथ्या वचन

कहने में अभ्यस्त हो, मेरी दासी झूठ बोलना जानती ही नहीं। फिर दोनों सरस मधुर आलाप करने लगे। रूप मंजरी ने अलीक उक्ति द्वारा एक अपूर्व सेवा की है। धन्य है उसका सेवा-नैपुण्य। धन्य किंकरी। युगल का मर्म जान कर सेवा की है। स्वयं के मन के अनुसार सेवा करने से नहीं होगा- उनकी मनोमत्त सेवा करनी होगी। जिन्होंने उनके मन को जान लिया है उनका आनुगत्य करना होगा। साक्षात् सेवा-अधिकारिणी नित्य किंकरियाँ भी यह सिखाने के लिए व्याकुल हैं कि किस प्रकार से सेवा करनी है। मिथ्या वचनों से सत्य का सुख साधन किया है। यह मिथ्या ही सत्य का सार है। श्रीमन् महाप्रभु के श्री अंग सेवक श्रीगोविन्द दास को महाप्रभु के सेवा सुख के निमित्त उन परब्रह्म श्री भगवान् को लांघने में भी किसी द्विधा का बोध नहीं हुआ था। श्रीपाद ने अलीक उक्ति के द्वारा दोनों का मिलन सम्पादन कराया है। सहसा स्फुरण में विराम आ गया। साधक-आवेश में प्रार्थना करने लगे-

अयि देवि! श्री राधिके! आमार ईश्वरी।
हे नाथ! श्रीकृष्णचन्द्र! गिरिवरधारी।।
कुन्जग्रहे दोंहे करि अकारण-मान।
परस्पर दरशने उत्कण्ठा समान।।
आपन गौरव रक्षा करिवार तरे।
देखिते आग्रह नाइ दुहूँ दोहाँकारे।।
हेनकाले बलो मुई मदनमोहने।
'कटाक्ष करिया केन चाह मोर पाने।।
मानमयी श्री राधिका तोमार कथाय।
कर्णपात करिवे ना जानि अभिप्राय।।
एछन अलीक वाक्ये युगल-किशोरे।
हास्य युक्त करिव कि निकुन्ज मन्दिरे?"।।
कदाप्यवसरः स मे किमु भविश्यति स्वामिनौ,
जनोअयमनुरागतः पृथुनि यत्र कुन्जोदरे।
त्वया सह तवालिके विविधवर्णगन्धद्रवै,-
चिरम् विरचायिश्यति प्रकटपत्रवल्लीश्रियम्?।।64।।

(हे) स्वामिनौ ! सोऽवसरः (क्षणः "अवसरो-वत्सरे क्षणे इति हैमः") किम् मे कदापि भविश्यति ? यत्र (अवसरे) पृथुनि (महति) कुन्जोदरे अयम् जनो विविधवर्णगन्धद्रवैः (पीतनीलरक्तश्वेतः गन्धद्रवैश्चतुःसमकर्द्मैः करणैः) त्वया सह तवालिके (द्वौ प्रत्युक्तम्, त्वया स्वामिन्या सह स्वामिनस्तवालिके, त्वया स्वामिन्या सह स्वामिन्यास्तवालिके) प्रकट पत्र-वल्लीश्रियमनुरागतः चिरम् विरचयिश्यति (करिश्यति)।

हे नाथ श्रीकृष्ण! हे मदीश्वरी श्री राधिके! क्या मेरे जीवन में कभी ऐसा शुभ-क्षण आएगा, जिस क्षण मैं निकुन्ज के भीतर नाना वर्णो के गन्ध-द्रव्यों के द्वारा तुम्हारे ललाट-फलक पर पत्रावली रचना कर परम सम्पादन करुँगी ?

मकरन्दकणा व्याख्या

श्रीपाद ने पूर्व श्लोक में जिस सेवारस का आस्वादन प्राप्त किया था उस सेवानन्द से चित्त भरपूर हो गया था। स्फूर्ति के विराम से हाहाकार जाग उठा। 'हा श्रीराधामाधव! तुम कहाँ हो! तुम्हारी मनोमत्त दासी नहीं बन सकी। सेवा से च्युत होकर किसी मरुभूमि में आ गिरी हूँ। एक बार करुणा कर श्री चरण-सान्निध्य में ले चलो। कहाँ है वह दिव्य विचित्र रत्न-लतिकाओं की आनन्दमय पुष्पश्री! कहाँ है तुम्हारी सेवा की वह दिव्य उपकरण राशि!! जिन कुन्जों में तुम विहार कर रहे थे, उन कुन्जों के निकट यदि तरुलता बन पाऊँ तो फिर तुम्हारी विरह-वेदना और भोग न करनी पड़ती। सतत तुम्हारा संग लाभ कर धन्य हो पाती। विपुल उत्कण्ठा से श्रीपाद रोदन-सागर में निमज्जित हैं! अद्‌भुत विरह-वेदना एवं आनन्द के घात-प्रतिघात से किसी अनिर्वचनीय दशा को प्राप्त हो रहे हैं। श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती ने इस दशा को विश्व-मधुर दशा कह कर उल्लेख किया है-

कृष्णप्रेम-सुधाम्बुधावतितराम् मग्नः सदा राधिका
पदाम्भोरुहदास्यलास्यपदवीम् स्वान्तेन सन्तानयन्।
वैराग्यैकरसेन विश्वमधुराम् कांचिद्‌शामुद्वहन्
श्री वृन्दाविपिने कदा नु सततोदश्रु र्निवत्स्याम्यहम्।।

(वृः मः -8/83)

मैं श्रीवृन्दावन में वास करते हुए, श्रीराधा की श्रीचरण-कमल-दास्य-पदवी को अन्तर में धारण करते हुए, श्रीकृष्ण-प्रेम-सुधासिन्धु में निमग्न

होकर विशुद्ध वैराग्य का अवलम्बन कर सतत अश्रुधारा में स्नान करते-करते किसी विश्व मधुर दशा को कब प्राप्त करुँगा? प्रार्थना की तरंगाघातों से आन्दोलित श्रीपाद के नयनों के सम्मुख पुनः पूर्व लीला का ही स्फुरण जागा। प्रणय-मान के शान्त हो जाने के उपरान्त श्रीयुगल में विलास-लालसा का उद्रेक हुआ है। श्रीयुगल का मनोभाव जान कर किंकश्रीरूप कुन्ज से बाहर चली गई। उत्कण्ठामय मधुर मिलन से रसानन्द के कितने ही उत्स बह निकले। विलासानन्द में युगल आत्महारा हैं। किंकरीरूप कुंज-रन्ध्रों पर अपने नेत्र अर्पित कर उस अभिनव रसानन्द के सरोवर में सन्तरण कर रही है। विलास का अवसान हो गया। सेवा का समय जान कर श्रीरूप ने कुन्ज में प्रवेश किया। विलास श्रमित श्रीयुगल की जलदान, ताम्बूलदान एवं वीजन आदि सेवाओं में आत्म नियोग किया। विलास श्रम जनित स्वेद-जल से श्रीराधामाधव के ललाट की पत्रावली पुंछ गई है। श्रीमती के इंगित से रूप श्री युगल के ललाट-फलक पर पत्रावली रचना करेंगी। स्फुरण होते हुए भी सेवा का प्रत्यक्ष के समान सुस्पष्ट अनुभव है। स्मरण निष्ठ साधक भी स्मृति में प्रत्यक्ष के ही समान सेवा रस का आस्वादन लाभ करते हैं। स्मरण की उन्नत अवस्था में स्मरण कर रहा हूँ ऐसा मन में आता ही नहीं, यही अनुभव होता है कि साक्षात् सेवा कर रहा हूँ। श्री भाष्य के प्रारम्भ में श्रीपाद रामानुजाचार्य लिखते हैं- "भवति च स्मृतेर्भावना प्रकर्षाद्दर्शनरूपता" अर्थात् स्मृति जब प्रगाढ़ हो जाती है, विजातीय प्रत्यय-प्रवाह शून्य हो कर स्वजातीय प्रत्यय जब एकतान्ता लाभ करता है, तब स्मरणात्मक ज्ञान भी प्रत्यक्ष ज्ञान के रूप में परिणत हो जाता है।" स्वजातीय प्रत्यय प्रवाह की सर्वोत्कृष्ट साधन भूमि है-लीलाराज्य श्रीवृन्दावन। करुणामयी स्वामिनी ने कृपा कर मुझ जैसे जीव को उनकी लीला-भूमि में स्थान दिया है, अपनी कृपा के मूर्त स्वरूप श्रीगुरु-वैष्णवों का संग भी दिया है किन्तु फिर भी मुझ जैसे जीव के चित्त में कोई अनुभव नहीं है। दिवानिशि केवल देह-देहिकादि को लेकर हर मत्त हूँ। अनादिकाल के विषय संस्कार चित्त को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। महाजन मुझ जैसे जीवों को सतर्क करते हुए कहते हैं-

विषय विपत्ति जान, संसार स्वप्न मानो,
नरतनु भजनेर मलू।

अनुरागे भज सदा, प्रेम भावे लीलाकथा,
आर यत हृदयेर शूल।।"

(प्रे: भ: च:)

श्रीपाद ने रूप मंजश्रीरूप में चतु:सम आदि गन्ध-द्रव्यों का पंक तैयार कर, पृथक्-पृथक् मणियों के पात्रों में पीत, नील, रक्त, श्वेत आदि रंग मिश्रित किए हैं। श्री युगल के ललाट-फलक पर पत्रावली रचना करेंगी। वाम हस्त में तूलिका धारण कर कितने अभिनिवेश के साथ पत्रावली रचना में मनोनिवेष किया है। श्रीश्रीराधामाधव के निकट पारस्परिक रूप-गुण आदि की मधुर-मधुर कथा कहते हुए किंकरी पत्रावली रचना कर रही हैं। कैसी परिपाटी युक्त प्राणों से भरी सेवा है। रूप मंजरी सेवा कर रही हैं-मजंरी-भाव के साधक को निकट रह कर देखना होगा। वह न हो सके तो उनकी सेवा कथा का श्रवण करना होगा। इनकी कृपा होने पर ही साधक को क्रमश: सेवा का सौभाग्य प्राप्त होगा। सेवा रस में निमग्न श्रीपाद के स्फुरण में सहसा विराम आ गया। आर्तनाद के सहित प्रार्थना जाग उठी-

हे नाथ! कृष्णचन्द्र! निकुन्ज विहारी।
हा श्री राधे! गान्धर्विका आमार ईश्वरी।।
हेन शुभक्षण मोर कवे वा हइवे।
अनुरागे साजाइव माधवी माधवे।।
चतु:सम कद्रमेते नानावर्ण करि।
दोहार भालेते कि रचिब पत्रावली।।
नवीन युगले करि शोभा सम्पादन।
नयन भरिया कवे करिव दर्शन?।।
इदम् सेवाभाग्यम् भवति सुलभम् येन युवयो,-
छिटाप्यस्य प्रेमण: स्फुरति नहि सुप्तावपि मम्।
पदार्थेअस्मिन् युष्मदब्रजमनुनिवासेन जनित,-
स्ताथाप्याशबन्ध: परिवृढवरौ माम् दृढयति।।65।।

(हे) परिवृढवरौ! (प्रभुश्रेष्ठौ! आर्य्य: परिवृढ: स्वामी प्रभु र्नेता च नायक इति हलायुद्ध:) युवयोरिदम् सेवाभाग्यम् येन सुलभम् भवति अस्य प्रेमण छटापि सुप्तौ (स्वप्ने) अपि मम् हि (निश्चितमेव) न स्फुरति (उदयति,

तर्हि निराशो भवेति चेत्तत्राह यद्यप्येवम्) तथापि युष्मत्ब्रजमनुनिवासेन (हेतुना) अस्मिन् (सेवाभाग्ये पदार्थे वस्तुनि) जनित आशाबन्धो माम् दृढयति।

हे नाथ श्रीकृष्ण! हे मदीश्वरी श्री राधिके! जिससे तुम्हारा सेवा-सौभाग्य प्राप्त हो सके वैसी प्रेम सम्पदा मैनें कभी स्वप्न में भी अनुभव नहीं की, किन्तु फिर भी तुम्हारे इस नित्य लीला स्थान श्रीवृन्दावन में वास हेतु बलवती आशा मुझे निरुत्साहित नहीं दे रही।

मकरन्दकणा व्याख्या

श्रीपाद को स्फुरण में कुछ विचित्र लीलाओं का स्फुरण हो रहा है एवं स्फुरण में सेवा-सौभाग्य भी प्राप्त हो रहा है। प्रेमिक भक्त के चित्त में उत्कण्ठा वर्धन के लिए श्रीभगवान् स्फुरण में, स्वप्न में, एवं स्मरण में भक्त को दर्शन दान करते हैं। दर्शन दान कर पुनः अन्तराल में चले जाते हैं। अंधकारमयी मेघाच्छन्न रात्रि में एक बार विद्युत-प्रकाश के उपरान्त नयनों का अन्धकार जैसे गाढ़तर बोध होता है, उसी प्रकार तब भक्त की उत्कण्ठा, आर्तनाद, हाहाकार द्विगुणित हो उठता है। श्रीपाद के क्रमिक स्फुरण में विराम आ गया। विपुल दैन्य, आर्ति के गाद अन्धकार से हृदयाकाश आच्छन्न हो गया। आर्तनाद के सहित रूदन करने लगे। अन्तिम दशा है। श्रीयुगल के साक्षात दर्शन एवं सेवा-प्राप्ति के अभाव में अब प्राण धारण नहीं कर पाएँगे। दैन्य की अतिशयता में सोचते हैं- मैं क्या उनकी सेवा प्राप्ति के योग्य हूँ? कहाँ शूद्र जीव और कहाँ उनकी प्रेम सेवा-महाभाव राज्य की वस्तु। राधादास्य क्या इतना सहज है? सभी उपेक्षाओं का त्याग किए बिना एवं श्रीराधा के चरणों में एकान्तिक शरणागति हुए बिना क्या युगल सेवा सम्भव है? श्रीराधादास्य ही जिनका एकमात्र जीवातु है उन आचार्यपादगण ने स्वयं आचरण कर जीव जगत को शिक्षा दी है- कि यदि श्री युगल किशोर की प्रेम सेवा लाभ करना चाहते हो तो ब्रजजन की तरह चित्त मन को उनके आनुगत्य में, सेवा के उपयोगी करना होगा। ब्रजजनेर येइ रीत, ताहाते डुबाउचित्त, एइ से परम तत्त्व धन (प्रे: भ: च:)। ब्रजजन के आनुगत्य में तीव्र भजन के फलस्वरूप चित्त अन्य अभिलाषाओं से शून्य हो कर युगल किशोर की सेवा अभिलाषा से पूर्ण हो जाता है। श्री युगल के सुख-सन्तोष की कामना से युक्त, विशुद्ध निष्काम चित्त साधक के लिए ही प्राप्य है- श्रीराधामाधव की

प्रेम सेवा। प्राकृत संस्कारों के रहने पर तो श्रीवृन्दावनीय उपासना समझ ही नहीं आती, सेवा प्राप्ति तो बहुत दूर की बात है। महाभावमयी श्रीराधा, शृंगार रसमय श्रीकृष्ण–महाविलासी युगल। रात–दिन कुन्ज क्रीड़ा परायण। इसकी अपेक्षा कोई अन्य शुद्ध चिन्मय रससार वस्तु प्राकृत–अप्राकृत किसी भी राज्य में नहीं है। चिर शुद्ध, चिर पवित्र उज्ज्वल रस की उपासना है। श्रीपाद साक्षात् नित्य परिकर होते हुए भी प्रेम के अतृप्ति स्वभाव वश उत्कण्ठा से भर कर विलाप कर रहे हैं– जिस प्रेम से तुम्हारी सेवा की जाती है, वह प्रेम तो मुझमें है ही नहीं, स्वप्न में भी उस प्रेम की अनुभूति प्राप्त नहीं हुई। तब भी यदि कहो कि एकमात्र प्रेम के क्यों कर रहा हूँ? उसका उत्तर कहता हूँ– तुम्हारी नित्य लीला भूमि श्रीवृन्दावन का आश्रय करने से तुम्हारी प्रेम सेवा प्राप्ति की बलवती आशा मेरे हृदय में बद्धमूल हो गई है। हो गई है। श्रील सरस्वती पाद लिखते हैं– जिन्होंने श्रीवृन्दावन का आश्रय किया है, श्रीराधामाधव उन्हें अपना निजजन ही मानते हैं।

तम् नेवात्र कृता ते वितपतस्तम् नैव माया स्पृशे –
तम् सर्वेअपि गुणा भजन्ति महताम् कांक्षति तम् सम्पदः।
तम् सर्वे स्तवते विरिंचि प्रमुखास्तम् राधिका–माधवो
स्वासन्नैकतम् मुदा गणयतो वृन्दावनम् यः श्रितः।।

(वृः मः 5/81)

अर्थात् जिन्होनें वृन्दावन का आश्रय लिया है उन्हें कृत या अकृत कर्म ताप नहीं देते, माया उन्हें स्पर्श भी नहीं कर सकती, सकल महागुण राशि उनका भजन करती है, सम्पद राशि उनकी आकांक्षा करती है, ब्रह्मा आदि देवगण उनका स्तव करते हैं एवं श्रीराधामाधव आनन्द सहित उसे निकटस्थ व्यक्तिगण का अर्थात् परिकरगणों में अन्तसम मानते हैं। श्रीवृन्दावन आश्रयी को युगल माधुरी आस्वादन की योग्यता भी दान करते हैं–

एकान्तेषु विचिन्तयन्निरवधि श्रीराधिका–कृष्णयो–
स्तद्रतपम् सकलाद्भम् रसमयीर्लीला च सर्वाद्भुताः।
प्राप्तैकान्तनिरन्तरोज्ज्वल महाभावो महाभाग्यतः
सर्वेहा विनिवृत्ति नित्यसुखभाक् कोप्यस्ति वृन्दावने।।

(वही –6115)

श्रीराधाकृष्ण के अत्यन्त अद्‌भुत उस रूप-माधुर्य एवं अत्यन्त अद्‌भुत रसमयी लीलाओं का निर्जन में निरन्तर चिन्तन करते-करते, महाभाग्य से निरन्तर उज्ज्वल रस की महाभाराव्य (साजात्य) दशा-श्रेष्ठ को प्राप्त हो कर, समस्त चेष्टाओं से विरत एवं सुखी हो भाग्यवान व्यक्ति ही श्रीवृन्दावन में वास करते हैं। श्रीपाद कहते हैं- 'तभी तो आशा से हृदय बिंध गया है। तुम्हारी क्रीड़ा भूमि में आ कर पड़ा हूँ, तुम ब्रजधाम में शरणागत जन की उपेक्षा नहीं कर सकते। हृदय में महती आशा है- करुणा से भर कर किसी दिन श्री चरणतल में खींच ही लोगे।' यही आशा ही साधक को बचाए रखती है। युगल चरणों की सेवा प्राप्ति के अभाव में जब प्राण कण्ठागत होते हैं- तब आशा के शत-मुखी उत्स हृदय को सुशीतल कर देते हैं। प्रेमिक के हृदय में निराशा एवं निरुत्साह को कभी आने नहीं देते। तब हृदय में इस प्रकार की प्रार्थना जाग उठती है-

हे गोविन्द! प्रभुतर ब्रजेर श्रीहरि।
हा राधिके! विनोदिनी! आमार ईश्वरी।।
युगलेर सेवा भाग्य लाभ करिवारे।
से प्रेम सम्पद नाइ आमार अन्तरे।।
अकपटे बलितेछि मुइि मूढमति।
स्वप्ने3 देखि नाइ सेइ प्रेमद्युति।।
किन्तु नित्यलीलाभूमि एई ब्रजधामे।
निरन्तर वास करि करिया नियमे।।
बलवती आशा प्राणे हइयाछे संचार।
निश्चय पाइव तव सेवा अधिकार।।
प्रपद्य भवदीयताम् कलितर्निलप्रेमभि,-
र्महद्‌भिरपि काम्यते किमपि यत्र तार्णम् जनुः।
तात्र कुजनेरपि ब्रजवने स्थितिर्मे यया,
कृपाम् कृपणगामिनीम् सदसि नौमि तामेव वाम्।।66।।

(हे) श्रीराधामाधवौ! भवदीयताम् (युस्मत्‌सेवकताम्) प्रपद्य (प्राप्य) कलितनिर्मलप्रेमभि (जातभावेः) महद्‌भिः (उद्धवादिभिः) अपि तार्णम् (तृणसम्बन्धि) किमपि जनुः (जन्म) काम्यते (वाछयते) अत्र ब्रजवने कुजनैः

(निन्द्यजन्मनो) अपि मे स्थितिर्यया कृता, ताम् वाम् (युवयोः) कृपणगामिनीम् (दीनविशयाम्)कृपाम् (अहम्) सदसि नौमि।

हे नाथ श्रीकृष्ण! हे मदीश्वरी श्रीराधिके! तुम्हारा दास्य भाव प्राप्त परम प्रेमिका श्रीउद्धव आदि महत्-गण जिस स्थान पर तृण-गुल्म आदि जन्म की प्रार्थना करते हैं, मैनें निकृष्ट जन्मा होते हुए भी जिसके प्रभाव से उस श्रीवृन्दावन में वास का सौभाग्य प्राप्त किया है- तुम्हारी उस दीन गामिनी कृपा को मैं सतत प्रणाम् करता हूँ।

मकरन्दकणा व्याख्या

श्रीपाद ने पूर्व श्लोक में ब्रजवास के सौभाग्य से आशाबन्ध व्यक्त किया है। उन्होंने अपने भक्ति-रसामृत-सिन्धु ग्रन्थ में अलौकिक भक्ति-सम्पन्न पाँच भजन-अगों के मध्य ब्रजवास को अन्यतम रूप में उल्लेख किया है। सत्संग, श्री मूर्ति सेवा, श्रीमत् भागवत् श्रवण, श्री नाम संकीर्तन, एवं ब्रजवास- यह पाँच अंग दुरुह एवं अद्‌भुत भक्ति सम्पन्न हैं। इस साधन पंचक में श्रद्धा रखना तो दूर, इसके स्वल्प मात्र सम्बन्ध से ही निरपराध साधकगण के चित्त में अविलम्ब भाव का आविभाव हो जाता है।

दुरुहाद्‌भुतवीर्येऽस्मिन श्रद्धा दुरेऽस्तु पंचके।
यत्र स्वल्पोऽपि सम्बन्धः सद्धियाम् भावजन्मने।।

(भः रः सिः -1/2/238)

श्रीपाद कहते हैं- 'हे श्रीराधामाधव! यह सुदुर्लभ ब्रजवास तुम्हारी ही

करुणा-सापेक्ष है। तुम्हारी करुणा ने ही केश आकषर्ण कर मुझे तुम्हारी विहार भूमि में स्थान दिया है। यदि ऐसा न हो तो क्या निज-चेष्टा या निज-शक्ति से कोई ब्रजवास करने में सक्षम हो सकता? इससे तुम्हारी करुणा का प्राथमिक विकास स्पष्ट अनुभव होता है। अतः जिस करुणा से अपनी विहार-भूमि में स्थान दिया है उसी कृपा से अपनी सेवा दान कर तुम इस दीन जन को धन्य नहीं कर सकते, ऐसा नहीं है। क्योकि यह ब्रजवास तुम्हारी ही असाधारण सापेक्ष है। श्रीब्रह्मा उद्धव आदि महत् गण इस ब्रज धाम में तृण गुल्म आदि जन्म की कामना करते हैं। श्रीब्रह्मा की प्रार्थना में देख जाता है।

तद्भुरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्याम्
यद्गोकुलेऽपि कतमाधिध्ररजोभिषेकम्।
यज्जीवितन्तु निखिलम् भगवान् मुकुन्द-
स्त्वद्यापि यत् पदरजः श्रुतिमृग्येमेव।।

(भाः - 10/14/34)

श्रीब्रह्मा ने कहा- 'हे भगवन्! मेरा ऐसा महासौभाग्य उदय हो, जिससे कि मैं इस गोकुल में तृण, दुर्वा या प्रस्तर आदि में से कोई एक जन्म लाभ कर सकूँ। कारण जिनकी पदधूलि श्रुतिगण भी निरन्तर अन्वेक्षण करती रहती है, वही तुम श्रीमुकुन्द जिनके प्राण स्वरूप हो- उन गोकुलवासियों की चरण रज से अभिषित होने की सम्भावना इन तृण-दूर्वा आदि के जन्म में ही यथेष्ट रहती है।' श्रील उद्धव महाशय के समान महा महत् भी श्रीगोपिकाओं की श्रीचरणरज कणा लाभ की आकांक्षा से इस ब्रज वन में तृण गुल्म आदि जन्म की कामना करते हैं-

आसामहो चरणरेणुजुक्षामहम् स्याम्
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यज्यम् स्वजनमार्यपथंच हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीम् श्रुतिभिर्विमृग्याम्।।

(भाः -10/47/61)

अहो! मैं अत्यन्त दुर्लभ विषय की लालसा प्रकाश कर रहा हूँ- इस ब्रज वन में जो सभी तृण, गुल्म, लता, औषधि इत्यादि हैं, वे सभी परम सौभाग्यवान एवं सौभाग्यवती हैं। क्योंकि जो ब्रजागनाएं दुरत्यज्य स्वजन, पतिव्रत्य-धर्म आदि का त्यागकर, श्रुतियों की भी अन्वेषणीय मुकुन्दपदवी का भजन करती है (वे उनकी श्रीचरण रेणु को अनायास ही मस्तक पर धारण कर पाती है। मैं यदि इन गुल्म-लता-औषधियागण के बीच कोई एक जन्म लाभ कर पाता हूँ तो मैं भी इस सुदुर्लभ गोपी पदरेणु को मस्तक पर धारण कर धन्य हो पाउँगा।" श्रीपाद कहते हैं- इन सब महतगणों के वाक्यों से समझ आता है कि ब्रजवास कितनी सुदुर्लभ वस्तु है। जब कृपा कर ब्रजवास का सौभाग्य प्रदान किया है, तो निश्चित रुप से सेवा भी दान करेंगे ही, इस आशा का मैं त्याग नहीं कर पा रहा हूँ। यदि कहो कि उद्धव आदि के लिए भी सुदुर्लभ वस्तु की

कामना करने का साहस तुम जैसा साधारण मानव कर भी कैसे सकता है? उसके उत्तर में कहता हूँ- तुम्हारी दीन गामिनी कृपा के अतिरिक्त अन्य कोई द्वितीय कारण नहीं देख पा रहा हूँ। कृपा को ही सतत प्रणाम करता हूँ। कृपा कर मुझ निकृष्ट जन्मा जीवाधम को तुम्हारी दीन गामिनी कृपा सतत वर्षित हो रही है, यह मैं समझ पा रहा हूँ तभी मेरे जैसा दुर्गत जीव भी ऐसी बड़ी आशा हृदय में धारण कर पा रहा है। जब करुणा कर श्रीचरणों में खींच लिया है तो सेवा दान कर धन्य भी करो। तुम्हारा यह उत्कट विरह अब और सहन नहीं पा रहा। श्रीपाद युगल की पतित-पावनी करुणा की स्मृति में तन्मय हो रहे हैं-

हे नाथ श्री गिरधारि! नवधनश्याम।
हा श्रीराधे! मदीश्वरि! कर अवधान।।
हरिदास शिरोमणि उद्धवादि यत।
अखिल भुवने ख्यात महाभागवत।।
प्रेममय वृन्दावने नित्य वास-तरे।
तृण-गुल्म-लता-जन्म सदा वान्छा करे।।
निकृष्ट जन्मा से आदि सेइ ब्रजवने।
नित्य वास करितेछि ये कृपार गुणे।।
कृपण-गामिनी सेई युगल-कृपाके।
अनन्त प्रणाम करि लुटाये मस्तके।।
माधव्या मधुरांग काननपदप्रप्ताधिराज्यश्रिया
वृन्दारण्यविकासिसौरभतते तापिंछकल्पद्रुम।
नोत्तापम् जगदेव यस्य भजते कीर्तिच्छटाच्छायया
चित्रा तस्य तवांगिध्रसन्निधिजुषाम् किंवा फलाप्तिर्नृणाम्?।।67।।

(हे) काननपदप्राप्ताधिराज्यश्रिया माधव्या मधुरांग! (काननपदे वनराजधान्याम् प्राप्तधिराज्य-श्रीरधिकंसम्पत् यया तया माधव्या लतया आपादशिखमाश्लिष्यन्त्या मधुराणि रूचिराण्यंगानि स्कन्धशाखादिनी यस्य हे तादृष) वृन्दारण्यविकासिसौरभतते तापिन्छकल्पद्रुम! (वृन्दारण्ये विकासिनी प्रसृत्वरी सौरभततिर्यस्य हे तादृष तमाल सुरतरो!) यस्य कीर्तिच्छटाच्छायया जगदेव (विश्वमपि) नोत्तापम् भजते, तस्य तवांगिध्रसन्निधिजुषाम् फलाति:

किम् चित्रा (न चित्रेत्यार्थः, अप्रस्तुतप्रशंसात्रालंकारः। अप्रस्तुतप्रशंसा हि या सैव प्रस्तुताश्रय। कार्ये निमित्ते सामान्ये विशेषे प्रस्तुत सति। तदन्यस्य वचस्तुल्यो तुल्यस्येति च पंचधेति" तल्लक्षणात्। इह तुल्ये प्रस्तुते तुल्यस्योक्तिः क्लेशच्छायया बोध्या माधव्यादिपदानाम् द्वयर्थकत्वात् क्लकोच्छाया)।

हे तमाल तरु! तुम वृन्दावन के कल्पद्रुम हो, इस कानन राज्य की राज लक्ष्मी माधवी ने तुम्हें आपाद-मस्तक वेष्टित किया है जिससे तुम्हारी शाखा-प्रशाखा अति मनोहर हो गई है एवं तुम्हारे सौरभ से वृन्दावन की दसों दिशाएँ आमोदित हो गई हैं। तुम्हारी कीर्ति रूपी छाया का आश्रय करने से विश्व मानव का सन्ताप नष्ट होता है, अतएव तुम्हारे पाद-मूल का आश्रय करने से किसी विचित्र फल की प्राप्ति होगी, इसमें और क्या आश्चर्य है?

मकरन्दकणा व्याख्या

श्रीब्रजधाम की महामहिमा का चिन्तन करने से दैन्य की खान श्रीपाद का चित्त आशा के आलोक से प्रदीप्त हो उठा है। उन्होंने अधम होते हुए भी श्रीराधामाधव की सौभाग्य प्राप्त किया है, तो फिर उन्हीं के कृपा-गुण से उनकी सेवा भी प्राप्त करेंगे, इस बात में क्या आश्चर्य है- यही श्रीपाद का परम भरोसा है। श्रीपाद जिस स्थान पर बैठे कर अभीष्ट की सेवा प्राप्ति के लिए उत्कण्ठा से अधीर प्राण हो कर रूदन कर रहे थे- वही सम्मुख देखते हैं- एक तमाल वृक्ष प्रफुल्लित माधवी लता से आपाद-मस्तक वेष्टित है। उसी तमाल वृक्ष के निकट प्राणों की प्रार्थना निवेदन करने लगते हैं। कहते हैं- 'हे तमाल तरु! तुम वृन्दावन के कल्पद्रुम हो! ब्रह्मसंहिता में ब्रज के वृक्षों के स्वरूप निरुपण में कहा गया है- "कल्पतरवो द्रमा"। श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद लिखते हैं-

इथम् स्वानन्दसच्चिद्रसधनवपुषो यत्र शाखीन्द्र-वृन्द
स्याश्चर्य्या वर्णभेदा अथ विविधरूवाम् वीचयो दुर्निरूपाः।
आकाराणाम् प्रकारा अपि परमचमत्कारिणाम् यत्र पुष्पा-
द्यात्याश्चर्य्यैकसीम्नः स्फुरतु मम सदा सैव वृन्दाटवीयम्

(वृः मः 10/82)

जहाँ स्वानन्द-सत्-चित्-रसघन-देह विशिष्ट श्रेष्ठ वृक्षगणों के आश्चर्यमय वर्ण भेद है, विविध कान्ति की दुर्नि रूपा तरंगें राजि है, परम

चमत्कार जनक आकृति समूहों के विविध भेद है एवं उसमें अति आश्चर्यजनक परम सुन्दर पुष्प आदि विराजित हैं वही वृन्दावन मेरे चित्त में सदा स्फुरित हो।" श्रीवृन्दावन की कल्पवृक्ष राशि श्रीराधाकृष्ण की सन्तुष्टि के निमित्त बहु-विध रूपों में प्रकाशित होती है। कोई-कोई अमृत सार की उत्तम परिणति (निर्यास) विशेष है, कोई-कोई दिव्य क्षीरसार-द्वारा सुन्दर भाव से निर्मित है, कोई अतुलनीय मत्तताजनक घनीभूत सुधा को अंग में धारण किए हैं, कोई-कोई स्फटिक के समान, और कोई कर्पूर के समान शुभ्र वेश धारण कर विराजमान हैं।

केचित पीयूषसारोत्तम-परिणतयः केचन क्षीरसारै-
द्रिव्यैः सन्निर्म्मिता केअप्यतुलमदश्तामासवानाम् धनांगाः।
केचित् सैतोपलाः केअप्यतिहिमकरकाः कल्परूपा इति श्री-
वृन्दारण्ये द्रुमेन्द्रा दधति बहुविधा राधिका-कृष्ण-तुष्टयै।।"

(वही-10/77)

श्रीपाद कहते हैं- 'हे माधवी-मधुरांग तरुण तमाल! कानन राज्य लक्ष्मी माधवी लता ने तुम्हें आपाद-मस्तक वेष्टित किया है जिससे तुम्हारी शाखा-प्रशाखा की अपूर्व मनोहर श्री प्रकाशित हो रही है। तुम्हारे सौरभ से श्रीवृन्दावन की दसों दिशाएँ परिपूरित हैं। तुम्हारी कीर्ति रूपी छाया का आश्रय करने से विश्व मानव की समस्त सन्ताप राशि नष्ट हो जाती है।' वह कीर्ति कैसी है? श्रील सरस्वतीपाद लिखते हैं-

राधाकृष्णानुरागन्मुकुलपुलकिनो माकरन्दौधवाष्पान्
तत्तादृगवातचंचत्किशलयकरतो दिव्यनृत्यम् दधानाः।
सत्पुष्पश्रेणीहासाः खगकुलविरूतैः संस्तवन्तः फलादे
र्भारर्नम्त्रा द्रुमास्ते मम परममुदे सन्तु वृन्दावनीयाः।।"

(वही -6/13)

अर्थात् श्रीराधाकृष्ण के प्रति अनुराग वश श्रीवृन्दावन के वृक्ष मुकुल रूपी पुलक धारण करते हैं- मधु प्रवाह के छल से अश्रुधारा वर्षण करते हैं- मृदु मन्द वायु प्रवाह से संचालित पल्लव रूपी हस्त भंगिमाओं से प्रेमानन्द में दिव्य नृत्य करते हैं- उत्तम कुसुमों के विकास के छल से हास्य करते हैं- पक्षियों के कूजन से सम्यक् प्रकार से श्रीराधामाधव का स्तव गान करते हैं-

फलों के भार से अवनत हो कर उनके श्रीचरणों करते हैं– वृन्दावन की वही वृक्षराजि मेरा परमान्द विधान करे। अत: हे कल्पद्रुम ! तुम्हारे श्रीपादमूल में आश्रय करने से किसी भी आश्चर्यमय फल की प्राप्ति हो जाएगी, अर्थात् श्रीश्रीराधामाधव की प्रेम सेवा प्राप्त हो जाएगी, इसमें आश्चर्य कैसा ? वृन्दावन महिमामृत में वर्णित है–

स्वयं नित्योत्तीणाम्स्त्रिगुण-विभवापारजलधेः
परानप्युत्तार्य्योन्मद-हरिरसाब्ध्याप्लुतिशतः।
महार्थान् योगीन्द्रैरपि दुरूपलम्भान् वितरतो
भजानन्यप्रेमणा दयिततम-वृन्दावन-तरुन्।।

(वही–6/18)

जो स्वयं नित्य त्रिगुणा (माया) विभूति के अपार समुद्र से उत्तीर्ण हो गए हैं– अन्य समस्त आश्रितों को भी उससे उद्धार करना कर उन्मादनामय हरिरस–सिन्धु में अवगाहन करा रहे हैं– एवं योगीन्द्रगणों के लिए भी सुदुर्लभ महा पुरुषार्थ समूह (श्रीश्रीराधामाधव के श्रीचरणों के प्रेम) का वितरण कर रहे हैं– ऐसे दयिततम श्रीवृन्दावन की तरु राजि का अनन्य प्रेम के सहित भजन करो।" स्वाभीष्ट प्राप्ति के निमित्त उत्कलिकाकुल श्रीपाद का चित्त वृन्दावन की वृक्षराजि के महिमा–गुणों में तन्मय है। इस श्लोक में 'अप्रस्तुत प्रशंसा' नामक अंलकार सन्निविष्ट है। अप्रस्तुत प्रशंसा पाँच प्रकार की है– कार्यै निमित्ते सामान्य विशेषे प्रस्तुते सति। तदन्यस्य वचस्तुल्ये तुल्यस्येति पंचधेति तल्लक्षणात्। यहाँ शेष लक्षण अर्थात् तुल्य प्रासंगिक वाक्य में अप्रासंगिक का वर्णन हुआ है। श्रीश्रीराधामाधव के गुणों का वर्णन कर रहे हैं तमाल एवं माधवी लता के द्वारा समालिंगित हो कर श्रीकृष्ण रूप तमाल की अतिशय शोभा का विकास हो रहा है। राधा प्रेम करे कृष्ण माधुर्येर पुष्टि (चै: च:)। उनके श्री अंग सौरभ से वृन्दावन सुरभित है। उनकी कीर्ति छाया के आश्रय से अर्थात् उनके गुण, लीला आदि के श्रवण–कीर्तन से अखिल ताप प्रशमित हो जाते हैं। अत: उनके श्रीचरणाश्रय से उनकी सेवा रूपी फल की प्राप्ति होगी– इसमें आश्चर्य कैसा ? स्वाभिष्ट सिद्धि के निमित्त अप्राकृत रसकवि सुचतुर श्रीपाद ने श्रीवृन्दावन के कल्पतरु की कृपा–प्रार्थना के छल

से अपने परमाभीष्ट तरुण-तमाल श्रीगोविन्द एवं माधवी की (श्रीराधा का एक नाम माधवी) करुणा की कामना की है।

हे चिर सुन्दरवर तरुण तमाल।
वृन्दावन कल्पतरु मूरति रसाल।।
कुन्ज राज्ये राजलक्ष्मी माधवी लतिका।
तोमाके जडाये आछे परम रसिका।।
ताहाते उज्जल अंग अति मनोहर।
सर्वचित्त चमत्कारी परम सुन्दर।।
तोमादेर परिमल वन-उपवन।
दशदिके संचारित मलय पवने।।
कोटि चन्द्र-सुशीतल कीर्ति-छाया-तले।
त्रिताप सन्ताप चाय आश्रय करिले।।
पाद मूल आश्रयेर तार जेई फल।
मन बुद्धि अगोचर सर्वसुमंगल।।
श्रीरूपगोस्वामीपाद करि कत छन्दे।
युगल महिमा गाय परम आनन्दे।।
त्वल्लीलामधुकुल्ययोल्लसितया कृष्णाम्बुदस्यामृतैः
श्रीवृन्दावनकल्पवल्लि परितः सौरभ्य-विस्फारया।
माधुर्येन समस्तमेव पृथुना ब्रह्माण्डमाप्यायितम्
नाश्चर्यम् भुवि लब्धापादरजसाम् पर्वोन्नतिर्वीरुधाम्।।68।।

(हे) वृन्दावनकल्पवल्लि! त्वल्लीलामधुकुल्यया (कर्त्रया) समस्तमेव ब्रह्माण्डम् पृथुना माधुर्येनाप्यायितम् (तर्पितम्, अतः) लब्धपादरजसाम् वीरुधाम् (लतानाम्) पर्वोन्नतिः (पवर्वणो ग्रन्थेरूत्सवस्य चोन्नतिर्महत्वम्, भवेदिति) नाश्चर्य्यम्। (तत्कुल्यया कीदृश्या) कृष्णाम्बुदस्य (श्यामाभ्रस्य) अमृतैः (अम्बुधिः) उल्लसितया, (उच्छलिया पक्षे हरिवलाहकस्यामृतैर्लीलासुधाभिः तथा) परितः (चतुर्दिक्षुः) सौरभविस्फारया (अत्रापि सैवालन्तिः)।

हे श्रीवृन्दावन-कल्पवल्लि कृष्ण-मधे के अमृत सिंचन से परिवर्धित एवं अति सुरभित तुम्हारी लीला रूपी मधु कुल्या के (मधुमयी कृत्रिम नदी)

माधुर्य से ब्रह्माण्ड में सभी आप्यायित हुए है, तो वहाँ तुम्हाश्रीपाद-रेणु सेवनकारी लताओं की विशेष उन्नति साधित होगी, इसमें आश्चर्य कैसा?

मकरन्दकणा व्याख्या

श्रीपाद श्रीवृन्दावन के कल्प तरुगणों की महिमा कीर्तन करने के उपरान्त अब इस श्लोक में श्रीवृन्दावन कल्पवल्ली की महिमा कीर्तन कर रहे हैं। जिस माधवी लता ने तमाल का आश्रय किया हुआ है, वही कल्पवल्ली है। श्रीवृन्दावन की समस्त तरुलताएँ कल्पतरु एवं कल्पलताएँ जिस प्रकार मानव को वांछित धर्म, अर्थ, काम आदि प्रदान किया करती है, इनका स्वभाव उस प्रकार नहीं है। इनका आश्रय करने पर हृदय अन्य वासनाओं से शून्य होकर श्रीराधामाधव की सेवा वासना से भर जाता है। यह आश्रयी को श्रीयुगल चरणों में प्रेम दान कर धन्य कर देती हैं। श्रीपाद कहते हैं- 'हे वृन्दावनकल्पवल्लि! तुम काले मधे के जल सिंचन से सतत परिपुष्ट होती हो, तुम्हारी लीला रूपी मधुमय कृत्रिम नदी के माधुर्य से ब्रह्माण्ड में सभी आप्यायित होते हैं। वृन्दावन की कल्पलताओं की लीला या यश सत्य ही अति मधुमयी है। श्रील सरस्वतीपाद लिखते हैं-

या राधाया वरतनु नटेत्यक्तिमात्रेण नृत्येद -
गायेत्युक्ता मधुकररूतैर्विज्ञगानम् तनोति।
क्रन्देत्युक्ता विसृजति मधुत्फुल्लिता स्याद्धसेति
प्रोक्ताश्लिष्य द्रुममिति गिरा सस्वजे धृष्टगुच्छा।।

जो लता, 'हे वरांगिनि! नृत्य कर'- श्रीराधा की इस उक्ति मात्र से ही नृत्य करती है, 'गायन कर'- इस उक्ति मात्र से भ्रमर झंकार पर मनोमद गायन करती है, 'क्रन्दन कर'- इस वाक्य पर मधुधारा वर्षण करती है एवं 'हास्य कर' यह बात कहते ही उत्फुल्लित हो जाती है और जाती है और 'वृक्ष को आलिंगन कर लेती हैं। एक बार श्रीवृन्दावन में श्रीराधामाधव का लुका-छिपि खेल हो रहा था। सखियों में से कोई भी संग नहीं है। श्रीराधा कहती हैं- 'श्याम! यदि मैं छिप जाऊँ तो मेरी सखियों की सहायता के बिना तुम मुझे खोज नहीं पाओगे।' श्याम कहते हैं- 'तुम्हारी सखियों की सहायता के बिना ही मैं तुम्हें खोज कर दिखाऊँगा'। श्रीमती छिप जाती हैं। श्याम सुन्दर उन्हें अनेक चेष्टाओं के बाद भी खोज नहीं पाते और विरह विषाद से

खिन्न होकर एक लता से जिज्ञासा करते हैं- हे वल्लि! मेरी प्राणेश्वरी कहाँ है? लतिका अपने कर किशलयों के संचालन से श्रीमती की ओर इंगित कर देती है। लतिका के इंगित के अनुसार उसी दिशा में जा कर श्याम स्वामिनी को खोज लेते हैं। श्रीमती कहती हैं- 'बताओ, मेरी किसी सखी ने तुम्हें मेरे छिपने के स्थान की सूचना दी थी या नहीं।' श्याम कहतें हैं- यहाँ तुम्हारी सखियाँ हैं ही कहाँ? श्रीराधा तब तुमने मुझे किस प्रकार खोजा? तब श्याम कहते हैं- 'इसलिए तो मैं वृन्दावन की लताओं के प्रति ऋणि हूँ'।

यदा में प्राणेश्वर्यति-निकट-एवाति कुतुका-
न्निलीना पश्यन्ति विकलविकलमास्तितवति।
तदा वल्ली वृन्दावन! तव ससंज्ञम् किशलयम्
करम् धुन्वया सूचयदिदमहो में महद्गणम्।।"

(वृ: म:-11/19)

मेरी प्राणेश्वरी कौतुक से भर कर मेरे अति निकट ही छिपी हुई थीं और मैं अतीव चंचल हो रहा था। वे मेरे इस अवस्था को देख रही थीं- तब 'हे वृन्दावन! तुम्हारी लता ने संकेत-छल से किशलय रूप कर कम्पन से उनकी अवस्थिति की सूचना दे कर मुझे ऋणि बना लिया।" श्रीमती कहती हैं- 'वही तो' मेरी सखी ने ही तो तुम्हें मेरी सूचना दी है। स्मरण करो- इस लता को मैनें तुम्हें प्रणाम करने को कहा था तो इसने कर-किशलयों के द्वारा चरण स्पर्श कर तुम्हें प्रणाम किया था। तब तुमने ही इसे मेरी सखी होने का वर प्रदान किया था'-

मतप्राणेश्वम् नम निगदितेत्यापत्येव भूमा-
विन्थम् तत्तदवचनवशगा स्यमहम् कापि वल्ली।
श्रीराधायाः स्वमकरविहित-स्वम्बूसेकादि-पुष्टा
वृन्दारण्ये मुदितहरिणा दत्त-कान्ता-वराशीः।।

(वही-5/38)

श्रील सरस्वतीपाद प्रार्थना करते हैं- मेरे प्राणेश्वर को प्रणाम करो यह वाक्य श्रवण कर जो भूमि पर निपतित हो जाती हैं, उन्हीं के भाव को ग्रहण कर श्रीराधा के आदेश के वशीवर्तिनी हो कर मैं वृन्दावन की कोई एक लता बनूँगा- जिससे श्रीराधा के निज कर कमल सिंचित जल से परिपुष्ट लाभ

करुँगा एवं श्री हरि सन्तुष्ट हो कर मेरी कान्ता बनो या श्रीराधा की सेवा बनो' कह कर सुन्दर आशीष प्रदान करेंगे।" श्रीपाद कहते हैं- हे वृन्दावन की कल्पवल्लियो! जब तुम्हारे लीला माधुर्य से समस्त ब्रह्माण्ड आप्यायित होता है, तब तुम्हारी पद-रेणु का सेवन करने वाली लतागण की भी समधिक उन्नति होगी, इसमें आश्चर्य कैसा? श्री उद्धव आदि महाजन गण भी इन सब लताओं की पद-रेणु सेवी कोई शूद्र लता या तृण-गुल्म आदि बन कर ब्रज भूमि में जन्म ग्रहण करने की प्रार्थना किया करते हैं। इस श्लोक में भी "अप्रस्तुत-प्रशंसा" नामक अलंकार का सन्निवेश है। प्रासंगिक कथा में अप्राकरणिक अर्थ का वर्णन है। श्रीवृन्दावन की कल्पवल्लियों की महिमा वर्णन के छल से श्रीवृन्दावनेश्वरी श्रीराधारानी की लीलामाधुरी एवं करुणा माधुरी का वर्णन कर उसकी कृपा प्रार्थना कर रहें हैं। श्रीवृन्दावन कल्पलता श्रीमती श्रीकृष्ण नवजलधर के लीलामृत वर्षण से सतत परिपुष्टा हैं। श्रीराधा ही साक्षात् वृन्दावन की माधुरी हैं एवं उनके लीला माधुर्य के प्रवाह से समग्र ब्रह्माण्ड परिपूरित है। "जगच्छ्रेणी लसदयशा" श्रीमती का एक गुण है। अतः उनकी पद-रेणु सेविका लता रूपी उन्हीं की श्रीचरणाश्रिता मंजरियों के माध्यम से श्रीमती का आश्रय ग्रहण करने पर युगल चरण सेवा अवश्य ही प्राप्त होगी- इसमें सन्देह कैसा? "हे वृन्दावन-कल्पवल्लि! तोमार मार्धुय-केलि, मधु मन्दाकिनी अद्भूत।

कृष्ण नवजलधारे, वर्षण करिले परे',
मधुकुल्या हय उच्छलित।।
सेइ लीला-कल्लोलिनी, तरंग माधुर्ये जानि,
आप्यायित करे त्रिभुवन।
यार एक बिन्दु पाने, उत्फुल्लित तनु मने,
नाचे गाय भागवतगण।।

श्रीउज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थ में इस गुण का दृष्टान्त देखें।

निकुन्जेते स्वर्णलता, वृषभानु राजसुता,
यार पादपदम रजकणा।
नित्य भजे लता सखी, प्रेमानन्दे हय सुखी,

एत नय आश्चर्य घटना।।
श्रीपाद रूप गोस्वामी, ब्रज-रस-रत्न खनि,
अप्राकृत कवि-चूड़ामणि,
कल्प वल्ली राधिकार, रूप-गुण-चमत्कार,
भंगि करि वर्णिला आपानि।।
पशुपालवरेण्यनन्दनौ, वरमेतम् मुहूरर्थये युवाम्।
भवतु प्रणयो भवे भवे, भवतोरेव पदाम्बुजेषु मे।।69।।

(हे) पशुपालवरेण्यनन्दनौ। (पशुपालानाम् वरेण्यौ तेषाम् राजानौ श्रीमद् वृषभानुनन्दौ तयोर्नन्दिनीय नन्दन चश्तौ तत् सम्बोधने) युवाम् एतम् वरम् (अहम्) मुहूरर्थये (प्रार्थये यथा) भवतोरेव पदाम्बुजेशु में भवे भवे (जन्मनि जन्मनि) प्रणयो भवतु।

हे ब्रजराजनन्दन! हे वृषभानुनन्दिनी! मैं तुम्हारे निकट पुनः पुनः इसी वर की प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारे पादपद्म युगल में मेरी जन्म-जन्म में प्रीति रहे।

मकरन्दकणा व्याख्या

विपुल दैन्य के उच्छ्वास से श्रीपाद के चित्त में आलोड़न जागा है। इससे पूर्व श्रीश्रीराधामाधव के चरणों में पुनः प्रेम सेवा की प्रार्थना कर रहे थे, किन्तु अब दैन्य सिन्धु के उच्छ्वसित होने पर मन ही मन सोचते हैं- मुझ जैसे अयोग्य अधम के पक्ष में क्या ऐसी सुदुर्लभ वस्तु के लिए प्रार्थना करना समीचीन है? जो कर्म किए हैं, उसके अनुसार तो पुनः-पुनः नाना योनियों में जन्म ग्रहण करना ही होगा। इसीलिए अब युगल चरणों में प्रार्थना कर रहे हैं- 'हे ब्रजराजनन्दन! हे वृषभानुकुमारि! तुम राजपुत्र एवं राजकन्या हो, दीनजनों के प्रति तुम्हारी करुणा सतत ही वर्षित होती हैं। तुम्हारे श्रीचरणों में बार-बार यही प्रार्थना करता हूँ कि जन्म-जन्म में तुम्हारे श्रीचरणों रति-मति रहे। अतृप्ति ही भक्ति का स्वभाव है। नित्य परिकर होते हुए भी साधन राज्य में आकर साधना का रसास्वादन कर रहें है। जन्म-जन्म में श्रीयुगल चरणों में प्रीति की कामना कर रहे हैं। प्रीति ही पुरुषार्थ है।

युगल चरणे प्रीति, परम आनन्द तथि,
रति प्रेममय परबन्धे।

कृष्ण नाम राधा नाम उपाय करो रसधाम
चरणे पड़िया परानन्दे।।

(प्रे: भ: च:)

प्रेमिका भक्तगण सतत प्रेमरस का आस्वादन करते हुए भी महा की तरह व्याकुल प्राणों से अभीष्ट चरणों में रति-मति की कामना करते हैं। इसी व्याकुलता से ही उनके चित्त में क्रमशः उच्च से उच्चतर भाव समूह प्रकाशित होने लगते हैं। निष्किंचन भक्त की व्याकुलता दर्शन कर भगवान् भी स्थिर नहीं रह पाते। स्वप्न में, स्मरण में, स्फुरण में दर्शन दे कर उसे आश्वासन देते रहते हैं। तब भी भक्त और अधिक प्राणों की व्याकुलता लेकर परम अनुराग से उनके चरणों में प्रार्थना करते हैं-

माधव! बहुत मिनति करो तोय।
देइ तुलसी तिल ए देह सोंपल
दया जनु छोडबि मोय।
गणइते दोष गुणलेश ना पाउबि
यव तुँहू करवि विचार।
तुँहू जगन्नाथ जगते कहायसि
जग बहिर नह मोहे छार।।
किये मानुष पशु पाखी भइ जनमिये
अथवा कीट पंतग।
करम-विपाके गतागति पुनः पुनः
मति रहू तुया परसंग।।
भनई विद्यापति अतिशय कातर
तरइते इह भवसिन्धु।
तुया पद पल्लव करि अवलम्बन
तिल एक देह दीन बन्धु।।

श्रीपाद की अप्रकट काल से पूर्व की दशा है। और कुछ कहने के लिए भाषा भी नहीं बची है और सामर्थ्य भी नहीं बचा है। विरह वेदना से हृदय निष्पेषित है। नयन अश्रु कण्ठ रूद्ध हो गया है। जो स्वयं कृपा सिन्धु हैं, हृदय को गोपनीय व्यथा को जान कर भी वे यदि उस ज्वाला को प्रशमित न करें,

तो क्या वह सन्ताप को अन्य किसी वस्तु द्वारा प्रशमित हो सकता है? सिन्धु निकटे यदि कण्ठ शुखायव, को दूर करव पियासा? (विद्यापति)। सिन्धु के तट पर भी यदि प्राण तृषातुर रहें, तब क्या उस दु:ख को व्यक्त करने की कोई भाषा है? श्रीपाद की जिह्वा धीरे-धीरे स्पन्दित हो रही है-

हे ब्रजराज-सुत गिरिवरधारी।
हे वृषभानु-सुता वृन्दावनेश्वरी।।
पुनः-पुनः ए प्रार्थना करे अकिंचने।
जनमे जनमे प्रीति थाके श्री चरणे।।
वदनेते हरे कृष्ण नाम चिन्तामणि।
स्मरणेते निवेदये श्री रुप गोस्वामी।।
उदगीर्णाभूदुत्कलिकावल्लरिरग्रे,
वृन्दाटव्याम् नित्यविलासव्रतयोर्वाम्।
वांगमात्रेण व्याहरतोडप्युल्लमेता,-
माकर्ण्योशौ कामितकसिद्धिम् कुरुतम् मे।।70।।

(हे) इशौ! वृन्दाटव्याम् नित्य विलासव्रतयो: वाम् (युवयो:) अग्रे उत्कालिकावल्लरि: (उत्कण्ठा लता) उद्गीर्णाभूत (उदिता जाता)। एताम् वांगमात्रेण (किम् पुनर्मनसापि) व्याहरत: (पठतो) उल्लम् (चपलम्) मे (मम) कामितम् सिद्धिम् युवाम् कुरुतम् (किम् त्वेत्याह) आकर्णय (ताम् श्रुत्येत्यार्थ:)।

हे नाथ श्रीकृष्ण! हे मदीश्वरी श्रीराधिके! इस वृन्दावन में नित्य विलास परायण तुम्हारे सम्मुख यह उत्कण्ठा रूप लता संजात हुई है। तुम्हारे सम्मुख केवल वाक्यों के द्वारा उसका कीर्तन किया है इसे श्रवण कर तुम्हारी सेवा लाभ के निमित्त अतिशय चपल एवं दीन जन की प्रार्थना सिद्धि करो।

मकरन्दकणा व्याख्या

स्वरूपाविष्ट श्रीपाद रूदन करते-करते श्रीराधामाधव के श्री चरणों में उनकी अन्तिम प्रार्थना निवेदन कर रहें है- हे नाथ श्रीकृष्ण, हे राधिके! तुम्हारी नित्य विहार भूमि है यह वृन्दावन। यहाँ के पशु, पक्षी, वृक्ष, वल्ली सब तुम्हें प्राणों से प्रिय हैं। तभी इन्हें नित्य देखने की अभिलाषा से तुम वृन्दावन में नित्य विहार करते हो। इनके दर्शन कर तुम कितना आनन्द प्राप्त

करते हो। तुम्हारी इस दीना दासी की हृदय-भूमि पर भी यह उत्कलिकावल्लरि या उत्कण्ठा लता संजात हुई है। इस उत्कण्ठा लता के प्रति एक बार दृष्टिपात करो। तुम्हारी सेवा विच्युत हो कर तुम्हारे विहार कानन में पड़ा रूदन कर रहा हूँ। श्री चरण सान्निध्य से वंचित हो कर और कितने समय तक बचा रहूँगा। मन जान कर तुम्हारी प्रेम सेवा करूँ। हाय! भागवत-परमहंस महाप्रेमिकगणों द्वारा काम्य एवं प्राप्य तुम्हारी प्रेम सेवा को यह साधन भजन शून्य दीन जन किस प्रकार प्राप्त करने में समर्थ होगा। किन्तु क्या करूँ, किसी भी प्रकार से इस दूर्वार लालसा के वेग को दमन नहीं कर पा रहा हूँ। वामन होते हुए चाँद को स्पर्श करने जैसी कामना मन में जागी है। प्राणों में केवल एक यही भरोसा है कि तुम्हारी कृपा से सब सम्भव है। तुम्हारे सम्मुख संजात इस उत्कल्लिकावल्लिर का केवल वाक्य पाठ करके श्रवण कराया है। कायमनों-वाक्य से पाठ कर श्रवण कराने की सामर्थ्य भी नहीं है। पाठ कर श्रवण कराते समय, हो सकता है कि मनोयोग भी न हुआ हो। तुम आपार करुणा-पारावार हो, केवल वाक्य से ही इस उत्कलिकावल्लरि का श्रवण कर, मुझे अपने श्रीचरण सान्निध्य में ले चलो। और एक प्रार्थना है- जो-जो वाक्य द्वारा भी उत्कलिका का पाठ करे, उनका मनोसंयोग यदि न भी हो- तो भी कृपा कर उनकी भी अभीष्ट सिद्धि करवाना। कहते-कहते श्रीपाद का कण्ठ रूद्ध हो गया। मूर्छित हो गये। ऐसी विशाल उत्कण्ठा क्या क्रन्दन में ही पर्यवसित होगी? सहसा श्रीराधामाधव की अंग-गंथ दसों दिशाएँ आमोदित हो उठी। मृत-संजीवनी की तरह उस गंध-भार ने श्रीपाद की नासिका में प्रविष्ट हो कर उन्हें सचेतन कर दिया। श्रीपाद नयन खोल कर देख रहे है- उनके दिव्य भाग्यनिधि नयन-सम्मुख हैं। स्वर्ण-नील आलोक से वृन्दावन उज्ज्वल हो उठा है!! प्राणनाथ को संग लेकर आयी हैं करुणामयी स्वामिनी। नयनों से कितनी करुणाराशि झर रही है। अमृत मधुर कण्ठ से स्नेह से भर कर किंकरी को पुकार रही हैं- रूप, क्यों इतना रोती हो- यह लो हम आ गए। अब वे रूप गोस्वामी नहीं, रूप मंजरी हैं। स्वामिनी ने स्नेह से भर कर किंकरी को अपने हृदय के निकट खींच कर अंगीकार कर लिया। श्रीपाद ने अपना स्वाभीष्ट लाभ किया है। करुणामयी स्वामिनी जी के संग विरह-विधुरा किंकरी का मिलन हुआ है। स्वामिनी की विरहिणी सेविका का कातर-क्रन्दन

सार्थक हुआ!!! श्रीगौर-लीला भी नित्य है। श्रीगोस्वामीपादगण नित्य परिकर हैं। श्रीरूप गोस्वामी स्वरूप में भी प्रगाढ़ भजनावेश में देह आदि को भुला कर नित्य ब्रजवास करते हुए साधना का रसास्वादन कर रहे हैं। कौन-कौन भाग्यवान देखिवर पाय। तभी साधकावेश की प्रार्थना-

हे नाथ श्रीकृष्णचन्द्र गिरिवरधारि।
हा राधिके! कृपामयी! आमार ईश्वरी।।
विलासी-युगल-अग्रे उत्कालिका नामे।
ये वल्लरी जन्मियाछे करिया क्रन्दने।।
श्रवणान्ते कर दोहे वांछित पूरण।।
कुन्जमाझे आर्तनादे दिवस रजनी।
एइ त प्रार्थना करे श्रीरूप गोस्वामी।।
चन्द्रा वभुवने शाके पौषे गोकुलवासिना।
इयमुत्कलिकापूववा वल्लरी निर्म्मिता मया।।71।।

गोकुलवासिना मया चन्द्र वभुवने (अंकानाम् वाम्गत्या स्थापनादेक सप्तत्युत्तरचतुद्रशशतीगणिते शालीवाहनस्य 1471) शाके पौषे इयमुत्कलिकापूर्वावल्लरी निर्मिता। 1471 शकाब्दे में पौष मास में श्रीवृन्दावन में वास करते हुए मैंने यह उत्कलिकावाल्लरि रचना पूर्ण की।

मकरन्दकणा व्याख्या

श्रीपाद उत्कलिकावाल्लरि स्तव नामक रचना के समाप्ति काल का उल्लेख करते हुए लिखते हैं- चन्द्रा वभुवने शाके अंकों की वाम गति से गणना के नियम चन्द्र, अश्व 7 और भुवन 14, वामगति से 1471 शकाब्द के पौष मास में श्रीपाद की हृदय भूमि पर उत्पन्न हुई उत्कलिकावाल्लरि ने लगभग 450 वर्ष न जाने कितने ही राग-मार्गीय साधकों के अन्तर श्रीश्रीराधामाधव की सेवा-उत्कण्ठा जगा कर उन्हें धन्य किया है और अनन्तकाल तक अनेकों राग-साधकों का भजन आदर्श बन कर उन्हें धन्य करती रहेगी। श्रीपाद की हृदय-निष्णात इस 'उत्कलिकावाल्लरि का कलेवर इतने उच्च आदर्श से गठित है कि वहाँ मुझ जैसे जीवाधम का प्रवेश ही सम्भव नहीं। अतः मुझ जैसे भजन-सम्पत्तिहीन प्राकृत जीव को इस स्तव की व्याख्या प्रणयन का कोई अधिकार ही नहीं है। किन्तु फिर भी श्रीश्रीब्रज-

धामाश्रयी परम पूज्य श्रीवैष्णवगणों के कृपादेश को शिरोधार्य करते हुए एवं स्वयं के मलिन चित्त का शोधन करने के लिए मेरे द्वारा यह यथामति संक्षिप्त "मकरन्दकणा" तात्पर्य–व्याख्या आलोचित हुई है। अवश्य ही इससे श्रीपाद की गुरुगम्भीर रचना का तात्पर्य तरलित हुआ होगा– इसके लिए परम करुण श्रील गोस्वामीपाद इस दीनजन के अपराध को क्षमा करें यही उनके श्रीपाद–पदमों में इस दीन की प्रार्थना है। जय गौर हरि। जय श्री राधे।

चौद्शत एकात्तर शकाब्द पौषेते।
व्रत करि नित्य वास करिया ब्रजेते।।
'उत्कलिकावाल्लरि' नामे चिन्तामणि।
रचना करिला निधि श्रीरूप गोस्वामी।।
हृदे धरि श्री रुपेर रातुल चरण।
छन्द करि 'हरिपद' करिला कीर्तन।।
तेरशत चुयत्तर बंगाद–ज्येष्ठेते।
पद्यछन्दे प्रकाशिला परम सम्पदे।।
जय जय प्रभु मोर श्रीरूप गोस्वामी।
कृष्णेर उद्यानवाटी, कि विचित्र परिपाटी
से वागाने माली हये तुमि।।
रजकणा चिन्तामणि, कर्षण करिया तुमि,
अगणित लालसार बीज।
रोपन करिया मने निरन्तर रात्रिदिने
सिंचनेते अश्रुधारा निज।।
प्रेमांकुर आलो करि, उत्कल्लिका नाम धरि
गजाईल रसेर वल्लरी।
दिने दिने बाढे लता, दिव्य श्लोक यत पाता,
युगलरे पदाश्रय करि।।
श्रीराधामाधव सखीगणे।
सेइ लीला पुष्प यत, थरे थरे विकसित,
सुवासेते मुग्ध त्रिभुवने।।
पुष्प हैते मकरन्द अखण्ड परमानन्द,

उन्नत उज्ज्वल-रस झरे।
यार एक बिन्दु पाने, भकत भ्रमरगणे,
उत्फुल्लित मधुर झंकारे।।
उहे मन, भृंग हये, माधुकरी व्रत लये,
आश्रय करिया श्रीचरण।
श्रीरूपेर कृपा हले, हरि पद सेवा मिले,
सखीयूथे हइवे गणन॥71॥
॥ समाप्त॥